राजनीति विज्ञान के मूल आधार

डॉ. के सी सामोता

Made with ❤ on the Notion Press Platform
www.notionpress.com

"मेरी लेखनी के प्रेरणास्त्रोत, मेरे प्रिय विद्यार्थियों को समर्पित"

क्रम-सूची

भूमिका

मेरे द्वारा लिखित इस पुस्तक में मुख्य केन्द्र सामान्य स्तर के विद्यार्थियों को रखा गया है जो कि स्वयंपाठी के रूप में भी आसानी से इस विषय की व्यापक एवं गहन समझ को विकसित कर सकते है। पुस्तक की भाषा शैली को बहुत ही सरल और सुबोध स्वरूप दिया गया है। हिन्दी माध्यम में इस तरह की पुस्तके उपलब्ध नहीं है और जो उपलब्ध है उन्हें समसामयिक राजनीतिक बदलावों के अनुरूप संशोधित और अद्यतन नहीं किया गया है। इसी के साथ राजनीति विज्ञान के उपागमों, सिद्धांतों एवं अवधारणाओं के सन्दर्भ मे सामान्य लेखकों, शोधार्थियों और पाठकों के बीच विद्यमान भ्रान्तियों को प्रामाणिक पुस्तकों और विश्वसनीय तथ्यों का सहारा लेकर दूर करने का सार्थक प्रयास किया गया है। पुस्तक में विषय वस्तु को न तो जटिल स्वरूप दिया गया हैं और न ही निरर्थक विस्तार दिया गया हैं। यह पुस्तक विशेष रूप से भारतीय विश्वविद्यालयों में एम. ए. और बी. ए. ऑनर्स के विद्यार्थियों के लिए तथा प्रतियोगी परीक्षाओं विशेषतः नेट, जे. आर. एफ., सेट, सहायक आचार्य, विद्यालय प्राध्यापक इत्यादि की तैयारी करने वाले प्रतिभागियों के लिए बहुत उपयोगी व सार्थक सिद्ध होगी। इसी के साथ यह पुस्तक राजस्थान प्रदेश के सभी विश्वविद्यालयों के पाठ्यक्रम को भी शामिल करती है। **पुस्तक सुधार हेतु पाठकों के सुझाव सदैव सादर आमंत्रित है।**

आमुख

राजनीति विज्ञान को सामाजिक विज्ञान से पृथ्थक् करके यूनानी विचारक अरस्तू (384-322 ईसा पूर्व) ने चौथी शताब्दीं ईसा पूर्व इसे एक विषय के रूप में स्थापित किया। अरस्तू से लेकर लास्की तक राजनीति विज्ञान विषय ने अपने विकसित स्वरूप को प्राप्त किया है। दूसरे वैश्विक महासमर 1939-1945, के दौर से उदित व्यवहारवादी आदोंलन और उसके पश्चात् उत्पन्न समसामयिक समस्याओं के निदान हेतु 1960-1970 के दशक में विकसित व्यवहारवाद का परिष्कृत स्वरूप अर्थात् उतर व्यवहारवादी आदोंलन के कारण राजनीति विज्ञान में अनेक नवीन आयामों का उदय हुआ। राजनीति विज्ञान जिसे अरस्तू ने **'आचार्य विज्ञान'** कहा है, उस विषय के अध्ययन व अध्यापन से 21वीं सदी के वर्तमान दौर में दूनियाभर की सरकारे विचलित होने लगी है। आखिरकार ऐसा इस विषय में क्या पढ़ाया जाता है? जिससे राज्य को खतरा मालूम होता है। यह अपने आप में ही कौतुहल भरा प्रश्न है। जबकि राज्य का अध्ययन ही अर्थात् राज्य को संचालित करने वाले व्यक्तियों या कर्ताओं के राजनीतिक व्यवहार का वैज्ञानिक पद्धति से अध्ययन करने वाला विषय ही राजनीति विज्ञान है।

इस पुस्तक में वर्तमान वैश्विक स्तर पर राजनीति विज्ञान विषय में हो रहे व्यापक एवं आधारभूत परिवर्तनों की समझ और उसके तार्किक विश्लेषण को सही स्वरूप मे उजागर करने का प्रयास किया गया है जिसकी कमी अब तक के लेखन मे रही है। इस विषय से सम्बन्धित अधिकांश मानक व स्तरीय पुस्तके अंग्रेजी भाषा में उपलब्ध है। राजनीति विज्ञान विषय के सन्दर्भ में मौलिक चिंतन व नवीनतम अनुसंधानों और समसामयिक सिद्वातों का समावेश कर इस पुस्तक को हिन्दी माध्यम के विद्यार्थियों एवं शोधार्थियों के लिए उपयोगी व उपादेय बनाने का प्रयास किया गया। इसी के साथ ही जटिल उपागमों को समझाने के लिए रेखाचित्रों का यथास्थान प्रयोग किया गया हैं।

1

राजनीति विज्ञानः अर्थ, परिभाषा एवं विषय क्षेत्र (परंपरागत व आधुनिक उपागम)

राजनीति विज्ञान का एक विषय के रूप में उदय एवं विकासः

राजनीति विज्ञान समाज विज्ञान की वह शाखा है जिसमें व्यक्ति के राजनीतिक पक्ष का वैज्ञानिक पद्धतियों के माध्यम से अध्ययन किया जाता है। समाज विज्ञान की इस शाखा का उदय लगभग 2500 वर्षों पूर्व दर्शनशास्त्र के पिता प्लेटों के महान् शिष्य एवं यूनानी चिंतक अरस्तू के व्यवस्थित राजनीतिक चिंतन से माना गया है। अरस्तू (384-322 ईसा पूर्व) जिसे राजनीति विज्ञान का पिता माना जाता है, उसकी प्रसिद्ध कृति का नाम **'पॉलिटिक्स'** है। लगभग 350 ईसा पूर्व लिखित यह पुस्तक **आठ भागों** में विभाजित है। अपनी पुस्तक में उसने आधुनिक राजनीतिक विज्ञान को **राज्यशास्त्र या राजनीतिक दर्शन अथवा तत्वमीमांसा** के रूप में परिभाषित किया है। अरस्तू ने इस समय राजनीति विज्ञान विषय के संदर्भ में यूनानी भाषा समुदाय के तीन विशिष्ट शब्दों का प्रयोग किया, जिन्हें **पॉलिस अर्थात् नगर-राज्य, पॉलिटी अर्थात् शासनव्यवस्था** या राजव्यवस्था और **पोलिशिया अर्थात् शासन संचालन के नियम** या संविधान। इस तरह से चौथी सदी ईसा पूर्व अरस्तू की रचना **पॉलिटिक्स** के साथ आधुनिक राजनीति विज्ञान अनुशासन का उदय हुआ है।

राजनीति विज्ञान विषय का नामकरणः

इस विषय को राजनीतिक दर्शन या राज्य शास्त्र अथवा राजनीति जैसे नामों से पहचान मिली है लेकिन इसके लिए उपयुक्त नाम क्या हो? यह इसके आरंभिक काल से ही एक

विवाद का विषय रहा है। अरस्तू, जेलेनिक, पॉल व पोलक जैसे विद्वानों ने इसे **राजनीति** के नाम से तो ब्राइस, सीले, बग्रेस, विलोबी, गेटेल जैसे विचारकों ने **राजनीति विज्ञान** कहा है, तो वही प्लेटो, हॉब्स, लॉक, रूसों, हेगेल, मार्क्स जैसे चिंतकों ने इसे **राजनीतिक दर्शन** के नाम से पुकारा है। अंततः इस विषय को सर्वमान्य संज्ञा या नाम अर्थात् **'राजनीति विज्ञान'** देने का श्रेय 18-19वीं सदी के राजनीति विज्ञानी **ब्रिटिश दंपती, अराजकतावादी चिंतक विलियम गॉडविन और उनकी पत्नी नारीवादी चिंतक मेरी वालेस्टोनक्राफ्ट** को जाता है। इस तरह से विशेष रूप से व्यवहारवादी क्रांति के बाद इस विषय का नाम राजनीति विज्ञान के रूप में प्रचलित व सर्वमान्य है। यूनेस्कों सम्मेलन 1948 में यह नाम सर्वमान्य रूप में ग्रहण कर लिया गया।

राजनीति विज्ञान का अर्थ, प्रकृति एवं विषय क्षेत्रः

राजनीति विज्ञान विषय का अर्थ एवं उसकी परिभाषा क्या हो? इस विषय की प्रकृति कैसी है? और इसमें कौन-कौन से विषयों के अध्ययन को शामिल किया जाए? इन तीन प्रश्नों को लेकर विविध उपागमों का अस्तित्व रहा है जिनमें से दो आधारभूत दृष्टिकोणों का अध्ययन किया जाना आवश्यक है। अध्ययन के इन व्यवस्थित प्रतिमानों को परंपरागत उपागम और आधुनिक उपागम के नाम से जाना जाता है।

परंपरागत उपागमः

राजनीति विज्ञान के इस आरंभिक उपागम को 'राजनीतिक दर्शन' के उपशीर्षक के नाम से जाना जाता है क्योंकि इसके अंतर्गत सम्पूर्ण अध्ययन दर्शन का अभिन्न हिस्सा रहा है। यह प्रतिमान चिंतनमूलक पद्धति पर आधारित है। प्लेटों 428-348 ईसा पूर्व, से लेकर जॉन रॉल्स तक के चिंतन को इसी का अभिन्न हिस्सा माना जा सकता है। यह शास्त्रीय दृष्टिकोण है जिसमें कल्पना व तर्क के सहारे परंपरागत व अवैज्ञानिक अध्ययन पद्धतियों के माध्यम से राज्य व उसकी संस्थाओं से जुड़ी हुई राजनीतिक विषय वस्तु के दर्शन को स्पष्ट करने का प्रयास किया गया है। एक तरह से यह राजनीति विज्ञान विषय की आरंभिक अवस्था का अध्ययन था। इस उपागम के प्रमुख समर्थकों में **जे डब्ल्यू गार्नर, आर जी गैटेल, जकारिया, ब्लंशली, पॉल जेनेट, सर जॉन सीले, आर एम मैकआइवर, हॉब्स, लॉक, रूसों, मैकियावली, रफेल, कार्ल मेनहाईम, ग्रीन, एच जे लास्की, काण्ट, रॉल्स, हेगेल, हर्बट मॉर्कज्यू, मैक्फर्सन, मार्क्स, दांते जर्मिनों, मिल्टन फ्रिडमैन, स्पेसंर, सेबाईन, डनिंग** इत्यादि है। इस उपागम के अनुसार राजनीति विज्ञान विषय के अर्थ, परिभाषा, प्रकृति एवं विषय क्षेत्र को निम्न स्वरूप में विश्लेषित किया जा सकता है-

राजनीति विज्ञान की परिभाषा एवं अभिप्रायः

परंपरागत उपागम के अनुसार राजनीति विज्ञान विषय की परिभाषा एवं अर्थ दोनों ही संकीर्ण, सीमित एवं संस्थागत अभिप्राय से जुड़े हुए है। राजनीति शब्द **यूनानी भाषा के 'पॉलिस'** के भावार्थ से सबंधित है और अरस्तू की पुस्तक **'पॉलिटिक्स'** के अर्थ में दिखायी देता है। पॉलिस से निर्मित पॉलिटिक्स का अनुवाद ही राजनीति है। राजनीति क्या है और

क्या नहीं है? इस पर एक लम्बी बहस विद्यमान है। फिलहाल राजनीति विज्ञान के विभिन्न विद्वानों के चिंतन में परंपरागत उपागम के अनुसार इसकी आंरभिक परिभाषा व अर्थ चार स्वरूपों में दिखायी देता है-

1. राज्य के अध्ययन के रूप मेंः

ब्लशंली, गैरिस, गैटिल, गार्नर जैसे विद्वानों ने परंपरागत उपागम के अंतर्गत राजनीति विज्ञान को राज्य का अध्ययन करने वाला विषय माना है। ब्लंशली के अनुसार, ''राजनीति शास्त्र वह शास्त्र है जिसका संबंध राज्य से है और वह राज्य की स्थितियों, प्रकृति, स्वरूपों एवं विकास का अध्ययन करता है।'' गैरिस की मान्यता है कि ''वह राज्य की सभी प्रकार की समस्याओं का अध्ययन करता है।'' जे डब्ल्यू गार्नर ने अपनी पुस्तक **'पॉलिटिकल साईंस एण्ड गवर्मेण्ट,1928** के अंतर्गत लिखा है कि **''राजनीति विज्ञान का आदि व अंत राज्य के साथ होता है।''** गैटेल के शब्दों में, ''राजनीति विज्ञान, राज्य का विज्ञान है।'' यह राज्य के अतीत, वर्तमान और भविष्य का अध्ययन करता है। फ्रेडरिक पोलक ने इसे 1948 में आयोजित यूनेस्कों सम्मेलन में 'राजनीति का विज्ञान या साईंस ऑफ पॉलिटिक्स' कहा है जिसकी विषय सामग्री को सैद्धांतिक एवं व्यवहारिक स्वरूप में विभाजित किया जा सकता है। अमेरिकी राजनीति विज्ञानी आर जी गैटेल ने अपनी पुस्तक 'पॉलिटिकल साईंस,1949 में इसे राज्य का विज्ञान या साईंस ऑफ स्टेट' की संज्ञा दी है।

2. सरकार के अध्ययन के रूप मेंः

कुछ परम्परागतवादी चिंतकों की मान्यता है कि राजनीति विज्ञान राज्य का नहीं अपितु सरकार का अध्ययन करता है क्योंकि अमूर्त राज्य की इच्छा को सरकार ही मूर्त या साक्षात रूप प्रदान करती है। राज्य अमूर्त है जबकि सरकार मूर्त स्वरूप में है। लीकॉक के अनुसार, ''राजनीति विज्ञान सरकार से संबंधित अध्ययन है।'' सर जॉन सीले के अनुसार, ''राजनीति विज्ञान सरकार का उसी प्रकार से अध्ययन करता है जिस प्रकार से अर्थशास्त्र धन का, जीव विज्ञान जीवन का, बीजगणित अंकों का और ज्यामिति स्थान व दूरी का अध्ययन करता है।''

3. राज्य व सरकार दोनों के अध्ययन के रूप मेंः

ज्ञात रहे कि अमेरिकी राजनीति विज्ञानी जे डब्ल्यू गॉर्नर ने इसे प्रधानतया राज्य का अध्ययन करने वाला और गौण रूप में सरकार का अध्ययन करने वाला विषय माना है। उसने अपनी पुस्तक 'इण्ट्रोडक्शन टु पॉलिटिकल साईंस,1910 के अंतर्गत राजनीति विज्ञान को राजय व शासन दोनों का अध्ययन करने वाला विषय बताया है अर्थात् 'राजनीति विज्ञान राज्य एवं सरकार दोनों का अध्ययन करता है।'' पॉल जेनेट के अनुसार, ''राजनीति विज्ञान, समाज विज्ञान का वह अंग है जिसमें राज्य के आधार और शासन के सिद्धांतों का अध्ययन किया जाता है।'' आर एम मैकावर ने अपनी रचना द वैब ऑफ गवर्नमेण्ट1965 के अंतर्गत राजनीति विज्ञान को ''राज्य व सरकार दोनों के अध्ययन को महत्व देने वाला विज्ञान'' माना है। डिमॉक के अनुसार राजनीति विज्ञान का संबंध राज्य व उसके साधन सरकार से है।

गिलक्राईस्ट के अनुसार राजनीति विज्ञान राज्य व सरकार दोनों का अध्ययन है। इस तरह से इसे राज्य व सरकार दोनों से संबंधित अध्ययन के रूप में व्यक्त किया गया।

4. व्यक्ति के अध्ययन के रूप मेंः

राज्य हो या सरकार या कोई अन्य संस्थान व्यक्ति के अध्ययन के बिना सब शून्य है क्योंकि इन सब संगठनों अथवा संस्थानों का संचालित करने का कार्य तो व्यक्ति के द्वारा ही किया जाता है। अतः इस बात पर बल दिया गया कि व्यक्ति के अध्ययन को राजनीति विज्ञान की परिभाषा में शामिल किया जाए। लास्की के अनुसार, ''राजनीति विज्ञान संगठित राज्यों से संबंधिति व्यक्तियों के जीवन का अध्ययन करता है।'' हरमन हैलर के शब्दों, ''राजनीति विज्ञान के संपूर्ण स्वरूप का निर्धारण ही व्यक्ति संबंधी मूलभूत मान्यताओं से होता है।''

राजनीति विज्ञान की प्रकृतिः

किसी भी विषय की प्रकृति से हमारा आशय उस अनुशासन के स्वभाव से होता है। जिस तरह से प्रत्येक प्राणी का अपना एक विशिष्ट स्वभाव होता है, उसी तरह से हर विषय का भी अपना स्वभाव होता है और यह उस विषय की विषय सामग्री के स्वरूप पर निर्भर करता है। परंपरागत दृष्टिकोण के अनुसार राजनीति विज्ञान की प्रकृति एक दर्शन एवं कला के रूप में स्वीकार की गई है। राजनीति विज्ञान की आरंभिक विषय सामग्री **दर्शनशास्त्र** से संबंधित रही है। इस दौरान पांचवी सदी ईसा पूर्व से 19वीं सदी के अंतिम दशकों तक **चिंतनमूलक** पद्धति के माध्यम से ही राजनीतिक विषय वस्तु का विश्लेषण एवं संश्लेषण किया गया। अतः यह कहा जा सकता है कि आधुनिक उपागम से पूर्व राजनीति विज्ञान की प्रकृति दार्शनिक या दर्शनशास्त्र के अधिक नजदीक रही है।

विषय क्षेत्रः

परम्परागत राजनीति विज्ञानियों में भी इस बात पर दीर्घकाल तक मतैक्य स्थापित नहीं हो पाया कि राजनीति विज्ञान में किसके बारे में अध्ययन किया जाए और किसके बारे में नहीं? अर्थात् विषय वस्तु लेकर विवाद की स्थिति बनी रही। 19वीं सदी के अंत तक यह राजनीतिक दर्शन से जुडी विषय सामग्री का अध्ययन करने वाला प्रमुख विषय रहा है। 1948 में यूनेस्कों के तत्वाधान में आयोजित राजनीति विज्ञानियों के सम्मेलन में इस अनुशासन की विषय वस्तु या सामग्री को निम्न क्षेत्रों तक सीमित करने का प्रयास किया गया-

1. मानव का अध्ययनः

राजनीति विज्ञान में व्यक्ति के व्यवहार के अध्ययन को शामिल करने पर बल दिया गया। यह निर्धारित हुआ कि व्यक्ति का अध्ययन राजनीति विज्ञान का केन्द्रीय विषय होगा क्योंकि सभी प्रकार की संरचनाओं और व्यवस्थाओं का संचालन एवं नियंत्रण व्यक्ति के द्वारा ही किया जाता है।

2. राज्य का अध्ययनः

राज्य और उससे जुड़ी तमाम तरह की संस्थाओं का अध्ययन करने का निर्णय किया गया।

राज्य जो कि व्यक्ति के सामान्य हित के लिए ही तमाम तरह की व्यवस्थाओं का निर्धारण व संचालन करता है। उसके अध्ययन को महत्वपूर्ण माना गया।

3. सरकार का अध्ययनः

राज्य की इच्छाओं को मूर्त रूप प्रदान करने वाले अभिकरण को ही सरकार के नाम से जाना जाता है। अतः सरकार के अध्ययन को भी महत्वपूर्ण माना गया जिसमें व्यवस्थापिका, कार्यपालिका और न्यायपालिका, राजनीतिक दलों व दबाव समूहों इत्यादि का अध्ययन करने पर बल दिया गया।

4. राजनीतिक दर्शन का अध्ययनः

राजनीति विज्ञान का आरंभिक स्वरूप राजनीतिक दर्शन के नाम से ही जाना जाता था। गिलक्राइस्ट कहते है कि राजनीति दर्शन ही राजनीति विज्ञान का पूर्वगामी है। परम्परागत राजनीति विज्ञान का उपशीर्षक राजनीतिक दर्शन ही रहा है।

5. अंतर्राष्ट्रीय संबंधों का अध्ययनः

राज्य किसी एक विशेष क्षेत्र तक ही सीमित नहीं रहता है अपितु राजनीतिक दूनिया के पटल पर अनेकानेक राज्य होते है और किसी न किसी राज्य की अपनी सीमाएं होती है और वह इन परिसीमाओं में रहते हुए अन्य राज्यों के साथ अपने राजनीतिक संबंधों को बनाए रखता है। अतः राज्यों के बीच के पारस्परिक संबंधों का अध्ययन करना आवश्यक हो जाता है।

6. राजनय का अध्ययनः

अंतर्राष्ट्रीय संबंधों के संचालन के लिए कुछ राजनीतिक साधनों की आवश्यकता होती है और इन्हीं साधनों में से एक है- राजनय। यह किसी देश की विदेश नीति व विदेश संबंधों के संचालन में अहम योगदान रखता है।

7. अंतर्राष्ट्रीय विधि का अध्ययनः

एक देश के अन्य देशों के साथ संबंध सुव्यवस्थित तरीके से संचालित होते रहे। इसके लिए आवश्यक है कि उन देशों के बीच पारस्परिक व्यवहार के लिए निर्धारित मानकों की वे अनुपालना करें और इन अंतर्राष्ट्रीय मानकों को ही अंतर्राष्ट्रीय विधि के नाम से जाना जाता है।

परंपरागत उपागम की प्रमुख विशेषताएंः

परम्परागत या मानकीय उपागम जिसे सामान्यतया राजनीति शास्त्र या राजनीतिक दर्शन के शीर्षक के रूप में स्वीकार किया गया है। इसका मूल आधार तर्क व कल्पना, तार्किकता, समालोचना व पुनर्निर्माण का कार्य, चिंतनमूलक व निगनात्मक या डिडेक्टिव पद्धति इत्यादि है। अधिकांश प्राचीनतम व मध्यकालीन चिंतकों ने 5वीं सदी ईसा पूर्व से 19वीं सदी के अंत तक इसी शास्त्रीय उपागम के माध्यम से राजनीतिक संस्थाओं का अध्ययन किया है। इस उपागम की प्रमुख विशेषताएं निम्नलिखित रही हैः-

1.तर्क व कल्पना पर आधारित आदर्शवादी अध्ययनः

प्लेटों का आदर्श राज्य का अध्ययन, सिसरो की सिवितास, आगस्टाईन का सिटी ऑफ गॉड, मूर का कल्पनालोक, मैकियावली का नराश्व, हॉब्स का लेवियाथन, रूसों की सामान्य इच्छा, ग्रीन की शाश्वत चेतना, हीगल की विश्वात्मा, मार्क्स का साम्यवाद, रॉल्स का न्याय सिद्धांत इत्यादि को तर्क व कल्पना के सहारे आदर्शवादी अध्ययन का स्वरूप प्रदान किया गया है। यह क्या करना चाहिए? के आदर्श पर आधारित अध्ययन है। यह शुभ व अशुभ, उचित व अनुचित से संबंधित है। अतः इसे निर्देशन प्रतिमान भी कहा जाता है।

2.औपचारिक, कानूनी एवं संस्थागत अध्ययनः

मानकीय उपागम के अंतर्गत केवल औपचारिक अध्ययन पर बल दिया गया अर्थात् निर्धारित नियमों व मानकों के अनुरूप स्थापित कानूनी संगठनों का और राज्य द्वारा मान्यता प्राप्त संस्थाओं के अध्ययन पर विशेष बल दिया गया। अरस्तू का 158 देशों के संविधानों का अध्ययन इसी परंपरा का हिस्सा था। राज्य का अध्ययन, उसके प्रकारों का, शासन व उसके प्रकारों का अध्ययन, विधायिका, कार्यपालिका, न्यायपालिका का अध्ययन इस दौरान प्रचलित रहा। डायसी, मुनरों, ऑग व जिंक, हर्मन फाईनर, ब्लोण्डेल, ए डी टॉकविले, लॉर्ड ब्राईस, वाल्टर बेजहॉट इत्यादि ने संस्थागत व वैधानिक अध्ययन किया है।

3.परम्परागत, अपरिष्कृत एवं अवैज्ञानिक अध्ययन पद्धतियों का उपयोगः

परम्परागत अध्ययन पद्धतियां चिंतनमूलक पद्धतियां रही है। इस काल में औपचारिक, वैधानिक एवं संस्थागत अध्ययन की मुख्य पद्धतियां- दार्शनिक, ऐतिहासिक, कानूनी या वैधानिक, संस्थात्मक, वर्णनात्मक, निगनात्मक इत्यादि प्रमुख थी।

4.राजनीतिक मूल्यों और मानवीय आदर्शों पर विशेष बलः

प्लेटो का न्याय, अरस्तू का नगर राज्य, सिसरों की नागरिकता, आगस्टाईन की इसाई राजनीति, एक्वीनास का प्राकृतिक कानून, मैकियावली की प्रभुसता, लॉक का प्राकृतिक अधिकार, बर्क की स्वतंत्रता, मार्क्स की समता जैसे राजनीतिक मूल्यों और आदर्शों को अध्ययन का मुख्य केन्द्र बनाया गया जो कि व्यक्तिनिष्ठ अध्ययन की अपेक्षा वस्तुनिष्ठ अध्ययन से संबंधित रहा है।

5.सीमित, संकीर्ण एवं पाश्चात्य दर्शन पर आधारित अध्ययनः

राजनीति विज्ञान का शास्त्रीय उपागम केवल पश्चिमी देशों की राजनीतिक प्रणालियों पर केन्द्रित था। पूर्वी दूनिया या विकासशील देशों की प्रणालियां इससे दूर थी। यही कारण है कि इसे यूरोपियन दूनिया के पश्चिमी दर्शन पर आधारित सीमित व संकीर्ण अध्ययन के रूप में स्वीकार किया गया।

6.महान प्रसंगों व गौरव ग्रंथों का अध्ययनः

परम्परागत उपागम के अंतर्गत शास्त्रीय सिद्धांतों से संबंधित प्राचीन पुस्तकों, मूल ग्रंथों, पाण्डुलिपियों व कथानक साहित्य के अध्ययन पर बल दिया गया। ऐसे ग्रंथ दार्शनिक चिंतन में संवाद शैलियों में लिखे गए थे। जैसे कि प्लेटों का रिपब्लिक, थॉमस मूर का कल्पनालोक

आदि।

7.राजनीतिक दर्शन का पर्याय या दार्शनिक अभिविन्यास की खोज करनाः

परम्परागत उपागम का उपशीर्षक ही दर्शनशास्त्र रहा है। वह शास्त्र जो कि जीवन दर्शन से संबंधित है। वह दर्शन जो कि क्या होना चाहिए? के सवाल के जवाब खोजता है। अरस्तू की 'सद्जीवन' की कल्पना इसी दर्शन का हिस्सा थी। समझौतावादी चिंतकों हॉब्स, लॉक व रूसों की प्राकृतिक अवस्था ऐसे ही दर्शन का प्रतीक थी।

8.सामान्य हित की खोजः

एक ऐसी व्यवस्था की खोज जो कि आमजन या सबके हित में हो, उसे तलाश करना परंपरागत उपागम का मूल ध्येय रहा है। प्लेटों का आदर्श राज्य, अरस्तू का उप आदर्श राज्य, मैकियावली का नराश्व, रूसों की सामान्य इच्छा वाला शासन, रॉल्स का न्याय सिद्धांत इत्यादि सामान्य हित की खोज के ही प्रतिमान रहे है।

परंपरागत उपागम का आलोचनात्मक मूल्यांकनः

राजनीति विज्ञान का परंपरागत उपागत दर्शन के क्षेत्र से संबंधित होने और अवैज्ञानिक अध्ययन पद्धतियों, तर्क व कल्पना से जुडे होने के कारण दीर्घकाल तक मानवीय समस्याओं के यर्थाथ को समझने में असंभव रहा है। 1914 से 1918 के बीच घटित पहले महायुद्ध और 1939 से 1945 के बीच के द्वितीय महासमर ने वैश्विक मानवीय समुदाय के समक्ष कभी न समाप्त होने वाले संघर्ष का बिगुल बजा दिया। इससे मानवीय सभ्यता के अस्तित्व पर खतरा मंडराने लगा। ऐसी स्थिति में परंपरावाद की कमियों के विरूद्ध एक आंदोलन खड़ा हुआ जिसे आधुनिक उपागम के नाम से जाना जाता है। व्यवहारवाद एवं उतर व्यवहारवाद इसी आधुनिक उपागम के अभिन्न अंग है।

आधुनिक उपागम

इस उपागम में मानवीय व्यवहार के राजनीतिक पक्ष का अध्ययन करने के लिए वैज्ञानिक पद्धतियों का प्रयोग किया गया। अतः इसे वैज्ञानिक उपागम के उपनाम से जाना जाता है। इस उपागम में संस्थाओं, संगठनों के कर्ताओं और उनके व्यवहार को प्रभावित करने वाले कारकों के अध्ययन को शामिल किया गया जिसने राजनीति विज्ञान के विषय क्षेत्र को व्यापक स्वरूप प्रदान किया। इस उपागम में अंतःअनुशासनात्मक दृष्टिकोण के माध्यम से राजनीतिक पक्ष के समग्र स्वरूप को समझने पर बल दिया गया। इस उपागम के अनुसार राजनीति विज्ञान विषय के अर्थ, परिभाषा, प्रकृति एवं विषय क्षेत्र को निम्न स्वरूप में विश्लेषित किया जा सकता हैः-

राजनीति विज्ञान का अर्थ एवं परिभाषाः

आधुनिक उपागम द्वितीय महायुद्ध के बाद अनुभवमूलक उपागम के रूप में उदित हुआ है। यद्यपि इसके आरंभ होने के संकेत 20वीं सदी के शुरूआती दशकों में ही अभिलक्षित होने लगे थे, जिसकी शुरूआत व्यवहारवादी क्रांति से मानी जाती है तथापि इसके कुछ ऐतिहासिक लक्षण निकोलों मैकियावली, टॉमस हॉब्स, एडम स्मिथ के चिंतन में और फ्रांसीसी चिंतक ए डी टॉकविले की पुस्तक **डेमोक्रेसी इन अमेरिका1835,** वाल्टर बेजहॉट की रचना **फिजिक्स एण्ड पॉलिटिक्स1867** में दिखायी पड़ते है। इसने राजनीति विज्ञान को एक नवीन स्वरूप प्रदान किया जिसके बाद राजनीति विज्ञान के अर्थ, परिभाषा एवं विषय क्षेत्र में व्यापक बदलाव देखने को मिला। इस उपागम के अनुसार राजनीति विज्ञान का अर्थ व परिभाषा को निम्न स्वरूपों में अभिव्यक्त किया गया हैः

1.व्यक्ति के राजनीतिक व्यवहार के अध्ययन के रूप मेंः

आधुनिक उपागम के अंतर्गत व्यक्ति के राजनीतिक व्यवहार को राजनीति विज्ञान का केन्द्रित विषय माना गया। इसके अर्थ व परिभाषा को व्यक्ति के साथ संयोजित किया गया। व्यक्ति के व्यवहार पर ध्यान केन्द्रित करने वाला प्रतिमान व्यवहारवादी क्रांति के नाम से पहचाना गया है। चार्ल्स मेरियम के अनुसार राजनीति विज्ञान मानवीय व्यवहार का अध्ययन है।

2.राजनीतिक कर्ताओं के व्यवहार को प्रभावित करने वाले कारकों के अध्ययन के रूप मेंः

व्यक्ति एक सामाजिक व राजनीतिक प्राणी होता है। अतः व्यक्ति का राजनीतिक व्यवहार अनेकानेक कारकों जैसे कि आर्थिक, नैतिक, सामाजिक, मनोवैज्ञानिक, पर्यावरणीय इत्यादि से प्रभावित होता है। अतः उसके राजनीतिक व्यवहार को समग्र रूप में समझने के लिए अप्रत्यक्ष कारकों के अध्ययन पर बल दिया गया जिसे अंतःअनुशासनात्मक उपागम के नाम से जाना जाता है।

3.शक्ति के अध्ययन के रूप मेंः

व्यक्ति किसी विशिष्ट प्रकार का व्यवहार क्यों करता है और इसके पीछे क्या कारण होते है? इसे कुछ चिंतकों ने शक्ति के रूप में देखा है। अतः आधुनिक उपागम में राजनीति विज्ञान को शक्ति के रूप में परिभाषित करने पर बल दिया गया। जिसका आभास विद्वानों की परिभाषाओं से भी होता है। केटलिन के शब्दों में, ''राजनीति विज्ञान शक्ति का विज्ञान है।'' कैपलॉन के अनुसार, ''यह अनुभवजन्य अध्ययन के रूप में शक्ति सर्जन व साझेदारी का विषय है।'' लासवैल के शब्दों में, ''राजनीति विज्ञान विषय कौन, क्या, कब व कैसे प्राप्त करता है? के प्रश्न पर केन्द्रित है।'' डाहल के शब्दों में, ''राजनीति विज्ञान शक्ति, शासन व अधिकार का विषय हैं।''

4.राजनीतिक प्रणाली या व्यवस्था के अध्ययन के रूप मेंः

अब तक राजनीति विज्ञान को राज्य पर केन्द्रित विषय के रूप में व्यक्त किया गया लेकिन

आधुनिक उपागम में राजनीतिक समुदाय के औपचारिक स्वरूप अर्थात् राज्य की जगह राजनीतिक प्रणाली को अध्ययन में शामिल किया गया। राजनीतिक प्रणाली राज्य की अपेक्षा विस्तृत है क्योंकि यह अनौपचारिक स्वरूप की संरचना व संगठनों को भी समाहित करता है। डेविड ईस्टन ने राजनीति को मूल्यों का प्राधिकृत आंवटन बताया है।

राजनीति विज्ञान की प्रकृतिः

वैज्ञानिक पद्धतियों के माध्यम से व्यक्ति के राजनीतिक व्यवहार का अध्ययन आधुनिक युग की देन है। किसी भी विषय का अध्ययन वैज्ञानिक पद्धतियों के माध्यम से करना उसकी वैज्ञानिक प्रकृति का व्यक्त करता है। आधुनिक चिंतकों ने वैज्ञानिक पद्धति की प्रक्रिया के चार अनिवार्य घटक बताएं है जिनमें निरीक्षण करना, सामान्यीकरण करना, व्याख्या करना, भविष्यवाणी और निर्देश प्रमुख है। निरीक्षण की प्रक्रिया पाँच ज्ञानेन्द्रियों व सहायक उपकरणों के द्वारा अनुभूत ज्ञान से जुडी हुई है। सामान्यीकरण के अंतर्गत कार्य व कारण संबधों, सह-संबंधों को गुणात्मक व परिमाणात्मक स्वरूप में व्यक्त किया जाता है। व्याख्या के अंतर्गत प्रस्तुत वस्तुस्थिति या स्थिति या घटना या प्रवृति के मूलभूतक कारकों पर प्रकाश डाला जाता है। भविष्यवाणी व निर्देश के अंतर्गत अर्जित ज्ञान के आधार पर आगे की संभावनाओं को व्यक्त किया जा सकता है। जैसा कि हम जानते है कि राजनीति विज्ञान मानव के राजनीतिक व्यवहार का वैज्ञानिक पद्धति से अध्ययन करता है और वह एक विवेकशील सामाजिक व राजनीतिक स्वभाव वाला सजीव प्राणी है जिसकों प्राकृतिक विज्ञानों की प्रयोगशाला के निर्जीव उपकरणों के समान समझा नहीं जा सकता है। अतः उसके बारे में संभावनारूपी भविष्यवाणी व निर्देश ही संभव है तथापि यह एक वैज्ञानिक पद्धति है। इस प्रकार आधुनिक उपागम ने राजनीति विज्ञान को सामाजिक क्षेत्र का श्रेष्ठ विज्ञान बना दिया।

विषय क्षेत्रः

विषय क्षेत्र का अभिप्राय अध्ययन की जाने वाली विषय सामग्री से होता है। आधुनिक उपागम ने राजनीति विज्ञान विषय की सामग्री को विस्तृत एवं व्यापक स्वरूप प्रदान किया। अब राजनीति विज्ञान के अंतर्गत केवल व्यक्ति का ही नहीं अपितु अनौपचारिक तत्वों का, शक्ति, सता और वैधता का अध्ययन, अनौपचारिक संगठनों व संस्थाओं के अध्ययन, अंतःअनुशासनात्मक उापगम, राजनीति की नवीन अवधारणों राजनीतिक विकास, आधुनिकीकरण, समाजीकरण, राजनीतिक संस्कृति, संविधानवाद, विधि के शासन इत्यादि के अध्ययन को शामिल किया गया।

आधुनिक दृष्टिकोण की प्रमुख विशेषताएंः

राजनीति विज्ञान के आधुनिक उपागम ने इस विषय को एक नवीन दिशा प्रदान की है जिसकी प्रमुख विशेषताओं को निम्न बिन्दुओं के आधार पर स्पष्ट किया जा सकता हैः

1.मानवीय व्यवहार का वैज्ञानिक पद्धतियों की सहायता से अध्ययनः

आधुनिक उपागम के अंतर्गत अनुभवमूलक, आगनात्मक व तुलनात्मक अध्ययन पद्धति

जैसी वैज्ञानिक पद्धतियों का प्रयोग किया गया। इन पद्धतियों की सहायता से मानवीय व्यवहार का अध्ययन आरंभ किया गया जिसकी वजह से भविष्यवाणी एवं निर्देश में सहायता मिली।

2.अंतःअनुशानात्मक एवं आनुभाविक क्षेत्रीय अध्ययनः

मानवीय व्यवहार के समग्र या एकीकृत अध्ययन के लिए राजनीति विज्ञान में अन्य समाज विज्ञानों की विषय सामग्री, अध्ययन पद्धतियों व तकनीकों का प्रयोग किया गया जिसे अंतःअनुशासनात्मक उपागम के नाम से जाना जाता है। इस दिशा में ईस्टन का व्यवस्था सिद्धांत, आमण्ड व पॉवेल का संरचनात्मक-प्रकार्यात्मक उपागम, हर्बट साईमन का निर्णय-निर्माण सिंद्धात, बेण्टले का समूह सिद्धांत, कार्ल डायच का संप्रेषण सिद्धांत और ईस्टन का व्यवहारवादी व उतर व्यवहारवादी प्रतिमान उल्लेखनीय है।

3.मूल्य निरपेक्ष अध्ययनः

परंपरागत उपागम मूल्य प्रधान उपागम था जिसकी वजह से अनुसंधान में पक्षपात दिखायी देता था परंतु आधुनिक उपागम एक मूल्य निरपेक्ष उपागम था। इसी मूल्य निरपेक्षता ने राजनीति विज्ञान को प्राकृतिक विज्ञानों की पंक्ति में उनके समकक्ष लाकर खड़ा कर दिया। ज्ञात रहे कि आगे चलकर मूल्य निरपेक्षता को वैज्ञानिकता की प्रामाणिकता की कसौटी के साथ जोड़ा गया।

4.तथ्य प्रधान और यर्थाथ अध्ययनः

काल्पनिक व चिंतनमूलक अध्ययन की अपेक्षा आधुनिक उपागम में तथ्यपरक एवं यर्थाथपरक अध्ययन को महत्वपूर्ण स्थान दिया गया। ब्राईस ने अपनी पुस्तक '**मॉडर्न डेमोक्रेसी**,1924 में लिखा कि हमारे अध्ययन का ध्येय केवल तथ्य, तथ्य और तथ्य है। लासवैल ने अपनी रचना '**हू गेटस, व्हाट, वेन एण्ड हाउ**,1936 में लिखा कि हम राजनीति के स्थानीय, क्षेत्रीय, राष्ट्रीय और अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर यर्थाथ क्रियाओं का अध्ययन व पर्यवेक्षण करने में विश्वास रखते है।

5.राजनीतिक कर्ताओं के व्यवहार और उसको प्रभावित करने वाले अनौपचारिक तत्वों का अध्ययनः

आधुनिक उपागम के अंतर्गत संस्थागत अध्ययन की अपेक्षा इन संस्थाओं के संचालनकर्ताओं के व्यवहार को अध्ययन का आधार बनाया गया ताकि निर्णयन की वास्तविकता को स्पष्ट किया जा सकें। व्यक्ति एक सामाजिक प्राणी होता है और इसलिए उसके व्यवहार पर अनेक कारकों का प्रभाव पड़ता है और उन कारकों के बारे में जानने पर ही उसके व्यवहार को समझा जा सकता है।

आधुनिक उपागम का आलोचनात्मक मूल्यांकनः

राजनीति विज्ञान के आधुनिक उपागम न राजनीति विज्ञान को एक नवीन स्वरूप प्रदान किया है। द्वितीय महायुद्ध के बाद राजनीति विज्ञान ने अपने समकक्ष विषयों में खोए हुए गौरव को पुनः प्राप्त कर लिया। आधुनिक उपागम में यर्थाथवाद व तथ्यपरकता पर

अधिक बल दिया गया जिसने राजनीति विज्ञान को प्राकृतिक विज्ञान बनाने की कोशिश की परंतु हमें यह समझना होगा कि वह सामाजिक प्रकृति का विषय है और इसीलिए उसे प्राकृतिक विज्ञान नहीं बना सकते अपितु सामाजिक विषयों में वैज्ञानिक प्रकृति का विषय बनाकर व्यक्ति के राजनीतिक व्यवहार को समझना सरल बनाया जा सकता है। आधुनिक दूनिया का ध्येय मानवीय सभ्यता को सुरक्षित बनाए रखना, शांति व सुरक्षा के वातावरण में मानवीय समुदाय के लिए एक समान गरिमामय जीवन की सुनिश्चिता को उपलब्ध कराना राजनति विज्ञान का मूल ध्येय है। संघर्ष मानवीय समुदाय की स्वाभाविक प्रवृति है तथापि उसकों कम करना और उसका समाधान शांति व अंहिसा की नीति के माध्यम से करना अनिवार्य है। इसी पथ पर अरस्तू के राजनीति विज्ञान के सदजीवन के ध्यये को और तथागत गौतम बुद्ध के राजनीतिक दर्शन के लक्ष्य को प्राप्त किया जा सकता है।

राजनीति विज्ञान विषय विज्ञान है अथवा विज्ञान नहीं है?

सामान्य रूप से किसी भी विषय के व्यवस्थित अध्ययन को ही विज्ञान माना जाता है, भले ही अध्ययन की पद्धति चिंतनमूलक हो या अनुभवमूलक हो। जहाँ तक राजनीति विज्ञान विषय के विज्ञान होने या नहीं होने का सवाल है, तो यह सामाजिक विज्ञान की एक शाखा है जो कि सामाजिक प्राणी अर्थात् व्यक्ति के राजनीतिक व्यवहार का अध्ययन करती है। इसलिए इसकी प्रकृति भी सामाजिकता के भाव के साथ जुड़ी होती है। अनेक राजनीतिक चिंतकों ने अपने-अपने नजरिए से राजनीति विज्ञान के विज्ञान होने या नहीं होने की वस्तुस्थिति का मूल्यांकन किया है जिसे निम्न स्वरूप में स्पष्ट किया गया हैः

राजनीति विज्ञान, विज्ञान नहीं हैः

इस उपागम के समर्थकों की मान्यता है कि राजनीति विज्ञान में व्यक्ति, समूह और संस्थाओं का अध्ययन किया जाता है जो कि चेतनशील सामाजिक व राजनीतिक प्राणी के द्वारा संचालित होते है। वह प्राणी अपने मूल्यों, वातावरण एवं अनेकानेक सामाजिक, आर्थिक व राजनीतिक कारकों से परिवर्तित हो जाता है। अतः उसे विज्ञान की कसौटी पर परखा नहीं जा सकता है। समाज उसकी प्रयोगशाला है जिसका वैज्ञानिक मापन संभव नहीं है। बक्ल, आगस्ट काम्टे, एफ डब्ल्यू मैटलेण्ड, अर्नेस्ट बार्कर, जेम्स ब्राइस, चार्ल्स ए बीयर्ड, जार्ज केटलिन, जेलेनिक, पॉल जेनेट, सिजविक जैसे चिंतक इसी दृष्टिकोण के समर्थक है।

- बक्ल के शब्दों में, ''ज्ञान की वर्तमान अवस्था में राजनीति विज्ञान को विज्ञान मानना तो दूर, यह कलाओं में भी सबसे पिछड़ी हुई कला है।''
- मैटलेण्ड लिखते है कि ''जब मैं किसी प्रश्न पत्र को देखता हूँ जिसका शीर्षक राजनीति विज्ञान होता है तो मुझे प्रश्नों पर नहीं अपितु शीर्षक पर खेद होता है।''

- बर्क के मत में, ''जिस प्रकार से सौन्दर्यशास्त्र विज्ञान नहीं हो सकता है, उसी प्रकार से राजनीति विज्ञान भी विज्ञान नहीं हो सकता है।''
- चार्ल्स बीयर्ड के मत में, ''राजनीति विज्ञान का विज्ञान होना असंभव है और यदि संभव है तो वह अवांछनीय है।''

इन चिंतकों ने अपने पक्ष में निम्न तर्क प्रस्तुत किये है-

1.सामान्यीकरण का अभाव होनाः

राजनीतिक चिंतकों के बीच किसी भी सिद्धांत, पद्धति या परिणाम पर मतैक्य नहीं होता है। वे उसकी परिभाषा, शब्दावली अथवा शीर्षक पर भी एकमत नहीं होते है, जितने विद्वान उतने ही विचार होते है।

2.विषय वस्तु में परिवर्तनशीलता व अनिश्चितता होनाः

इसकी विषय वस्तु व्यक्ति, समूह व समाज से संबंधित है जो कि कदापि स्थिर व निश्चित नहीं होते है। समाज ही राजनीति विज्ञान की प्रयोगशाला होती है। अतः इसे विज्ञान बनाना संभव नहीं है।

3.वैज्ञानिक पद्धतियों का अनुप्रयोग संभव नहीं हैः

इसकी विषय वस्तु से जुडे हुए राजनीतिक मूल्यों, मानकों एवं चेतनशील व्यक्ति के कारण उसके राजनीतिक व्यवहार में होने वाले बदलावों की वजह से वैज्ञानिक पद्धतियों जैसे कि मापन, सत्यापन, पर्यवेक्षण, कार्य व कारण में निश्चित संबंध या सहसंबंध होना, घटनाक्रमों अथवा व्यक्ति के भावी व्यवहार के बारे में स्पष्ट भविष्यवाणी करने में संभव न होने के कारण प्राकृतिक विज्ञानों की तरह विज्ञान बनाना संभव नहीं है।

राजनीति विज्ञान, विज्ञान हैः

दूसरे उपागम के समर्थक विद्वानों की मान्यता है कि राजनीति विज्ञान एक विज्ञान है जो प्राकृतिक विज्ञानों की श्रेणी का विज्ञान तो नहीं है अपितु मौसम विज्ञान, ज्योतिष विज्ञान की तरह विज्ञान है। किसी भी विषय की केवल विषय वस्तु के आधार पर विज्ञान का मापन सही नहीं है अपितु यदि किसी विषय वस्तु का क्रमबद्ध एवं व्यवस्थित तरीके से अध्ययन करना संभव हो तो वह विषय विज्ञान ही माना जाएगा। गार्नर के अनुसार विज्ञान से हमारा अभिप्राया किसी भी विषय के समग्र ज्ञान भण्डार से है जिसका पर्यवेक्षण, अनुभव एवं क्रमबद्ध अध्ययन किया जाना संभव हो। इस दृष्टिकोण के समर्थकों में अरस्तू, गार्नर, बोदा, हॉब्स, मॉण्टेस्क्यू, ब्लंशली, ब्राइस, मेडिसन, सीले आदि है।

- राजनीति विज्ञान के पितामह अरस्तू ने तो इसे 'मास्टर साईंस या सर्वोच्च विज्ञान या आचार्य विज्ञान' की संज्ञा दी है।
- मेडिसन के अुनसार यह राजनीति का विज्ञान है।

- पोलक के मत में, ''जिस प्रकार से नैतिकता विज्ञान है, उसी प्रकार से राजनीति विज्ञान भी विज्ञान है।'' निम्न बिंदुओं के आधार पर राजनीति विज्ञान के विज्ञान की प्रकृति का विषय होने का दावा किया गया हैः

1.राजनीति विज्ञान व्यवस्थित व क्रमबद्ध ज्ञान का भण्डार हैः

राजनीति विज्ञान ज्ञान का एक भण्डार है जिसे क्रमबद्ध एवं व्यवस्थित रूप से समझा जा सकता है। किसी भी विषय का अध्ययन यदि इन दोनों लक्षणों के आधार पर किया जा सकता है तो उसे विज्ञान कहा जा सकता है।

2.वैज्ञानिक पद्धतियों का प्रयोग संभव हैः

राजनीति विज्ञान की विषय वस्तु के अध्ययन के लिए तमाम तरह की सामाजिक विज्ञानों की वैज्ञानिक अध्ययन पद्धयितों का उपयोग किया जा सकता है। वैज्ञानिक पद्धतियों का उपयोग किसी विषय को विज्ञान की प्रकृति का प्रारूप प्रदान करने वाला सबसे मुख्य आधार होता है। यह पद्धति पर्यवेक्षण, सामान्यीकरण, व्याख्या और भविष्यवाणी के घटकों से जुड़ी होती है। अतः यह कहा जा सकता है कि राजनीति विज्ञान एक विज्ञान की प्रकृति का विषय है।

3.मानव के राजनीतिक व्यवहार की एकरूपता संभव हैः

मानवीय व्यवहार में भी हम एकरूपता को खोज सकते है। अंतःअनुशासनात्मक उपागम के माध्यम से हम मानवीय व्यवहार में एकरूपता की खोज कर सकते है। यह अध्ययन की समग्रता को व्यक्त करता है।

4.कार्य व कारण में संबंध खोजना संभव हैः

प्रत्येक राजनीतिक घटना के पीछे कोई न कोई कारण या कारक उतरदायी होता है। यह चिंतन अनुसंधान में कार्य-कारण के संबंध को व्यक्त करता है। यह सिद्धांत एवं व्यवहार के बीच समनव्य स्थापित करता है।

5.पर्यवेक्षण व परीक्षण संभव हैः

राजनीति विज्ञान की विषय वस्तु केवल दर्शन पर ही आधारित नहीं है अपितु यह अनुभवमूलक विषय वस्तु को भी शामिल करता है जिसका पर्यवेक्षण एवं परीक्षण किया जा सकता है। राजनीति विज्ञान में सिद्धांतों, शासन की कार्यप्रणालियों, संविधान व संविधानवाद, निर्वाचन प्रणालियों, राजनीतिक प्रणाली इत्यादि राजनीति विज्ञान विषय को विज्ञान के समकक्ष स्थान प्रदान करते है।

राजनीति विज्ञान एक कला हैः

बक्ल जैसे विद्वानों ने राजनीति विज्ञान को कलाओं में सबसे पिछड़ी कला के रूप में उद्धृत किया है। ज्ञातव्य हो कि ज्ञान के व्यावहारिक प्रयोग को ही कला के नाम से जाना जाता है। राजनीति विज्ञान इस मायने में एक कला है। संविधान का निर्माण और उसे लागू करना एक कला है। प्रशासन का संचालन करना एक कला है। राजनीतिक सता का संचालन करना एक

कला है। इन आधारों पर राजनीति विज्ञान को एक कला भी माना जा सकता है।

राजनीति विज्ञान एक दर्शन हैः

जैसा कि सर्वज्ञात है कि राजनीति विज्ञान का आरंभिक स्वरूप सुकरात व प्लेटों से लेकर कार्ल मार्क्स व जॉन रॉल्स तक राजनीतिक दर्शन से संबंधित था। दर्शन आत्मवाद-अनात्मवाद, सृष्टि का रहस्य, मानवता का चिंतन, कल्याण की भावना, मानवमात्र का हित, सत्य, प्रेम, करूणा, दया, अंहिसा, स्वतंत्रता, समता, न्याय जैसी दार्शनिक संकल्पनाओं को दर्शन के सहारे ही स्पष्ट किया जा सकता है। चिंतनमूलक या तत्वमीमांसा अथवा तार्किक पद्धति के माध्यम से राजनीतिक विषयों को स्पष्ट किया जा सकता है। इस आधार पर यह कहा जा सकता है कि राजनीति विज्ञान एक दर्शनशास्त्र है।

2

व्यवहारवाद एवं उत्तर व्यवहारवाद

पूर्व अध्याय में हमने राजनीति विज्ञान विषय के परंपरागत एवं आधुनिक उपागम के संदर्भ में इसके अर्थ, प्रकृति एवं विषय क्षेत्र का अध्ययन किया है। यह ज्ञातव्य है कि समय के साथ बदलाव होना स्वाभाविक है क्योंकि कुछ भी सनातन नहीं है, प्रत्येक क्षण परिवर्तित होता रहता है। यही कारण है कि पूरी दूनिया के ज्ञात राजनीतिक परिदृश्य में जो कि पांचवी शताब्दी से 19वीं सदी के अंत तक कुछ-कुछ बदलाव के साथ गमन कर रहा था। इसमें प्रथम विश्वयुद्ध 1914 से 1918 के दौर में और विशेषकर द्वितीय महायुद्ध 1939 से 1945 के कारण दूनियाभर के राजनीतिक परिदृश्य में आमूलचूल परिवर्तन हुआ जिसका प्रभाव राजनीति विज्ञान विषय पर अभिलक्षित होना स्वाभाविक था। शताब्दियों से चली आ रही राजतंत्रकालीन प्रणालियों, साम्राज्यवाद व उपनिवेशवाद का, जर्मनी, इटली व जापानी तानाशाही व्यवस्थाओं के पतन और लोकतांत्रिक प्रणालियों के उदय ने सबकुछ बदल दिया। इसी बदलाव के दौर में उदित परिवर्तन ने राजनीति विज्ञान अनुशासन में भी क्रांति की लहर को जन्म दिया जिसे व्यवहारवाद और उतर-व्यवहारवाद के नाम से जाना जाता है।

व्यवहारवाद या व्यवहारवादी उपागमः

व्यक्ति के व्यवहार पर केन्द्रित वैज्ञानिक उपागम को ही व्यवहारवाद के नाम से जाना जाता है जिसका उदय 20वीं सदी में हुआ है। ज्ञात रहे कि व्यवहारवाद राजनीति विज्ञान का आधुनिक उपागम ही है जिसने राजनीति विज्ञान के क्षेत्र में युगांतरकारी परिवर्तन कर दिया और इसीलिए इसे व्यवहारवादी क्रांति के नाम से पहचान मिली। यह स्वाभाविक है कि मानव जन्म से ही व्यवहारवादी होता है और इसीलिए वह दूसरों के व्यवहार से प्रभावित होता है। मैकियावली, हॉब्स, लॉक व रूसों ने मानवीय स्वभाव अथवा व्यवहार का आंशिक व एकपक्षीय विवेचन किया है।

व्यवहारवाद का उदय एवं विकासः

20वीं सदी में उदित व्यवहारवाद अमेरिका के शिकागों चिंतन या स्कूल की देन है।

अमेरिकन पॉलिटिकल साईंस एसोसिएशन और सोशल साईंस रिसर्च कौंसिल ने इसके विकास में प्रभावी भूमिका निभाई है। इसके साथ ही अमेरिका सरकार, फोर्ड, कोर्नेगी व राकफ्रेलर संस्थाओं के द्वारा शिकागों स्कूल को अनुसंधान के लिए अपार वितीय सहायता प्रदान की गई। **शिकागों सम्प्रदाय के चार्ल्स एडवर्ड मेरियम के सहयोगी डेविड एप्टर, पावेल, हेराल्ड लासवैल, रॉबर्ट ए डहल, कार्ल ड्यूश, जॉर्ज केटलिन और उसके शिष्यों वी ओ के जुनियर, डेविड ट्रूमेन, हर्बट साईमन, डेविड ईस्टन और जी बी आमण्ड, ल्यूसन पाई, सिबली, मार्टिन कैपलान**, इत्यादि राजनीति शास्त्रियों ने राजनीति विज्ञान को एक नवीन दिशा प्रदान की जिसे व्यवहारवादी क्रांति के नाम से पहचान मिली। 19वीं सदी के अंतिम दशकों एवं द्वितीय महायुद्ध से पूर्व तक के वैश्विक राजनीतिक वातावरण ने परम्परागत राजनीति विज्ञान की प्रासंगिकता पर सवाल खड़े कर दिए जिसके परिणामस्वरूप राजनीति विज्ञान को नया स्वरूप देने की आवश्यकता महसूस हुई और इस कमी की पूर्ति के लिए शिकागों सम्प्रदाय ने नेतृत्व की भूमिका हासिल की।

ग्राहाम वालास की रचना हयूमन नेचर इन पॉलिटिक्स,1908, ऑर्थर बेण्टले की दि प्रोसस ऑफ गवर्मेंट,1908, वाल्टर लिपमैन की 'पब्लिक ओपिनियन,1922, चॉर्ल्स मेरियम की रचना न्यू आस्पेक्ट्स ऑफ पॉलिटिक्स,1925 और हेराल्ड जे लासवैल की पॉलिटिक्सः हू गेटस? व्हाट? वेन? एण्ड हाउ,1936? डेविड बी ट्रूमैन की 'दि गवर्मण्ट प्रोसस,1950 कैटलिन की दि स्टडी ऑफ दी प्रिंसिपल्स ऑफ पॉलिटिक्स, साईमन की एडमिनिस्ट्रटिव बिहेवियर, लासवैल व कैपलान की पॉवर एण्ड सोसायटी, डेविड ईस्टन की दि पॉलिटिकल सिस्टम इत्यादि के लेखन के बाद व्यवहारवादी क्रांति का आगाज हुआ। वालास ने मानवीय स्वभाव के अध्ययन की बात पर बल दिया तो बेण्टले ने विद्यमान राजनीति विज्ञान का मृत राजनीति विज्ञान की संज्ञा देकर उसकी कमियों का उजागर किया। चॉर्ल्स मेरियम की पुस्तक को **व्यवहारवादियों या अनुभवादियों की 'बाईबल'** के नाम से पहचान मिली और उन्हें स्वयं को **व्यवहारवाद का बौद्धिक जनक** कहा गया। अमेरिकी पत्रकार **फ्रेंक कैण्ट ने पहली बार अपनी पुस्तक 'दि पॉलिटिकल बिहेवियर'** के अंतर्गत राजनीतिक व्यवहार और **व्यवहारवाद जैसे शब्दों का प्रयोग** किया। हर्बट स्टिंगटन ने इन्हें सार्थकता प्रदान की है।

व्यवहारवाद का अभिप्रायः

सेबाईन ने इसे व्यवहारवादी मानस, **ट्रूमैन ने व्यवहारवादी उपागम**, **ईस्टन ने व्यवहारवादी क्रांति** कहा है तो वही **डाहल ने इसे व्यवहारवादी आंदोलन** के नाम से पुकारा है। इसे बौद्धिक प्रवृति और राजनीति विज्ञान का शैक्षणिक आंदोलन माना जा सकता है। बैरलसन की मान्यता है कि 'मानवीय व्यवहार का सामान्यीकरण करना जिससे कि उसकों निष्पक्ष एवं आनुभाविक प्रमाणों के आधार पर स्पष्ट किया जा सके।' ट्रमैन ने इसके अर्थ को दो संदर्भों व्यवहारवादी पवृति एवं वैज्ञानिक दृष्टि के संयोजन के रूप में अभिव्यक्त किया है। संक्षिप्त रूप में कहे तो व्यवहारवाद अध्ययन का एक नया प्रारूप या ढ़ाचा उपलब्ध कराता है, वह स्वयं व्याख्या नहीं करता है। इस प्रारूप के दो घटक है-अध्ययन का केन्द्रीय विषय

और अध्ययन की पद्धति। वह यह बताता है कि अध्ययन का मुख्य विषय व्यक्ति या राजनीतिक व्यवहार को निष्पादित करने वाले कर्ताओं को और उसके व्यवहार को प्रभावित करने वाले अनौपचारिक या सामाजिक कारकों का अध्ययन किया जाए और यह अध्ययन वैज्ञानिक पद्धतियों की सहायता से किया जाए। **ई एम किर्क पैट्रिक** के अनुसार व्यवहारवाद की चार विशेषताएं उभर कर सामने आयी जिनमें

1. ***व्यक्ति के राजनीतिक व्यवहार का अध्ययन।***
2. ***अंतःविषयक उपागम।***
3. ***तकनीक पर बल।***
4. ***आनुभाविक व्यवस्थित राजनीतिक सिद्धांतों का सर्जन।***

राजनीति विज्ञान में अद्वितीय बदलाव के कारण ही इसे व्यवहारवादी क्रांति के नाम से पहचान मिली। इसके अंतर्गत अध्ययन के दो प्रमुख घटक माने गए जिनमें एक था- अध्ययन का केन्द्रीय विषय और दूसरा अध्ययन की पद्धति। राजनीतिक संस्थाओं के अध्ययन के स्थान पर कार्यरत कर्ताओं के राजनीतिक व्यवहार को प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से प्रभावित करने वाले सामाजिक तत्वों के अध्ययन को केन्द्रीय स्थान प्रदान किया गया। इसी के साथ अध्ययन के लिए अंतःविषयक अध्ययन पद्धति, वैज्ञानिक पद्धति एवं वियना सर्किल के तार्किक प्रत्यक्षवाद का सहारा लेने पर बल दिया गया। डेविड ईस्टन ने औपचारिक रूप से **अमेरिकन पॉलिटिकल सांईस एसोसिएशन** के मंच से 1953 में व्यवहारवादी क्रांति का उद्घोष किया। ईस्टन ने अपने आलेख **'दि करण्ट मिनिंग ऑफ बिहेवियरलिज्म,1967'** के अंतर्गत व्यवहारवाद की स्पष्ट रूप से **8 प्रमुख विशेषताएं** उल्लेखित की जो कि निम्न हैः

1.नियमितताएंः

मानवीय जीवन में दैनिक घटनाक्रमों में नियमितताएं, समानताएं एवं विभिन्नताएं खोजना जिनके आधार पर विशिष्ट राजनीतिक परिस्थितियों में उसके व्यवहार की नियमतताएं सिद्धांत के रूप में स्थापित हो सके।

2.सत्यापनः

मानवीय व्यवहार के बारे में सामान्यकरण स्थापित करना जिससे कि व्यवहार का सत्यापन किया जा सके और उसके बारे में पूर्वानुमान लगाना संभव हो। इसलिए मानवीय राजनीतिक व्यवहार को समझने के लिए सर्वेक्षण, पर्यवेक्षण, अनुभवमूलक पद्धतियां का प्रयोग जिनका सत्यापन किया जा सके।

3.तकनीक या प्रविधियाँः

अनुसंधान पद्धति तकनीकों का उपयोग करना जिससे कि अध्ययन में वैज्ञानिकता को स्थापित किया जा सके। इसके लिए कम्प्यूटर, सांख्यिकी, तथ्य संकलन, समाकलन,

अवकलन व गणितीय पद्धतियों का उपयोग किया जाने बल दिया गया।

4.परिमाणन या परिमाणीकरणः

इस बात पर बल दिया गया कि समाज विज्ञानी भी प्राकृतिक विज्ञानियों की तरह से प्रमाणन के योग्य विषय सामग्री का संग्रहण करे और इस संग्रहित विषय सामग्री का माप-तौल यानि मात्रात्मक एवं गुणात्मक मापन किया जाए। सांख्यकीय एवं गणितीय पद्धतियों के माध्यम से मानवीय व्यवहार के बारे में प्रमाणित किये जाने वाले निष्कर्ष पर बल दिया गया।

5.मूल्य निरपेक्षताः

व्यवहारवादियों की सबसे प्रमुख विशेषता परंपरावाद की मूल्य आधारित नीति का परित्याग करना है। एक व्यवहारवादी के अपने आदर्श, लक्ष्य, भावनाएं एवं मूल्य होते है जिनसे उसे अपने अध्ययन को सदैव पृथ्थ्क रखना चाहिए। राजनीति विज्ञानी के लिए मूल्य निरपेक्ष होना अति आवश्यक है। उसके लिए अच्छा या बुरा कुछ नहीं होता है। शोधार्थी को नैतिक, मानपरक, मानवीय मूल्यों का पूर्णतया त्याग करना होता है। जैसा कि ब्राईस कहते है कि हमारा ध्येय केवल तथ्य, तथ्य और तथ्य है।

6.व्यवस्थीकरणः

व्यवहारवादियों ने अनुसंधान के लिए निश्चित शोध पद्धतियों, प्रक्रियाओं और तकनीकों को निर्धरित किया है। सुव्यवस्थित अनुसंधान, सिद्धांत एवं व्यवहार में सामंजस्य स्थापित करना, शोध द्वारा सिद्धांत की पुष्टि करना जिससे कि वैज्ञानिक व प्रामाणिक अनुसंधान को बढ़ावा दिया जा सके।

7.विशुद्ध विज्ञानः

सैद्धांतिक स्पष्टीकरण और राजनीतिक वास्तविकताओं को समझने के लिए वैज्ञानिक दृष्टिकोण को अपनाया गया। ज्ञान के अनुप्रयोग से पहले उसकी समझ, सिद्धांत का निर्माण एवं व्याख्या होना अपरिहार्य होता है। अतः राजनीति विज्ञान को भी प्राकृतिक विज्ञान के समकक्ष खडा करने का प्रयास किया गया।

8.समग्रता या एकीकरणः

राजनीति विज्ञानी केवल अपने राजनीतिक परिप्रेक्ष्य तक ही सीमित नहीं रहे अपितु मानवीय जीवन को पूर्णतया समझने के लिए अन्य विज्ञानों का सहारा लेना आवश्यक होता है, इसीलिए व्यवहारवादियों ने अंतःअनुशासनात्मक उपागम का समर्थन किया।

पहली विशेषता ईस्टन के विषय वस्तु स्पष्टीकरण से जुडी है जबकि दूसरी, तीसरी, चौथी, पांचवीं विशेषताएं पद्धति से जुडी है और 6वीं प्रक्रिया से सातवीं विज्ञान से और आठवीं अन्य विषयों से संबंध को बताती है।

व्यवहारवादी उपागम के गुण एवं अवगुणः

1. *वैज्ञानिक अध्ययन का आरंभ होना।*
2. *राजनीति विज्ञान में नवीन शब्दावली एवं नवीन पद्धतियां का प्रयोग होना।*
3. *मूल्य निरपेक्षता का समावेश होना।*
4. *अंतःअनुशासनात्मक उपागम का अनुप्रयोग होना।*
5. *वैज्ञानिक, परिष्कृत एवं अनूभवमूलक अध्ययन पद्धतियों का अनुप्रयोग।*
6. *अध्ययन को नवीन दिशा प्राप्त होना।*
7. *नवीन राजनीतिक सिद्धांतों, संकल्पनाओं एवं अवधारणाओं का विकास।*

व्यवहारवाद के अवगुण या सीमाएंः

1. *शब्दाडंबर एवं अत्यधिक खर्चीला उपागम।*
2. *राजनीति विज्ञान को विशुद्ध विज्ञान बनाने का व्यर्थ प्रयास करना।*
3. *मूल्यनिरपेक्षता पर अत्यधिक बल देना।*
4. *तकनीक व नवप्रवर्तन के उत्साह में विषय वस्तु को तिलांजलि देना।*
5. *समसामयिक सामाजिक व राजनीतिक समस्याओं के निदान में विफल।*

उतर-व्यवहारवादी उपागम

ईस्टन ने अपनी पुस्तक **दि पॉलिटिकील सिस्टम,1953** के अंतर्गत उतर व्यवहारवाद के तीन स्त्रोत बताएं है अर्थात् राजनीति विज्ञान को प्राकृतिक विज्ञान बनाने के प्रति असंतोष, भावी समस्याओं के समाधान का मार्ग खोजने की त्रीव अभिलाषा और राजनीति विज्ञानियों के समूह में उदित आंदोलन व बौद्धिक प्रवृति का होना। यही कारण है कि 20वीं सदी के अंतिम दशकों में व्यवहारवाद अपनी उपयोगिता खोने लगा जिसके परिणामस्वरूप व्यवहारवादी क्रांति के जनक डेविड ईस्टन ने स्वयं **अमेरिकन पॉलिटिकल सांईस एसोसिएशन के मंच से 65वें सम्मेलन, सितम्बर,1969** को **अध्यक्षीय उदबोधन** में कहा कि 'राजनीति विज्ञान को कठोर अनुशासन में ढ़ालने के प्रयास में हम अपनी मूल दिशा से भटक गए, अतः अब हमे उतर व्यवहारवादी बनना होगा। यह व्यवहारवादी आंदोलन की कमियों का सुधारवादी आंदोलन होगा, प्रतिसुधार नहीं। यह व्यवहारवाद की प्रतिक्रिया नहीं अपितु उसका परिष्कृत स्वरूप होगा। यह आगे की ओर बढ़ने का एक कदम है। यह परंपरावाद एवं व्यवहारवाद में समनव्य है परंतु परम्परावाद या व्यवहारवाद का पर्याय नहीं है। यह एक आंदोलन एवं बौद्धिक क्रांति दोनों है।

व्यवहारवादी आंदोलन समाज में विद्यमान समसामयिक समस्याओं व बदलावों को समझने में असफल रहा जिसके कारण दूनिया को एक नवीन प्रकार के शीत युद्ध का और नवीन समस्याओं का सामना करना पड़ा। इस आंदोलन के प्रणेता डेविड ईस्टन ने उतरव्यवहारवादी क्रांति के दो प्रमुख उद्घोष- **कर्म और प्रासंगिकता** को स्वीकार किया। इन्हें ईस्टन ने **संगति के धर्म** की संज्ञा दी है जिसकी **सात प्रमुख विशेषताएं** निम्नलिखित बतायी हैः

उतर व्यवाहरवाद की विशेषताएंः

1.शोध में तकनीक से पहले विषय या सारः

तकनीक की दृष्टि से उच्च कोटि का अनुसंधान जो कि समसामयिक समस्याओं का निदान करने में सफल नहीं हो तो उस तकनीक व अनुसंधान का कोई फायदा नहीं है।
व्यहवहारवादियों ने कहा था कि अस्पष्ट होने से गलत होना अच्छा है जिसके स्थान पर उतरव्यवहारवादियों ने कहा कि असंबद्ध रूप से निश्चित होने के स्थान पर अस्पष्ट होना श्रेष्ठ है।

2.सामाजिक परिवर्तन पर बलः

व्यवहारवादी उपागम ने केवल अध्ययन पद्धतियों व तकनीकों के बदलाव पर ही विशेष बल दिया लेकिन आवश्यकता समाज में बदलाव की थी। व्यक्ति एक चेतनशील सामाजिक प्राणी होता है। वह मशीनी दूनिया से नियंत्रित नहीं हो सकता है। अतः उसके व्यवहार में परिवर्तन से समाज में बदलाव की नीति को उतर व्यवहारवादी उपागम को मुख्य केन्द्र बनाया गया।

3.समस्याओं के निदान पर बलः

व्यवहारवाद की सबसे बड़ी खामी यह थी कि वह शिकागों के वातानुकूलित कक्षों से राजनीति विज्ञानियों का बाहर धरातल पर लाने का कार्य करने में असफल रहा। यही कारण है कि व्यवहारवाद समाज में विद्यमान समसामयिक समस्याओं का निदान करने में असफल रहा। इस वजह से यह उपागम अप्रासंगिकता के अवगुण से ग्रसित हो गया। समाजविज्ञानियों ने यह प्रश्न चिह्न लगाया कि ऐसे अनुसंधान व अध्ययन का क्या फायदा जो कि मानवीय समाज की समस्याओं से कोई वास्ता न रखता हो।

4.मूल्यों को महत्वपूर्ण भूमिका प्रदान करनाः

सर्वज्ञात है कि राजनीति विज्ञान समाज विज्ञान की ही एक शाखा है और इसकी विषय वस्तु एक चेतनशील मानव है जिसे विज्ञानरूपी प्रयोगशाला में बांधना संभव नहीं है।
डेविड ईस्टन ने कहा कि हमें सामाजिक मूल्यां को फिर से राजनीति विज्ञान के हृदय में महत्वपूर्ण स्थान देना होगा।

5.बुद्धिजीवियों की भूमिकाः

उतर-व्यवहारवादी उपागम ने केवल राजनीति विज्ञानियों को ही नहीं अपितु समसाययिक समस्याओं के समाधान के लिए एक समग्र निदानात्मक दृष्टिकोण को विकसित करने के

लिए सभी बुद्धिजीवियों से सहयोग प्राप्त करने की नीति पर बल दिया। जिस प्रकार से व्यवहारवाद ने अंतःअनुशासनात्मक उपागम की बात कही, उसी तरह से उतर व्यवहारवाद में बुद्धिजीवियों के लिए इस तरह के समग्र चिंतन को स्थापित करने की बात पर ध्यान दिया गया।

6.कर्म पर बलः

उतर-व्यवहारवादी उपागम में केवल अनुसंधान और उसके लिए श्रेष्ठ तकनीकों पर ही बल देने का समर्थन नहीं किया अपितु स्पष्ट रूप से यह घोषणा कर दी कि ऐसे अनुसंधान का कोई फायदा नहीं है जो कि केवल सैद्धांतिक पक्ष तक ही सीमित रहता है। वातानुकूलित कक्षों में विराजमान राजनीति विज्ञानियों से समाज को कोई फायदा नहीं है, यदि वे अपने अनुसंधान को धरातल से नहीं जोड़ पाते है। इस क्रांति के दो प्रसिद्ध उद्‌बोधन- कर्म व प्रासंगिकता या उपादेयता को स्वीकार किया गया।

7.व्यवसायों का राजनीतिकरणः

व्यवसायों के राजनीतिकरण का मतलब है कि राजनीति विज्ञान में उन सभी विशेषज्ञों का सहयोग लेना जो कि विविध व्यवसायों संबंधित हो और उस क्षेत्र में उनकी अनुसंधान व कार्य की कोई विशिष्ट उपलब्धि रही हो। इस गुण के माध्यम से समाज की सभी बौद्धिक प्रतिभाओं का लाभ समाज के सर्जन में हो सकेगा। इसे व्यक्त करते हुए ईस्टन ने कहा है कि बुद्धिजीवियों की समाज में सकारात्मक भूमिका के निर्वहन के लिए सभी व्यवसायों को राजनीति से संबद्ध करना अनिवार्य एवं वांछनीय है।

उपयुक्त विशेषताओं के अलावा उतर व्यवहारवाद ने राजनीति विज्ञान में निम्न महत्वपूर्ण बदलावों को स्थापित किया हैः

1. *वैज्ञानिक सामाजिक मूल्यों को स्वीकृति या तथ्यों के साथ तालमेल।*
2. *राजनीति विज्ञान समाज विज्ञान है, प्राकृतिक विज्ञान नहीं।*
3. *कर्म व प्रासंगिकता पर बल।*
4. *तीसरी दूनिया के देशों पर ध्यान देना।*
5. *दूनियाभर की राजनीतिक प्रणालियों को समझने एवं विश्लेषित करने के लिए नवीन राजनीतिक सिद्धांतों का विकास।*

3

राजनीति विज्ञान एवं अन्य सामाजिक विज्ञान

जैसा हमें ज्ञात है कि राजनीति विज्ञान प्राचीनकाल में समाज विज्ञान के अंतर्गत ही अध्ययन व अध्यापन का भाग रहा है। अरस्तू के चिंतन से यह एक स्वतंत्र विषय के रूप में स्थापित हुआ तथापि इसका यह अभिप्राय नहीं है कि वह समाज विज्ञान या उससे स्वतंत्र उदित अन्य समाज विज्ञानों से पूर्णतया स्वतंत्र हो गया है। कोई भी विषय अपने आपमें पूर्ण नहीं होता है। यही कारण है कि विशेषकर समाज विज्ञान के अनुशासनों में अंतःविषयात्मक दृष्टिकोण की आवश्यकता होती है जिसे अंतःअनुशासनात्मक उपागम के नाम से भी जाना जाता है। सिजविक के अनुसार किसी भी विषय को पूर्ण रूप से समझने के लिए अन्य विज्ञानों से उसके संबंधों का अध्ययन करना महत्वपूर्ण होता है। इस उपागम का मूल ध्येय किसी भी विषय के स्वतंत्र विकास में और ध्येय की प्राप्ति में अन्य विषयों के सहयोग को अपेक्षित बनाए रखना है। ज्ञातव्य है कि जिस प्रकार से अर्थशास्त्र में व्यक्ति के व्यवहार के आर्थिक पक्ष का अध्ययन किया जाता है, लोक प्रशासन में व्यक्ति के प्रशासनिक व्यवहार के पक्ष का, इतिहास में व्यक्ति के ऐतिहासिक पक्ष का, नीतिशास्त्र में नैतिक पक्ष का, दर्शनशास्त्र में दार्शनिक पक्ष का, समाजशास्त्र में सामाजिक पक्ष का, उसी तरह से व्यक्ति के व्यवहार के राजनीतिक पक्ष का अध्ययन करने वाला विषय राजनीति विज्ञान कहलाता है। राजनीति विज्ञान एवं अन्य सामाजिक विषयों से कैसे संबंध रखता है? एक विषय को पूर्णता के साथ समझने के लिए उसे अन्य विषयों की सहायता से समझना पड़ता है जिसे अंतःविषयक या अंतर्विषयक या अंतःशास्त्रीय उपागम कहा जाता है। इस उपागम को राजनीति विज्ञान के संदर्भ में निम्न स्वरूपों में समझा जा सकता है।

राजनीति विज्ञान और इतिहास के बीच अंतःसंबधः

इतिहास मानवीय जीवन की स्मृतियों को बनाए रखने वाली समाज विज्ञान की वह शाखा है जिसके बिना किसी व्यक्ति, संस्था या संगठन के ऐतिहासिक स्वरूप को समझना संभव नहीं है। आज का घटनाचक्र आने वाले समय का इतिहास बन जाता है। इतिहास, राजनीति

विज्ञान के लिए जड़ का कार्य करता है जिसके अभाव में हम राजनीति विज्ञानरूपी वृक्ष की कल्पना नहीं कर सकते है। जैसा कि सर जॉन सीले कहते है कि ''राजनीति विज्ञान के बिना इतिहास का कोई फल नहीं है और इतिहास के बिना राजनीति विज्ञान की कोई जड़ नहीं है।''

राजनीति विज्ञान एवं इतिहास के बीच अंतः संबंध:

1. *इतिहास मानवीय जीवन के अनुभवों का संरक्षित दस्तावेज होता है जिसके बिना राजनीति विज्ञान के वर्तमान को समझ पाना संभव नहीं है।*
2. *आधुनिक राजनीतिक संस्थाओं को समझने के लिए उनके प्राचीन स्वरूप यानि इतिहास को जानना अपरिहार्य होता है।*
3. *राजनीति विज्ञान व इतिहास दोनों एक दूसरे के लिए पूरक है। यदि इन दोनों को एक दूसरे से अलग कर दिया जाएं तो दोनों ही शून्य हो जाएंगें। इसका आभास हमें जॉन ब्रगेस के इस कथन से भी होता है कि ''यदि राजनीति विज्ञान और इतिहास को एक-दूसरे से अलग कर दिया जाए तो उनमें से एक मृत नहीं तो कम से कम पंगु हो जाएगा और दूसरा बालू का ढ़ेर मात्र बनकर रह जाएगा।''*
4. *राजनीति विज्ञान, इतिहास पर निर्भर होता है। इतिहास राजनीति विज्ञान को बहुमूल्य आधार सामग्री उपलब्ध कराता है। राजनीति विज्ञानी उपलब्ध ऐतिहासिक तथ्यों के आधार पर ही राजनीतक संस्थाओं व राजनीतिक प्रणालियों के उदय, विकास एवं पतन के स्वरूप को समझा जा सकता है। ऐतिहासिक ज्ञान के आधार पर ही भविष्य का स्वरूप तैयार किया जा सकता है। इतिहास राजनीति विज्ञान को तुलना एवं सुधार की सामग्री प्रदान करता है। विलोबी ने इतिहास को राजनीति विज्ञान की तीसरी सीमा कहकर संबोधित किया है। लॉड एक्टन कहते है कि ''राजनीति विज्ञान, इतिहाय की धारा में उसी प्रकार संचित है जिस प्रकार नदी की रेत में सोने के कण।'' इतिहास, राजनीति विज्ञान के लिए पथ प्रदर्शक की भूमिका का निर्वहन करता है।*
5. *इतिहास की राजनीति विज्ञान पर निर्भरताः न केवल राजनीति विज्ञान, इतिहास पर निर्भर है अपितु इतिहास भी राजनीति विज्ञान पर निर्भर होता है। इतिहास की घटनाएं राजनीतिक विचारों का प्रतिफल होती है। अंतर्राष्ट्रीय स्तर की तमाम क्रांतियां, बदलाव, आंदोलन, चिंतन सब राजनीति विज्ञान की ही देन है। इसके महत्व को व्यक्त करते हुए लीकॉक ने कहा है कि ''इतिहास का कुछ भाग राजनीति विज्ञान है।*

राजनीति विज्ञान व इतिहास में विभेदः

1. *विषय क्षेत्र का अंतरः इन दोनों के बीच विषय क्षेत्र को लेकर अंतराल होता है। इतिहास का विषय क्षेत्र राजनीति विज्ञान की अपेक्षा बहुत अधिक व्यापक होता है। आज की राजनीति भी आने वाले को इतिहास में परिवर्तित हो जाती है। गुजरा हुआ समय किसी भी विषय वस्तु को इतिहास में परिवर्तित कर देता है। जैसा कि फ्रिमैन कहते है कि ''इतिहास*

अतीत की राजनीति है और राजनीति वर्तमान का इतिहास है।"

2. *अध्ययन के ध्येय का अंतरः राजनीति विज्ञान एवं इतिहास के बीच ध्येय के आधार पर भी अंतर होता है। इतिहास का ध्येय वर्णनात्मक है जबकि राजनीति एक आदर्शात्मक ध्येय के साथ जुडा हुआ है। राजनीति विज्ञान सदैव ऐतिहासिक अनुभवों को ध्यान में रखते हुए आने वाले बेहतर कल के लक्ष्य पर कार्य करता है।*
3. *काल का अंतरः इतिहास भूतकाल से संबंध रखता है जबकि राजनीति विज्ञान उज्ज्वल भविष्य के साथ जुडा होता है।*

राजनीति विज्ञान और अर्थशास्त्र के बीच अंतः संबंधः

दीर्घकाल तक अर्थशास्त्र राजनीति विज्ञान की ही एक शाखा के रूप में रहा है। इसे आज भी राजनीतिक अर्थशास्त्र के नाम से जाना जाता है। एडम स्मिथ ने अपनी पुस्तक 'वेल्थ ऑफ नेशन' में राजनीतिक अर्थशास्त्र का विवेचन किया है। अर्थशास्त्र व राजनीति विज्ञान दोनों के बीच घनिष्ठ व मधुर संबंध होते है। अरस्तू के चिंतन से ही संपति का अपना महत्व रहा है और यहां तक कि अरस्तू ने तो दास समुदाय को सजीव संपति के रूप में व्यक्त किया है। जॉन लॉक ने सम्पति के अधिकार की विवेचना की है। अर्थशास्त्र ऐसा विषय है जो कि व्यक्ति के आर्थिक व्यवहार का अध्ययन एवं विश्लेषण करता है। मार्शल के चिंतन में "अर्थशास्त्र एक ओर संपति का अध्ययन करता है तो दूसरी और मानव का अध्ययन करता है।"

राजनीति विज्ञान व अर्थशास्त्र में संबंधः

1. *दोनों ही समाज विज्ञान के अंग है। एक राजनीतिक व्यवहार का और दूसरा आर्थिक व्यवहार का अध्ययन करता है।*
2. *दोनों का ध्येय मानव का कल्याण करना है।*
3. *दोनों एक-दूसरे के पूरक है। 18वीं सदी तक तो अर्थशास्त्र राजनीति की ही एक शाखा थी और इसीलिए इसे राजनीतिक अर्थशास्त्र के नाम से जाना जाता था।*
4. *आर्थिक क्रियाएं अन्य क्रियाओं को प्रभावित करती हैः कार्लमार्क्स के अनुसार "मानवीय चेतना व्यक्ति के सामाजिक अस्तित्व का निर्धारण नहीं करती है अपितु उसका सामाजिक अस्तित्व ही उसकी चेतना का निर्धारण करता है।" मार्क्स आर्थिक कारकों को ही तमाम राजनीतिक घटनाक्रम का आधार माना है।*
5. *राजनीतिक क्रियाओं का ध्येय आर्थिक क्रियाओं को नियंत्रित करना होता हैः व्यक्तिवाद, समष्टिवाद, समाजवाद, मार्क्सवाद इत्यादि का ध्येय आर्थिक ही है।*
6. *आर्थिक असंतोष राजनीतिक आंदोलनों का मुख्य कारक होता हैः अरस्तू ने असमता एवं अन्याय को क्रांति का कारक माना है। मार्क्स का पूरा चिंतन ही इसी पर आधारित है। निओं की धारणा व नव उपनिवेशवाद सभी इसी से जुडे है।*

7. *राजनीति, आर्थिक तत्वों को प्रभावित करती हैः राज्य की नीति व निर्णय आर्थिक गतिविधियों को प्रभावित करते है।*

राजनीति विज्ञान व अर्थशास्त्र में अंतरः

1. **क्षेत्र संबंधी अंतरः** *राजनीति का क्षेत्र व्यापक एवं अर्थशास्त्र का सीमित होता है। ब्राउन के शब्दों में एक का संबंध मूल्यो से है और दूसरे का कीमतों से है।''*
2. **ध्येय संबंधी अंतरः** *अर्थशास्त्र आर्थिक ध्येय से जुडा है जबकि राजनीति शास्त्र का ध्येय राजनीतिक होता है।*

राजनीति विज्ञान और समाजशास्त्र के बीच अंतःसंबंधः

समाजशास्त्र को मानव के सामाजिक जीवन का शास्त्र कहा जाता है। आगस्ट काम्टे के अनुसार समाजशास्त्र सभी शास्त्रों का जनक है। सब कुछ समाज के भीतर ही समाहित होता है। 1839 में उन्होंनें इसे समाज का विज्ञान कहकर संबोधित किया है। यह व्यक्ति के सामाजिक जीवन के संगठित व असंठित दोनों ही पक्षों के अध्ययन को शामिल करता है। यह शास्त्र सामाजिक संबंधों का अध्ययन करता है। इसीलिए **मैकआईवर ने इसे 'संबंधों का जाल''** कहा है। गिंडिस के अनुसार यह समाज का क्रमबद्ध एवं व्यवस्थित अध्ययन है। व्यक्ति एक राजनीतिक एवं सामाजिक प्राणी होता है। प्रत्येक राजनीतिक संस्था अपने पूर्व रूप में सामाजिक संस्था ही रही है। राजनीति विज्ञान में व्यवहारवाद, व्यवस्था सिद्धांत, समूह सिद्धांत इत्यादि समाजशास्त्र की ही देन है।

राजनीति विज्ञान व समाजशास्त्र में अंतःसंबंधः

1. *व्यक्ति एक राजनीतिक प्राणी होता है लेकिन इससे पूर्व वह एक सामाजिक प्राणी था, यह उसे समाजशास्त्र से ही मालूम पडता है।*
2. *इनकी निर्भरता का आभास गिंडिस के इस कथन से होता है कि ''समाजशास्त्र के मूल सिद्धांतों से अनभिज्ञ व्यक्ति को राजनीति शास्त्र पढ़ाना वैसा ही है जैसा कि न्यूटन के गुरूत्वाकर्षण के सिद्धांत से अनभिज्ञ व्यक्ति को खेगोल विद्या, उष्णता या यंत्र विद्या की शिक्षा देना।''*
3. *यदि कोई व्यक्ति सामाजिक नहीं होता तो कदापि राजनीतिक नहीं हो सकता है।*
4. *समाजशास्त्र के बिना राजनीति विज्ञान को समझना असंभव है।*
5. *समाजशास्त्र के अनेकानेक सिद्धांत, सामाजिक पहचान के कारक, राजनीतिक व्यवहार के मूल घटक समाज से ही राजनीति विज्ञान तक आते है।*
6. *समाजशास्त्र या समाज राजनीति विज्ञान की राजनीतिक प्रयोगशाला है जिसके अभाव में कोई भी राजनीतिक प्रयोग किया जाना संभव नहीं है।*

राजनीति विज्ञान और समाजशास्त्र में विभेदः

1. **क्षेत्र संबंधी अंतरः** ***राजनीति*** *शास्त्र की तुलना में समाज शास्त्र का विषय क्षेत्र बहुत व्यापक है। राजनीति विज्ञान केवल राजनीतिक पक्ष का अध्ययन करता है तो वही समाज शास्त्र में सामाजिक जीवन के व्यापक पक्ष का अध्ययन किया जाता है।*
2. **ध्येय संबंधी अंतरः** *राजनीति विज्ञान केवल राजनीतिक ध्येय से जबकि समाजशास्त्र सामाजिक ध्येय से अध्ययन करता है।*

राजनीति विज्ञान और नीतिशास्त्रः

नीतिशास्त्र वह अनुशासन है जिसमें उचित-अनुचित, धर्म-अधर्म, पाप-पुण्य, कर्म-अकर्म संबंधी अध्ययन किया जाता है। मैंकैजी के शब्दों में ''नीतिशास्त्र मानवीय आचरण में निहित आदर्श का अध्ययन है।'' यह सामान्य जन को एक अच्छा मानव कैसे बने? इसके बारे में अधिगम कराने वाला शास्त्र है। राजनीति विज्ञान जिस व्यक्ति के राजनीतिक पक्ष का अध्ययन करना चाहता है, उस व्यक्ति को श्रेष्ठ स्वरूप देने का कार्य नीतिशास्त्र करता है।

राजनीति विज्ञान व नीतिशास्त्र में संबंधः

सुकरात, प्लेटों जैसे चिंतकों ने व्यक्ति में सद्गुणों की बात कही है। अरस्तू ने राजनीति विज्ञान में राज्य का ध्येय अपने नागरिकों के लिए 'सद् जीवन' की स्थापना को माना है। हीगल ने तो व्यक्ति को नैतिकता का सर्वोतम संरक्षक माना है। बोसांके ने राज्य को नैतिक विचार का मूर्तरूप बताया है। इस तरह से नीतिशास्त्र व राजनीति शास्त्र दोनों एक दूसरे के पूरक है।

राजनीति विज्ञान व नीतिशास्त्र में अंतरः

मैकियावली ने नीतिशास्त्ररूपी धर्म व राजनीति को एक दूसरे से अलग माना है। हॉब्स की मान्यता है कि नीतिशास्त्र, राजनीति शास्त्र का पराधीन होता है। मार्क्स ने इसे धर्मरूपी अफीम कहा है।

1. **क्षेत्र संबंधी अंतरः** *नीतिशास्त्र का विषय क्षेत्र राजनीति शास्त्र से बहुत व्यापक है। राजनीति शास्त्र राजनीतिक पक्ष तक सीमित है परंतु नीतिशास्त्र मानवीय आचरण की वजह से बहुत विस्तृत है।*
2. **आदर्श एवं व्यवहार में अंतरः** *नीतिशास्त्र आदर्शात्मक अध्ययन है। उसका कार्य अच्छाई सिखाना है परंतु व्यक्ति उसे कार्यरूप देता है या नहीं, यह व्यक्ति पर निर्भर है। राजनीति शास्त्र आदर्श के साथ-साथ यर्थाथ पक्ष का भी अध्ययन करता है।*

राजनीति विज्ञान और मनोविज्ञानः

व्यक्ति के मन का वैज्ञानिक तरीके से अध्ययन करने वाला विषय ही मनोविज्ञान है।

व्यक्ति का मन ही उत्पति एवं विनाश का कारक होता है। लॉर्ड ब्राईस लिखते है कि ''राजनीति की जड़े मानव जाति की मानसिक एवं ऐच्छिक प्रवृतियों में पायी जाती है।'' मैकियावली, हॉब्स, लॉक व रूसों जैसे चिंतकों ने मानवीय स्वभाव के अनुकूल ही शासन प्रणालियों के स्थापना की वकालात की है। किसी भी व्यक्ति के मन को जान लेने वाला व्यक्ति दीर्घकाल तक उस व्यक्ति की वैधता को प्राप्त कर लेता है। इसीलिए तो मानसिक दासता को हीनतम दशा के रूप में व्यक्त किया जाता है।

राजनीति विज्ञान एवं मनोविज्ञान में संबंधः

1. *हॉब्स ने मनोवैज्ञानिक भौतिकवाद के अधीन ही व्यक्ति के मन का अध्ययन किया है।*
2. *व्यक्ति के मनोविज्ञान के समझे बिना राजनीतिक निर्णय लेना संभव नहीं होता है।*
3. *किसी भी शासन सता के लिए जनता के मनोविज्ञान को जानना अपरिहार्य है।*
4. *धर्म, जाति, वर्ग, लिंग, रंग, प्रजातिगत भेदभाव या समता अथवा पहचान की राजनीति का मूल मनोविज्ञान में ही निहित होता है। राज्य के अनेकानेक कानूनों के बावजूद भी इनका बना रहना इसी का स्पष्ट प्रमाण है।*
5. *राजनीति विज्ञान जिस व्यक्ति के राजनीतिक व्यवहार का अध्ययन करना चाहता है, उसमें मनोवैज्ञानिक पद्धतियों का निर्णायक योगदान रहता है।*

राजनीति विज्ञान एवं मनोविज्ञान में भिन्नताः

1. **क्षेत्र संबंधी अंतरः** *मनोविज्ञान का क्षेत्र व्यक्ति के मनोवैज्ञानिक पक्ष से संबंधित है जबकि राजनीति विज्ञान के विषय क्षेत्र में मनोविज्ञान भी शामिल रहता है क्योंकि वह व्यक्ति के व्यवहार का अध्ययन करता है।*
2. **ध्येय संबंधी अंतरः** *मनोविज्ञान का ध्येय केवल व्यक्ति की मनोदशा को जानकार उसके हित में कार्य करना है परंतु राजनीति विज्ञान व्यक्ति की मनोदशा को जानकार उसके द्वारा किये जाने वाले कार्यों व कारको का अध्ययन करता है।*

4

शक्ति, सत्ता एवं वैधता

राजनीति विज्ञान की अनेक महत्वपूर्ण राजनीतिक अवधारणाएं है जिनमें से तीन है- शक्ति, सता और वैधता। राजनीति विज्ञान के आधुनिक उपागम के माध्यम से शक्ति की अवधारणा राजनीति विज्ञान की केन्द्रीय अवधारणा के रूप में स्थापित हुई है। इसी शक्ति को राजनीति विज्ञान में विविध स्वरूपों में विश्लेषित किया गया है। शक्ति व्यक्तिगत इकाई या व्यक्ति से लेकर राष्ट्रीय स्तर तक अपना प्रभाव रखती है। यही कारण है कि यह व्यक्ति की ही शक्ति नहीं है अपितु राष्ट्र की भी शक्ति होती है जिसे राष्ट्रीय शक्ति के नाम से जाना जाता है। इस शक्ति को जब संस्था का आवरण पहना दिया जाता है तो वह लोगों को अधिसता के रूप में दिखायी देती है। यदि इस संस्थागत शक्ति के लिए जनता की स्वाभाविक सहमति को अर्जित कर लिया जाता है तो यह स्थायीत्व की अवस्था को प्राप्त कर लेती है जिसे दीर्घकाल तक किसी खतरे का सामना नहीं करना पड़ता है। इस अध्याय में इन तीनों ही अवधारणाओं के बारे में परिचर्चा करेंगें।

शक्ति की अवधारणाः

शक्ति मानवीय एवं पाश्विक जीवन का सबसे प्रभावी कारक होता है। सामान्यतया राजनीति विज्ञान स्वयं ही शक्ति का परिचायक है और इसीलिए अरस्तू ने इसे **मास्टर साईंस** कहा है। थैसीमेकस ने **शक्तिशाली के हित को ही न्याय** बताया है। मैकियावली ने संपूर्ण राजनीतिक चिंतन का ध्येय ही शक्ति को बताया है। हॉब्स ने इसे **अनंत पराकाष्ठा** कहा है। एरिक कॉफमेन ने **राज्य का मूल ध्येय शक्ति के विकास, वृदि्ध एवं प्रदर्शन** को माना है। शक्ति भले या बुरे किसी भी रूप में हो, वह सदैव मानवीय स्वभाव में विद्‌यमान रही है। वह परिवार से राजतंत्र तक और स्थानीय शासने से लोकतंत्र के अंतर्राष्ट्रीय स्तर तक सदैव प्रचलन में रही है। केटलिन, लासवैल, मार्गन्थाउ, कैपलान आदि ने इसे व्यक्त किया है। मॉर्गेन्थाउ ने अंतर्राष्ट्रीय राजनीति को शक्ति के लिए संघर्ष की राजनीति कहा है। राजनीति विज्ञान अनुशासन में शक्ति का अध्ययन 20वीं सदी में केन्द्रीय विषय बन गया। प्रत्येक राजनीतिक प्राणी शक्ति को प्राप्त करना चाहता है और वह भले ही किसी भी रूप में

हो। अभिप्राय यह है कि हर व्यक्ति चाहता है कि वह शक्तिशाली बने। व्यवहारवाद ने शक्ति को केन्द्रीय स्थान प्रदान किया है।

- *केटलिन जैसे चिंतक ने तो राजनीति विज्ञान का अर्थ ही शक्ति का विज्ञान व्यक्त किया है।*
- *बेकर ने तो यह घोषणा ही कर दी है कि ''राजनीति, शक्ति से अपृथ्थकनीय है।''*
- *लासवैल व कैपलान कहते है कि ''शक्ति की अवधारणा राजनीति विज्ञान की मूलभूत धारणा है।''*
- *केटलिन ने कहा है कि ''राजनीति, शक्ति का विज्ञान है।''*
- *रॉबर्ट बायर्सटेड लिखते है कि प्रत्येक संरचना व संगठन के पीछे शक्ति निहित होती है, उसके बिना इनका अस्तित्व हो ही नहीं सकता है।''*
- *लॉर्ड एक्टन कहते है कि ''शक्ति व्यक्ति को भ्रष्ट करती है और पूर्ण शक्ति उसे पूर्णरूप से भ्रष्ट करती है।''*

शक्ति का अर्थ एवं परिभाषाः

शक्ति प्रत्यक्ष व अप्रत्यक्ष रूप से विविध स्वरूपों में अंतर्निहित होती है जिसे परिभाषित करना आसान नहीं है। लोग जो कुछ करना नहीं चाहते है, उनसे वैसा कराने की क्षमता को सामान्य रूप से शक्ति कहा जा सकता है। शक्ति के विविध अर्थ इसे और जटिल बनाते है। अनेक विद्वानों ने शक्ति को इस तरह से परिभाषित किया हैः

- *मैक्स वेबर के अनुसार ''सामाजिक संबंधों के भीतर एक कर्ता द्वारा दूसरों की इच्छा के विरूद्ध अपनी इच्छा को लागू करने की संभावना ही शक्ति है।''*
- *लासवेल के अनुसार ''शक्ति एक विशिष्ट प्रभाव की स्थिति है।''*
- *बट्रेण्ड रसल के अनुसार, ''शक्ति इच्छित प्रभावों की उपज है।''*
- *के जे फ्रेडरिक, ''शक्ति एक प्रकार का मानवीय संबंध है।''*
- *पिफनर व शेरवुड के अनुसार ''शक्ति आदेश की क्षमता है।''*

शक्ति के अर्थ की व्यापकताः

शक्ति को किसी परिभाषा व अभिप्राय में सीमित करना संभव नहीं है। वह क्या है और क्या नहीं है? इसका कोई भी स्पष्ट जवाब खोजना संभव नहीं है। वह किस रूप में रहती है और किस तरह से कार्य करती है। इसे समझना आसान नहीं है। हम केवल परिणाम देखकर बता सकते है कि कोई शक्ति कार्यरत है या नहीं। शक्ति की व्यापकता को निम्न बिन्दुओं के आधार पर स्पष्ट करने की कोशिश की गई हैः

1.शक्ति बल प्रयोग के रूप मेंः

अधिकांश व्यक्ति शक्ति का अर्थ ताकत या बल से लेते है जिसे हम पाश्विक शक्ति या

शारीरिक बल जैसे कि सेना, पुलिस या अन्य रक्षा बल इसी के अर्थ में प्रयुक्त है।

2.प्रभाव प्रक्रिया के रूप में शक्तिः

मानवीय आचरण में परिवर्तन को ही शक्ति के रूप में व्यक्त किया जा सकता है। डहल, लासवेल व रोवे ने शक्ति को दूसरे व्यक्ति के व्यवहार को बदलने की क्षमता रखने वाली प्रभाव प्रक्रिया के रूप में स्वीकार किया है।

3.नियंत्रण के रूप में:

शक्ति का मतलब दूसरे लोगों पर नियंत्रण से भी लिया जाता है। केटलिन व मोर्गेथाउ ने शक्ति का नियंत्रण के रूप में माना है।

4.सामान्य प्रवृति के रूप में:

प्रत्येक व्यक्ति शक्ति को प्राप्त करना चाहता है और यह उसकी स्वाभाविक लालसा होती है। हॉब्स ने शक्ति की इसी मानवीय प्रवृति का द्योतक माना है।

5.संभावना के रूप में शक्तिः

माओं ने शक्ति को संभाव्य कला कहा है। शक्ति किसी के पास है या नहीं अपितु यह महत्वपूर्ण है कि उसकी संभावना को दिखाकर मनोवैज्ञानिक रूप से किसी को अपने अधीन कर लेना ही संभाव्य शक्ति है।

इसके अलावा शक्ति को बांटने की नीति या प्रक्रिया, सहमति या असहमति की प्रक्रिया, सत्य व असत्य की नीति या संकल्प के रूप में भी स्वीकार किया जाता है।

शक्ति के लिए आवश्यक शर्तें:

शक्ति कोई शून्यता की स्थिति नहीं है। यदि शक्ति है तो वह किसके पास है और उसका प्रयोग किसके लिए किया जा रहा है? यह जानना जरूरी है। शक्ति की कुछ आधारभूत शर्तें निम्न हैः

1.व्यक्तियों अथवा अनुयायियों का होना आवश्यकः

किसी भी व्यक्ति या संगठन को शक्तिशाली तभी माना जा सकता है जबकि उसके पीछे अनुयायी हो। हवा में शक्ति को कोई नहीं जानता है। अतः शक्ति के लिए अधीनस्थों का होना आवश्यक है।

2.अन्य शक्तियों की उपलब्धता का होनाः

शक्ति कोई अकेला रूप नहीं है अपितु शक्ति के साथ उसके मूल व पूरक घटक भी जुडे होते है। शक्ति के समानांतर उसके दूसरे स्वरूप भी होते है जिनका होना आवश्यकत है। जैसे कि आर्थिक, राजनीतिक, सामाजिक या अन्य।

3.औचित्यता का आधार होनाः

शक्ति का प्रभाव दीर्घकाल तक बना रहे, इसके लिए आवश्यक है कि शक्ति के प्रयोग को औचित्यता के साथ जोडा जाए क्योंकि प्रत्यक्ष शक्ति कुछ समय के लिए ही प्रभावी होती

है परंतु यदि उसे औचित्य के साथ समायोजित कर दिया जाए तो वह चिरकाल तक स्थायी बनी रहती है।

4.शक्ति संवद्र्धन, संचयन एवं नियत्रिंतः

शक्ति को निरंतर बढ़ाना, उसका संवद्र्धन करना और उसे नियंत्रण में रखना उसके अपरिहार्य घटक होते है।

शक्ति के मुख्य स्त्रोतः

जिस तरह से शक्ति के विविध स्वरूप होते है, उसी प्रकार से शक्ति के अनेक स्त्रोत होते है जो कि निम्न हैः

1.बल या भौतिकताः

यह शक्ति का पहला प्रमुख स्त्रोत है जिसे ताकत या भौतिक तत्व कहते है। जैसे कि पुलिस अथवा सेना।

2.अधिसताः

बल या भौतिक शक्ति को संस्थायीकृत स्वरूप मिलते ही वह अधिक प्रभावी हो जाती है। इसके साथ ही अधिसता प्रत्यक्ष शक्ति को तलवार एवं म्यान का स्वरूप प्रदान करती है। जैसे कि सार्वजनिक पद व प्रतिष्ठा।

3.आर्थिक साधनः

यह शक्ति को आर्थिक स्वरूप प्रदान करता है। जैसे कि पैसा, धन आदि।

4.निजी व्यक्तित्व या करिश्माः

यह भी शक्ति का प्रभावी स्त्रोत होता है। लोग करिश्माई व्यक्तिव के दीवाने हो जाते है। जैसे कि हिटलर, लेनिन, भगतसिंह, गांधी व भीमराव अम्बेडकर का करिश्मा।

5.ज्ञानः

यह मनोवैज्ञानिक शक्ति का स्वरूप है। ज्ञान शक्ति का प्रधान स्त्रोत माना जाता है। भारत देश पर ब्राहृमणतंत्र का प्रभावी होना इसी ज्ञान की शक्ति का बूरा स्वरूप है।

6.संगठन व उसका आकारः

राज्य स्वयं एक संगठन है। संगठन में शक्ति होती है। यही कारण है कि वह अन्य संगठनों की तुलना में सबसे अधिक शक्तिशाली शक्ति का प्रतिनिधितव करता है।

शक्ति के प्रकारः

शक्ति के प्रदर्शन व निर्माण के आधार पर शक्ति के विविध प्रकार होते है जो कि निम्न हैः

1.व्यक्ति के व्यवहार परिवर्तन के आधार पर शक्ति के प्रकारः

गोल्ड हेमर और एड्वर्ड शिल्स ने व्यवहार परिवर्तन के आधार पर शक्ति के तीन प्रकार बताएं है अर्थात् बल, प्रभुत्व एवं चातुर्य। एक व्यक्ति द्वारा दूसरे व्यक्ति के व्यवहार को प्रत्यक्ष बल या भौतिक शक्ति के आधार पर बदल देना ही बल कहलाता है। जैसे पुलिस कार्यवाही करना। एक व्यक्ति द्वारा अपने व्यक्तिव के माध्यम से किसी दूसरे व्यक्ति के

व्यहार को बदल देना ही प्रभुत्व है। जैसे कि नेता का आग्रह, और अपने चालाकी से छल से किसी दूसरे व्यक्ति के व्यवहार को अपने ध्येय के अनुरूप बदल देना ही चातुर्य शक्ति है। जैसे कि महाभारत में जुए का खेल।

2.औचित्य के आधार पर शक्ति के प्रकारः

जर्मन समाजशास्त्री एवं दार्शनिक चिंतक मैक्स वेबर ने शक्ति के आदेश की अनुपालना के स्वाभाविक स्वरूप अर्थात औचित्य के आधार पर शक्ति जिसे वह अधिसता या संस्थागत शक्ति कहता है, उसके तीन प्रकार बताएं है।

- **परंपरागत अधिसताः** शक्ति के इस स्वरूप में लोग आदेश की अनुपालना इसलिए करते है कि ऐसा परंपरागत रूप से होता आया है। भले ही वह बुरा या अच्छा हो।
- **वैधानिक-तार्किक अधिसताः** इस प्रकार की शक्ति को स्त्रोत राज्य का संविधान या कानूनी व्यवस्था और सताधारी की बुद्धिमता होती है और लोग इसकी अनुपालना इसलिए करते है कि इसके पास वैधानिक व तार्किक शक्ति होती है। वेबर ने नौकरशाही को इस शक्ति का प्रतीक माना है।
- तीसरी **करिश्माई अधिसता** होती है जो कि व्यक्ति के व्यक्तित्व या उसकी करिश्माई व्यक्तित्व पर निर्भर करती है।

3.दृश्यता व दमनात्मक स्वरूप के आधार पर शक्ति के प्रकारः

रॉबर्ट बायर्सटेड ने शक्ति के चार प्रकार बताएं है जिनमें

- *दृश्य शक्ति जो कि बल या सता के रूप में दिखायी देती है।*
- *अदृश्य शक्ति जो वास्तव में प्रयुक्त रूप में दिखायी नहीं देती है।*
- *दमनात्मक शक्ति जिसमें बल का प्रयोग दमन के रूप में होता है और*
- *अदमनात्मक जिसमें बल का प्रयोग दमन के रूप में नहीं होता है।*
- *औपचारिक शक्ति जो कि संविधान या नियमों के अधीन किसी संगठन व संरचना में निहित होती है।*
- *अनौपचारिक शक्ति जो कि व्यक्तिगत संबंधों पर निर्भर करती है।*
- *प्रत्यक्ष शक्ति का अर्थ है स्वयं शक्तिधारक के द्वारा अपनी शक्ति का प्रयोग करना जबकि*
- *अप्रत्यक्ष शक्ति का मतलब है शक्तिधारक के अलावा दूसरे व्यक्ति या अधीनस्थ के द्वारा शक्ति का प्रयोग करना।*

4.प्रवाह के आधार पर शक्ति के प्रकारः

शक्ति की दिशा या प्रवाह के आधार पर इसके तीन स्वरूप होते है, जैसे कि एकपक्षीय,

द्विपक्षीय और बहुपक्षीय।

इनके अलावा रॉबर्ट ए डाहल कहते है कि शक्ति को संभाव्य शक्ति अर्थात् जिसका प्रयोग करने की संभावना रहती है और वास्तविक शक्ति जिसका प्रयोग किया जाता है।

शक्ति की सीमाएंः

शक्ति की सफलता अनेकानेक कारकों पर निर्भर करती है। यह अधीनस्थों, समय, परिस्थितियों, क्षमताओं, राजनीतिक, सामाजिक, आर्थिक व पारिस्थिकीय वातावरण पर निर्भर करती है।

शक्ति के विविध आयामः

शक्ति विविध स्वरूपो में विद्यमान होती है और इसीलिए वह भिन्न प्रभाव भी रखती है तथापि शक्ति के तीन आधारभूत आयाम होते है।

1.राजनीतिक शक्तिः

इसके दो महत्वपूर्ण अंग माने जाते है अर्थात् औपचारिक अंग जिसमें विधायिका, कार्यपालिका और न्यायपालिका शामिल है जबकि अनौपचारिक भाग में लोकमत, दबाव समूह, राजनीतिक दल, जन आंदोलन, जनसंपर्क के साधन इत्यादि शामिल है।

2.आर्थिक शक्तिः

उत्पादन के साधनों पर स्वामित्व, जनसंपर्क के साधनों पर स्वामित्व व नियंत्रण, चुनावों के लिए वितीय सहायता इत्यादि। मार्क्स जैसे दार्शनिकों ने आर्थिक शक्ति को ही राजनीतिक शक्ति को आधार माना है। प्राचीनकाल से राजनीतिक शक्ति उसी के हाथों में रही है जिसके हाथों में उत्पादन के साधनों का नियंत्रण अर्थात् आर्थिक शक्ति केन्द्रित रही है।

3.विचारधारात्मक या वैचारिक शक्तिः

सर्वोतम शासन प्रणाली से जुडी मान्ताएं, शासक वर्ग की वैधता की स्थापना, जन साधारण के सोचने व समझपे की तरीके पर नियंत्रण स्थापित करना। यह एक मनोवैज्ञानिक शक्ति है जिसके माध्यम से अधीनस्थों पर पूर्ण नियंत्रण स्थापित किया जा सकता है। दूनियाभर में दक्षिणपंथी या वामपंथी या अन्य राजनीतिक दलों की मुख्य शक्ति को वैचारिक शक्ति के रूप में व्यक्त किया जा सकता है।

अधिसता या सत्ता

शक्ति को प्रत्यक्ष रूप से ताकत या बल के रूप में देखा जाता है और यह नकारात्मक अर्थ व्यक्त करती है, अवैध स्वरूप में दिखायी देती है या जंगल कानून का समर्थन करने वाली लगती है परंतु यदि इसे संस्थागत स्वरूप दे दिया जाए तो इसका सारा संदर्भ ही बदल जाता है। शक्ति नंगी तलवार की तरह है जिसे मयान में रखते ही, वह मर्यादित दिखायी देने लगती है। शक्ति के प्रति दृष्टि बदलने वाली इकाई का नाम ही राजनीतिक अधिसता या सता है।

शक्ति व वैधता के स्वरूप को ही सता के नाम से जाना जाता है। वैधता, शक्ति व सता को के बीच की कड़ी है। सता या प्राधिकार या अधिसता इसे किसी भी संगठन की आत्मा कहा जाता है। यह संगठन परिवार से लेकर संयुक्त राष्ट्र संघ तक हो सकता है लेकिन प्रत्येक संगठन की एक संस्थायीकृत शक्ति होती है और इसे ही अधिसता कहा जाता है।

अधिसता का अभिप्रायः

सता या **अथॉरिटी शब्द की उत्पति लैटिन भाषा के आक्टोरिटास** से हुई है जिसका अर्थ है बढ़ना। प्राचीनकाल में रोम में सता का प्रयोग सीनेट द्वारा किया जाता था जिसे रोमन अधिसता कहते थे। ये आदेश धर्म व देवी-देवताओं की इच्छाओं के अनुकूल माने जाते थे। इसी तरह से मूसा के कानून। अरस्तू ने रेटॉरिक को सता के रूप में प्रयोग किया था अर्थात् तार्किक सता। फ्रेडरिक के अनुसार अपनी इच्छा को तार्किकता का स्वरूप देना ही सता है। सता एक तरह से क्षमता से जुडी हुई अवधारणा है। साईमन कहते है कि निर्णयन की क्षमता ही सता है। यह निर्णय लेने की और उच्चस्थ व अधीनस्थ के संबंध की शक्ति है। शक्ति का संस्थागत स्वरूप ही शक्ति के नाम से जाना जाता है। यूएनओं अभिकरण यूनेस्को के द्वारा **1955 ई के एक प्रतिवेदन में उल्लेख किया गया है कि 'सता वह शक्ति है जो कि स्वीकृत, सम्मानित, ज्ञान व औचित्यपूर्णता से संबंधित हो।'**

सता का स्वभाव या प्रकृतिः

सता की प्रकृति के संबंध में **प्रोफेसर बीच** ने दो सिद्धांत स्वीकार किये है जिनमें एक है **औपचारिक सता सिद्धांत** और दूसरा **स्वीकृति सता सिद्धांत**।

- प्रथम सिद्धांत के अनुसार सता का प्रवाह उपर से नीचे की ओर या उच्चस्थ से अधीनस्थ की ओर होता है। इससे से एक पदसोपनीय शक्ति संरचना का निर्माण होता है।
- दूसरे सिद्धांत के लिए बर्नाड ने चार शर्तों को आवश्यकत माना है अर्थात्
- **अधीनस्था आदेश या सूचना को समझता हो;**
- **उसे यह विश्वास हो कि आदेश संगठन के लक्ष्यों के साथ संगत है;**
- **समग्रता के रूप मे आदेश की अनुपालना उसके व्यक्तिगत हित में भी है और**
- **अधीनस्थ शारीरिक व मानसिक रूप से आदेश पालन में सक्षम हो।**
- सता की प्रकृति को लेकर सामान्यतया दो प्रकार के विचार विद्यमान है। प्रथम कानूनी या औपचारिक और दूसरा व्यावहारिक। कानूनी स्वभाव के अनुसार सता वैधानिक व अनन्य स्वरूप में होती है। इस मत के अनुसार सता किसी संगठन या संरचना में ही निहित होती है किसी व्यक्ति विशेष में नहीं होती है, वह तो उसका उपयोगकर्ता मात्र होता है, मालिक नहीं। सता का प्रयोग करने वाला या सताधारक भले ही अपने अधीनस्थों से कमजोर, कम बुद्धिमान या सामान्य हो तो भी उसके पास आदेश-निर्देश की शक्ति होती है। इसीलिए सता का स्वभाव कानूनी ही माना जाता है। सता आदेश, पुरस्कार व दण्ड देने की क्षमता रखती है। मैकाइवर सता की प्रकृति के इस स्वरूप को ही

'शासन का जादू' कहा है।

दूसरा पक्ष इसे सापेक्ष या संबंधों पर आधारित मानता है। व्यवहारवादी समर्थक सता के औपचारिक एवं अनौपचारिक दोनों ही पक्षों पर ध्यान देते है। इनकी मान्यता है कि व्यवहार में औपचारिक स्वरूप की वजह से ही अनौपचारिक संगठन व संरचनाएं उदित होती है। इन अनौपचारिक संबंधों के आधार पर ही सता अपने प्रभाव को स्थापित कर वैधता प्राप्त करती है। अतः सता की यह प्रकृति प्रभावी है। निष्कर्ष के रूप में सता के ये दोनों स्वरूप ही अपरिहार्य होते है।

सता के प्रमुख स्त्रोतः

सता भी शक्ति की तरह अनेक आधारों या स्त्रोतों पर निर्भर रहती है। सता के प्रमुख आधार विश्वास, औचित्यपूर्णता, स्वाभाविक जनसहमति, वैचारिक एकरूपता, अधीनस्थों की प्रकृति, पर्यावरणीय दबाव, विशेषज्ञता, सताधारी का ज्ञान व कौशल, प्राधिकारी नियम इत्यादि है।

सता की सीमाएंः

शक्ति की तरह ही सता भी सदैव के लिए असीमित नहीं होती है अपितु उस पर भी अनेकानेक बाधाएं या परिसीमाएं होती है जिनमें आंतरिक व बाह्य सीमाएं, ध्येय, प्रकिया, वैधता, स्थायीत्व, सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक एवं पारिस्थितिकीय कारक इत्यादि।

सता के प्रकारः

जर्मन समाजशास्त्री और दार्शनिक चिंतक मैक्सवेबर ने शक्ति को सता के रूप में व्यक्त किया है। मैक्सवेबर नौकरशाही सिद्धांत के प्रथम प्रतिपादक भी रहे है। उनकी मान्यता है कि कोई भी व्यक्ति किसी दूसरे व्यक्ति की आज्ञा या आदेश का पालन तीन कारणों से करता है और इन्हीं तीन कारणों को वह तीन प्रकार की शक्तियां के नाम से अभिव्यक्त करता है। उसके अनुसार सता के तीन प्रकार हैः परम्परागत सता, कानूनी-तार्किक सता और करिश्माई सता।

1.परम्परागत अधिसताः

मैक्सवेबर की मान्यता है कि यदि कोई व्यक्ति किसी दूसरे व्यक्ति की आज्ञा का पालन इसलिए करता है कि ऐसा परम्परागत रूप से होता आया है। राजा का सम्मान करना, माता-पिता की आज्ञा मानना, दया व करूणा की भावना, सहयोग या मदद करना इत्यादि परंपरा दर परंपरा के माध्यम से सता का हस्तांतरण होता है। इसके पीछे एक सामाजिक शक्ति भी अनौपचारिक रूप से कार्य करती रहती है जिसे ही परंपरा का नाम दिया गया है। इसके अंतर्गत विकासशील समाजों जैसे कि भारत, पाकिस्तान आदि में अमानवीय व शोषणकारी, अन्यायपूर्ण सामाजिक व धार्मिक परंपराएं भी हो सकती है जिनका पालन किया जाता है।

2.कानूनी-तार्किक अधिसताः

वेबर स्वयं नौकरशाही सिद्धांत का प्रतिपादक था। उसने इन तीनों अधिसताओं में से दूसरी सता को सर्वाधिक महत्व दिया है और उसे ही तार्किक, प्रामाणिक व जनहितकारी माना है। वेबर के अनुसार आधुनिक राज्यों में नौकरशाही या स्थायी कार्यपालिका या राज्य सता के अनुचरों के द्वारा जिस सता का प्रयोग किया जाता है, उसे कानूनी और तार्किक सता के नाम से जाना जाता है। यह सता वैधानिक तो इसलिए है क्योंकि इसका स्त्रोत स्वयं राज्य का संविधान और उसके द्वारा निर्मित कानून होते है। दूसरा हर कोई व्यक्ति इस सता का धारण नहीं कर सकता है, केवल बुद्धिमान एवं विवेकशील नागरिक ही निर्धारित मानकों को पूर्ण करने पर इस सता का प्रयोग कर सकते है। इस सता के पीछे राज्य की पुलिस शक्ति का निवास होता है और इसीलिए इसका उल्लंघन करने वालों को प्रत्यक्ष शक्ति या बल का सामना करना पड़ता है। यह सता आधुनिक राज्यों का आधार है।

3.करिश्माई अधिसताः

वेबर के अनुसार शक्ति या सता का यह स्वरूप स्वयं व्यक्ति में निवास करता है और इसका स्त्रोत भी स्वयं व्यक्ति का व्यक्तित्व या करिश्मा होता है। इसके पीछे किसी प्रकार की दण्डशक्ति तो नहीं होती है परंतु प्रभाव की शक्ति होती है जिसकी वजह से अधीनस्थ सदैव उसकी पालना में ही विश्वास रखता है। जैसे कि गौतम बुद्ध, वी आई लेनिन, हिटलर, मुसोलिनी, कमाल पाशा, माओ त्से तुंग, आंग सान सू की, गांधी की सता इसी करिश्माई सता के प्रतीक रहे है।

वैधता

शक्ति व वैधता के स्वरूप को ही सता के नाम से जाना जाताह है। वैधता, शक्ति व सता के बीच की कड़ी है। शक्ति के सहारे कोई शासक धरती पर और वैधता के सहारे लोगो के हृदय पर शासन करता है। इसे वैधता या औचित्यपूर्णता या स्वाभाविक जनसहमति के रूप में अभिव्यक्त किया जा सकता है। किसी भी प्रकार की शक्ति को अथवा संस्थागत शक्ति या अधिसता को न्यायसंगत बनाने या उसे दीर्घकाल तक बनाए रखने या उसमें स्थायित्व लाने के लिए औचित्यपूर्णता सबसे महत्वपूर्ण कारक है। यदि किसी भी प्रकार की शक्ति या सता को लोगों के उपर शासन के स्वरूप को बनाए रखना है तो उसके लिए यह अपरिहार्य होता है कि अपने अधीनस्थों के विश्वास को बनाए रखें और इस विश्वास को बाए रखने का कार्य वैधता के द्वारा ही किया जाता है।

वैधता या औचित्यपूर्णता का अर्थः

शक्ति एवं सता की तरह ही वैधता को भी परिभाषित करना आसान कार्य नहीं है। फ्रेडेरिक

के शब्दों में "वैधता नियमों और शासकों के न्यायसंगत होने का प्रतीक है।" वैधता शासकों को शासन करने की शासितों की सहमति है। यह शासक वर्ग के शासन करने के अधिकार की नैतिक स्वीकृति है।

वैधता की प्रकृतिः

औचित्यता की प्रकृति को निम्न आधारों पर स्पष्ट किया जा सकता है-

1.वैधता कोई व्यक्तिनिष्ठ तत्व या नैतिक भावना नहीं है अपितु स्वाभाविक जनसहमति हैः

वैधता मूलतः शासक को जनता की प्राप्त स्वाभाविक जनसहमति है। जब तक जनता को यह विश्वास है कि उसका शासक जनहित में न्यायसंगत कार्य कर रहा है तब तक उसे कोई चुनौती नहीं है लेकिन जिस दिन यह विश्वास उठ जाता है कि वह जनहित विरोधी है तो उसी दिन सता संकट में पड़ जाती है।

2.वैधता स्वयं औचित्य नहीं है अपितु मानकीय आवश्यकता हैः

सभी प्रकार की शासन प्रणालियों के लिए सता में बने रहने हेतु वैधता की प्राप्ति एक मानक के स्वरूप वाली आवश्यकता होती है जिसके अभाव में सता का अस्तित्व खतरे में पड़ जाता है। अतः वैधता स्वयं कोई औचित्य नहीं है अपितु जनता की सहमति ही इसके लिए मानकीय आवश्यकता के रूप में औचित्यता का निर्धारण करती है।

औचित्यपूर्णता वैधानिकता की पर्याय नहीं अपितु उससे भी व्यापक हैः वैधानिकता का मतलब औचित्यता से नहीं है। कोई अवैध सता भी वैधता के आधार पर बनी रह सकती है परंतु वैधता के बिना वैधानिक सता भी संकट में पड़ जाती है। औचित्यता वह विश्वास है जो वैधानिकता से भी व्यापक अर्थ रखता है।

3.औचित्यता एवं सता दोनों एक दूसरे के पूरक होते हैः

सता एवं वैधता एक दूसरे के लिए संवृद्धि एवं संरक्षण का कार्य करती है। औचित्यता के बिना सता का अस्तित्व हो सकता है परंतु दीर्घकाल के लिए व स्थिर नहीं। इसी तरह से बिना सता के औचित्यता की कोई प्रासंगिकता नहीं होती है। यदि वैधता एवं सता एक दूसरे के साथ होती है तो दोनों ही व्यापक स्वरूप को प्राप्त कर लेती है।

वैधता के स्त्रोतः

सामान्यतया परंपरा, नियमों व कानूनों या संविधान, करिश्माई व्यक्तित्व और विचारधारा इत्यादि को वैधता के स्त्रोत माना जाता है।

5

संविधानवाद

विकास की प्रक्रिया में धीरे-धीरे आदिमानव ने होमोसोपियन से आगे बढ़कर विकसित स्वरूप को अर्जित कर लिया है। इसी के साथ परंपरागत और प्राचीन स्वरूप में बदलाव आता रहा है। जैसे-जैसे मानव एक संगठन के रूप में रहने लगता है तो संगठन का संचालन करने के लिए तथा मानवीय जीवन में व्यवहार को संयमित रखने के लिए कुछ नियमों और कानूनों की आवश्यकता होती है। प्राकृतिक कानून से लेकर मानवीय कानून की अवधारणा इसी बदलते हुए संगठित मानवीय समाज का प्रतिफल है। राजनीतिक शक्ति का संचालन करने के लिए आधुनिक राष्ट्र राज्य के विकसित मानवीय समाज ने शासन व्यवस्था के संचालन से संबंधित विभिन्न और विविध प्रकार के कानूनों, नियमों का भी निर्माण किया है जिसे संविधान कहा जाता है। आधुनिक राष्ट्र राज्य अमेरिका दुनिया के सबसे लघु संविधान और प्रथम लिखित संविधान के रूप में जाना जाता है जबकि ब्रिटिश राज्य को दूनिया के प्राचीनतम अलिखित संविधान के रूप में पहचाना जाता है। विकासशील देशों की पंक्ति का नेतृत्व करने वाले देश भारत के संविधान को दुनिया का सबसे विशालतम लिखित संविधान माना जाता है।

संविधान और संविधानवाद में अंतःसंबंधः

1. *सामान्य शब्दों में संविधान से हमारा अभिप्राय किसी देश में शासन व्यवस्था के संचालन के लिए बनाए गए कानूनों, नियमों और निर्देशों के सामूहिक स्वरूप से होता है अर्थात राजनीतिक व्यवस्था के संचालन के नियम सामूहिक रूप से संविधान कहलाते हैं जो कि किसी मानव समूह या व्यक्ति या संविधान सभा के द्वारा बनाए जाते है।*
2. *संविधान किसी भी राजनीतिक प्रणाली की शक्तियों का उद्गम स्रोत होता है। संविधान एक ऐसी व्यवस्था है जो कि यह निर्धारित करती है कि राजनीतिक, कानूनी और सामाजिक रूप से समाज को शासित कैसे किया जाए? लोकतंत्र की प्रकृति प्रत्यक्ष रूप से संविधान की पृष्ठभूमि से प्रभावित होती है। संविधान उन सिद्धान्तों का समूह है जो*

शासित और शासन के बीच के सम्बन्धों को आपस में समायोजित करता है और शासन की शक्तियों का निर्धारण करता है। अतः संविधान के लिए संविधानवाद एक आवश्यक विशेषता है।

3. *संविधान लिखित स्वरूप में एक कानूनी दस्तावेज होता है अथवा यह अलिखित स्वरूप में लोगों के व्यवहार में अभिलक्षित होता है और यदि यह अलिखित स्वरूप, ब्रिटेन व सउदी अरब की तरह, में हो सकता है तो फिर इसको लिखने की आवश्यकता क्यों पडती है? यूनानी विचारक अरस्तू ने व्यक्ति की इच्छा के अनुसार शासन की अपेक्षा कानून के शासन की वकालात क्यों की है। ब्रिटिश विचारक ए. वी. डायसी ने भी 'कानून के शासन' की अवधारणा को महत्व क्यों दिया है? ऐसे अनेकानेक प्रश्न हमारे जहन में उद्वेलित होते रहते है।*
4. *संविधानवाद की अवधारणा तो तब शुरू होती है जब शक्तियों को सीमित करने की ओर कदम बढाते है। भारत के प्राचीन चिंतन में राजा को धर्म के अनुरूप आचरण करने के लिए प्रतिबद्ध किया गया है। वही पाश्चात्य चिंतन में अरस्तू ने कानून के अनुसार शासन संचालन की धारणा पर बल दिया है। मूनरों के द्वारा ब्रिटिश संविधान को लिखित व कानूनी दस्तावेज की अपेक्षा कानून के अनुसार या मानवीय आचरण का व्यावहारिक दर्शन कहा गया है जो कि ब्रिटिश लोगों के व्यवहार में अभिव्यक्त होता है। दूसरी ओर वे देश जहाँ व्यापक स्वरूप में संविधान एक लिखित दस्तावेज के रूप में उपलब्ध है, वहाँ के नागरिक अधिंकाशतया उनका पालन नहीं करते है जो कि संविधानवाद की मूल भावना के खिलाफ है। किसी भी शासन प्रणाली के द्वारा किया गया मौखिक वादा संविधानवाद की प्रत्याभूति नहीं होती है। जब शासन प्रणालियाँ स्वयं इन सीमाओं का पालन व अभ्यास करती है तों हम विश्वास कर सकते है कि सरकारे संविधानवाद के विचार के अनुरूप कार्य कर रही है।*
5. *फ्रांसीसी विचारक मॉण्टेस्क्यू के द्वारा लोकतांत्रिक दूनिया को शासन के तीन अंगों व्यवस्थपिका, कार्यपालिका और न्यायपालिका के बीच 'शक्तियों के पृथ्थक्रण' तथा 'नियंत्रण व संतुलन' के सिद्धान्त को लागू करने का विचार दिया है जो कि संविधानवाद की संक्लपना को यथार्थ स्वरूप देने का सार्थक प्रयास है। शासन के तीनों अंग एक दूसरे से स्वतंत्र रहकर कार्य करते है तथापि वे एक दूसरे के साथ अन्तः निर्भर भी होते है। ऐसी शासन प्रणाली जहाँ व्यक्तियों पर व्यक्तियों के द्वारा शासन किया जाता है वहाँ पहले तो सरकार को नियंत्रित करना होता है और इसके पश्चात् स्वयं को नियंत्रित करना होता है।*
6. *किसी भी शासन प्रणाली या सरकार के पास शक्तियाँ होती है और इन शक्तियों की सीमा संविधानवाद है। किसी भी सरकार का मूल ध्येय समाज का सामूहिक हित करना होता है परन्तु कोई भी शासन प्रणाली सभी लोगों को संतुष्ट नहीं कर सकती है तथापि उसे अधिकतम लोगों के हितों को पूर्ण करना होता है।*

7. *तानाशाही और मनमानी शक्तियों का संविधानवाद से कोई सम्बन्ध नहीं है। संविधानवाद आधारभूत रूप से सर्वसताधिकारवाद की प्रतिरोधी धारणा है। किसी भी संविधान के प्रारूप के पीछे का मूल ध्येय सरकार व उसके अंगों की शक्तियों को सीमित या प्रतिबन्धित करना होता है। संविधानवाद की व्यवस्था के अन्तर्गत ही नागरिक तमाम सुविधाओं और स्वतंत्रताओं का उपभोग कर सकते है तथा इसी में समानता और न्याय की जीत होगी।*
8. *शासन के अंगों की शक्तियों और कार्यों का विभाजन और पृथ्थक्रण भी संविधान के नियमों के अनुरूप ही किया जाता है। इस संविधान की रक्षा करने के लिए न्यायपालिका रूपी संगठन का गठन किया जाता है। संविधानवाद किसी भी संविधान के पीछे निहीत श्रेष्ठ भावना होती है। संविधान के द्वारा दी गई शक्तियों का मर्यादा में रहकर अथवा सीमित रूप से उपयोग करना ही संविधानवाद है। यह शासन है जिसकी शक्तियाँ विभाजित होती है और वह नियमों से भी सीमित होती है।*
9. *संविधानवाद, संविधान द्वारा प्रदत्त की गई शक्तियों पर नियंत्रण लगाता है। वह राज्य की शक्तियों को सीमित करता है। संविधानवाद व्यक्ति या समूह के किसी भी प्रकार के मनमाने नियमों का विरोध है। इसका सामान्य अर्थ यह है कि लोकसेवक या सरकारी कार्यालयों को कुछ भी कर लेने की स्वतंत्रता नहीं होती है अपितु वे संविधानवाद से नियिंत्रत होते है। राजनीतिक प्रणाली में संतुलन बनाए रखता है। राज्य की शक्तियों से नागरिकों की सुरक्षा करता है। इस प्रकार की अवधारणा को ही संविधानवाद के नाम से जाना जाता है।*
10. *आदर्श संविधान और संविधानवाद दोनों ही एक दूसरे की पूरक अवधारणाएं हैं। यदि संविधान, शासन व्यवस्था का संचालन करने वाले लिखित या अलिखित नियमों का समूह नहीं होगा तो संविधानवाद की अवधारणा भी नहीं होगी।*
11. *यदि नियमों का समूह संविधान है तो इन नियमों के अनुरूप शक्तियों के प्रयोग को नियमन, नियंत्रण और संतुलन को ही संविधानवाद कहा जाता है। संविधान मानवीय सभ्यता के लक्ष्यों को प्राप्त करने का एक साधन होता है।*
12. *यदि राज्य इस संविधान का उपयोग अपने आप को साध्य मानकर करने लगे और मानवीय सभ्यता को अथवा मानव समुदाय को एक साधन के रूप में देखे तो इसे ही संविधान का उल्लंघन या राज्य की तानाशाही अथवा हॉब्स का राज्य कहा जाता है। जिस उद्देश्य के लिए राज्य का निर्माण हुआ अथवा विकास हुआ या जिस लक्ष्य के लिए राज्य का उदय हुआ है और जिस लक्ष्य को प्राप्त करने के लिए ही राज्य बना हुआ है अथवा उस को बनाए रखने के लिए ही राज्य की सत्ता निरंतरता को बनाए रखती है। साध्य व साधन के संबंधों को बनाए रखने के लिए ही राज्य की शक्तियों पर नियंत्रण लगाया जाता है और नियंत्रण की यह प्रक्रिया ही संविधानवाद है।*

13. *संविधान में संविधानवाद का उल्लेख करने से इसके उल्लंघन की संभावनाएं बहुत कम अथवा सीमित हो जाती हैं। राजनीतिक समाज में व्यक्ति, संस्था, समूह अथवा दल निर्णय विधि के द्वारा निर्धारित भूमिकाओं का निर्वहन करें। वे स्वंय कदापि विधि का दुरुपयोग नहीं करें इसके लिए संविधान में उनका नियत होना अपरिहार्य होता है।*
14. *संविधान के द्वारा नियमित अधिकार क्षेत्र और बाध्यकारी व्यवस्था तथा सुविधा नियंत्रण की व्यवस्था को ही संविधानवाद के नाम से जाना जाता है। संविधानवाद उन विचारों, सिद्धांतों, नियमों और निर्देशों का प्रतीक होता है जो कि संविधान में निहित होते हैं।*

संविधानवाद का अर्थ और परिभाषाः

संविधानवाद, संविधान पर आधारित विचारधारा है। यह व्यवहारिक स्वरूप में सीमित शक्तियों का शासन है। इसका शाब्दिक अर्थ यही है कि शासन व्यवस्था का संचालन संविधान में लिखित नियमों और विधियों के अनुसार हो, इसमें निष्पक्षता और स्वतंत्रता बनी रहे, मानवीय मूल्यों और राजनीतिक आदर्शों को बनाए रखा जाए। अतः यह मर्यादित बंधनों की अवस्था है। इसे व्यक्ति के शासन की अपेक्षा संविधान के शासन की अवधारणा या संवैधानिक सरकार कहा जाता है।

- पिनाक और स्मिथ के अनुसार "संविधानवाद एक प्रक्रिया या तत्व का नाम नहीं है वरन् यह राजनीतिक अधिसत्ता के विस्तृत समूह, दलो और वर्गों पर प्रभावशाली नियंत्रण, अमूर्त तथा व्यापक प्रतिनिधित्व, मूल्य, प्रतीकों, अतीतकालीन परंपराओं और भावी महत्वाकांक्षाओं से संबंधित है।"
- डेविड फैलमेन के अनुसार ''संविधानवाद का अर्थ एक उच्च कानून के अधीन सीमित सरकार की धारणा से है।''

संविधानवाद सीमित शक्तियों की शासन प्रणाली है जहां पर संविधान में उल्लिखित लक्ष्यों को प्राप्त करने के लिए नियंत्रित एवं संतुलित राजनीतिक शक्तियों का सीमित उपयोग किया जाता है।

संविधानवाद की विशेषताएँः

संविधानवाद की अवधारणा विचारों का समूह है। यह भले ही किसी शासन व्यवस्था में विद्यमान हो अथवा नहीं परन्तु उसकी कुछ आधारभूत विशेषताएं अभिव्यक्त होती हैं। इन आधारभूत लक्षणों को निम्नलिखित स्वरूपों स्पष्ट किया जा सकता हैः-

1.संविधानवाद एक मूल्य सापेक्ष अवधारणा हैः

किसी भी देश का संविधान उस देश के नागरिकों के राजनीतिक मूल्यों, विश्वासों अभीवृतियों और राजनीतिक आदर्शों का प्रतिबिंब होता है। संविधान का निर्माण भले ही कुछ समय में किया जाता हो परंतु ऐसी संविधान सभा के द्वारा बनाए जाने वाले संविधान पर उस देश के

इतिहास का, समाजिक संस्कृति का बहुत प्रभाव होता है। संविधानवाद किसी राष्ट्र के आम लोगों के राजनीतिक जीवन दर्शन को अभिव्यक्त करता है। किसी देश का संविधान अनेक स्रोतों से निर्मित होता है। अपने देश के संविधान के लिए उस परिवेश में रहने वाले लोग सदैव प्रेम, त्याग, समर्पण व सम्मान की भावना रखतें है।

2.संविधानवाद एक सांस्कृतिक अवधारणा हैः

संविधानवाद एक सांस्कृतिक दर्शन है। किसी देश के समाज की सामान्य संस्कृति उस देश में रहने वाले लोगों के जीवन के तौर तरीके को अभिव्यक्त करती है। राजनीतिक संस्कृति भी इसी सामान्य सामाजिक संस्कृति का एक अभिन्न हिस्सा होती है। राजनीतिक संस्कृति के संचालनकर्ता भी सामान्य संस्कृति से संबंधित होते हैं। संविधानवाद की मूल्य, विश्वास, मानक समाज की सामान्य संस्कृति से ही उत्पन्न होते हैं। इसलिए यह कहा जाता है कि किसी देश के संविधान में उस देश की संस्कृति को देखा जा सकता है। अतः संविधान किसी भी देश के सामाजिक परिवेश की परिणति होता है।

3.संविधानवाद एक गतिशील अवधारणा, स्थितिक अवधारणा नहींः

संविधानवाद स्थिरता की अवधारणा नहीं है अपितु यह गत्यात्मक और गतिशीलता पूर्ण अवधारणा है। यदि कोई संविधान स्थिर हो जाता है तो उस देश की शासन व्यवस्था निश्चित रूप से पतन की ओर गमन करने लगती है। इसीलिए संविधान शासन व्यवस्था में बाधक न होकर साधक होता है। प्रत्येक संविधान में इसी प्रकार की उदारता व गतिशीलता और परिवर्तनशीलता को समायोजित किया जाना चाहिए क्योंकि मानवीय जीवन भी एक गतिशील प्रक्रिया है और यह सतत् रूप से बदलता रहता है। जैसा कि कार्ल जे. फैडरिक ने कहा भी है कि ''संविधानवाद विकास की प्रक्रिया का परिणाम है।'' ब्रिटेन का अलिखित संविधान शताब्दियों का परिणाम है।

4.संविधानवाद एक प्रभागीय अवधारणा हैः

किसी देश के मूल्य, विश्वास, राजनीतिक आदर्श, अभिवृत्तियाँ अर्थात राजनीतिक संस्कृति संविधान के प्रति समभागी अवधारणा को अभिव्यक्त करती है। अनेक देशों के राजनीतिक आदर्श, आस्था, मान्यताएं, मानक एक समान हो सकते हैं अथवा उनमें विविधता और विभिन्नताएं भी हो सकती हैं। पाश्चात्य राजनीतिक संस्कृति वाले देशों में संविधानवाद की अधिक समानता पाई जाती है जबकि विकासशील समाजों में संविधानवाद की समानता कम दिखाई देती है। साम्यवादी देशों में भी अंतर दिखाई पड़ता है। अतः हम कह सकते हैं कि संविधानवाद एक संभागी धारणा है।

5.संविधानवाद साध्य उन्मुखी संकल्पना हैः

संविधानवाद साधन न होकर साध्य है। संविधानवाद उन साधनों को प्राप्त करना चाहती है जो किसी देश की राजनीतिक प्रणाली में नागरिकों के द्वारा निर्धारित किए जाते हैं अथवा जैसी आकांक्षाओं को नागरिक रखते हैं उनकी पूर्ति के लिए संविधानवाद साध्य के रूप में कार्य करने वाली संकल्पना है।

6.संविधानवाद संविधान से सम्बन्धित अवधारणा हैः

संविधानवाद सविधान से जुड़ी हुई अवधारणा है। प्रत्येक देश की संस्थाओं का, प्रक्रियाओं का, शक्तियों का व उत्तरदायित्वों का स्पष्ट उल्लेख उस देश के संविधान में होता है। सविधान ही संविधानवाद की धारणा को व्यावहारिक स्वरूप प्रदान करता है। इसीलिए कहा जा सकता है कि सविधान संविधानवाद की अवधारणा के लिए एक आधारशिला है। प्रत्येक संविधान की अपनी कुछ विशिष्ट विशेषताएं होती हैं यद्यपि एक देश से दूसरे देश के संविधान में और उसकी विशेषताओं में या विशिष्टताओं में भिन्नता पायी जाती है।

संविधानवाद के आधारभूत तत्वः

संविधानवाद के आधार से हमारा अभिप्राय है कि वे कौन से तत्व अथवा घटक होते हैं अथवा जनता के कौनसे विश्वास, मूल्य और मानक होते हैं जिनके कारण वह संविधानवाद अथवा सीमित शक्तियों के शासन में विश्वास रखती है। इसी विश्वास के कारण जनता शासक के आदेशों, कानूनों, नियमों और विनियमों की अनुपालना करती है।

विलियम जे. एंड्रयूज ने संविधानवाद की चार प्रमुख आधार बताए हैं।

1.संस्थाओं के ढांचे और प्रक्रियाओं पर जन सहमतिः

संविधानवाद का प्रमुख आधार है कि राजनीतिक संस्थाओं के प्रारूप और कार्य करने की प्रक्रिया में जनता विश्वास रखती हो। यदि जनता इस प्रक्रिया में पूर्ण विश्वास रखती है कि जो सुविधाजनक ढांचे और प्रक्रियाएं देश में विद्यमान हैं। वे सदैव जनता के सामान्य हित में कार्य करते हैं तो संविधानवाद की अवधारणा सफलतापूर्वक कार्य कर रही होती है। यदि ऐसा नहीं हो तो जनता इसका विरोध करती है जिसके कारण से संविधानवाद की सत्ता कमजोर होती है। इस प्रकार की प्रणाली को जनसमर्थन अथवा वैधता की प्राप्ति नहीं होती है। अतः संस्थाओं और प्रक्रियाओं के लिए न केवल जनता की सहमति आवश्यक है अपितु अपरिहार्य होती है इसे ही संविधानवाद की अनुकूल परिस्थितियों के रूप में माना जाता है।

2.विधि के शासन में विश्वासः

ब्रिटिश अवधारणा 'कानून का शासन' का अर्थ राजनीतिक प्रणाली में विधि के अनुसार शासन व्यवस्था का संचालन करना ही नहीं है अपितु राज्य के विपरीत सामाजिक परिवेश की सदस्य भी कानून के शासन का सम्मान करते हो और विधि के शासन की अनुपालना करने के लिए सदैव स्वाभाविक रूप से तैयार रहते हो, ऐसी स्थिति में ही विधि के शासन को पूर्ण रूप से लागू किया जाना संभव हो सकता है। यह प्राचीन अवधारणा अरस्तू के चिंतन में विद्यमान रही है। आधुनिक समय में भी जनता इसी तथ्य में विश्वास करती है कि वह व्यक्ति के शासन की अपेक्षा विधि का शासन हो। विधि का शासन ही संविधानवाद का सबसे मूल आधार होता है क्योंकि संविधानवाद का वास्तविक अर्थ सीमित शक्तियों के शासन से ही होता है और इन शक्तियों पर सीमा अथवा मर्यादा स्थापित करने का कार्य विधि का शासन ही करता है। विधि के शासन के अधीन न्यायपालिका की स्वतंत्रता, हैबियस कॉर्पस तथा न्यायिक सक्रियता संविधानवाद को स्थापित करने वाली प्रत्याभूति उपलब्ध कराते

है। यह कानून की सर्वोच्चता तथा राजनीतिक प्रणाली के नियमों, विनियमों व कानूनों के अनुसार संचालन की वकालात करता है।

3.सामान्य उद्देश्यों में जन विश्वासः

राज्य और समाज दोनों के लिए ही यह आवश्यक होता है कि वह जनता के सामान्य हितों की अवधारणा में विश्वास रखें। राजनीतिक प्रणाली के सदस्यों में समाज के सामान्य उद्देश्यों पर सहमति होनी चाहिए। यदि सामान्य हितों पर सहमति नहीं हो तो राजनीतिक प्रणाली और परिवेश दोनों में ही तनाव, दबाव और संघर्ष की स्थिति उत्पन्न हो जाती है। विलियम जे एंड्रयूज का कहना है कि उद्देश्यों पर सहमति तथा समान राजनीतिक दर्शन में आस्था संविधानवाद में श्रेष्ठता लाने के लिए आवश्यक होती है।

4.सामान्य हितों और नीतिगत प्रश्नों पर सहमतिः

यद्यपि संविधानवाद का इसे आंशिक आधार स्वीकार किया गया है तथापि एंड्रयूज की है मान्यता है कि यदि राज्य और समाज के सामान्य उद्देश्यों के प्रति और विशिष्ट नीतिगत प्रश्नों पर जनता की सहमति होती है तो संविधानवाद की अवधारणा को स्थापित होने में और संचालन में अधिक सहयोग मिलता है। सामान्य लक्षणों व नीतिगत प्रश्नों पर समाज की सहमति संविधानवाद की अवधारणा को व्यवहारिक रूप से सफल बनाने में महत्वपूर्ण भूमिका का निर्वहन करती है।

पिनॉक व स्मिथ के अनुसार संविधानवाद के आधारभूत तत्वः

पिनॉक व स्मिथ ने अपनी पुस्तक पॉलिटिक्ल साईस एन इण्ट्रोडक्शन,1910 के अंतर्गत संविधानवाद के चार तत्वों का उल्लेख किया है जो कि संविधानवाद की व्यवहारिकता के लिए अपरिहार्य होते है। इनके अनुसार संविधानवाद के चार तत्व निम्नलिखित हैं :-

1.शासन संचालन करने वाली संस्थाओं की स्थापनाः

किसी देश के संविधान में देश की शासन व्यवस्था का संचालन करने वाली संस्थाओं के स्वरूप संगठन निर्माण शक्तियों अधिकारों इत्यादि का उल्लेख होना अपरिहार्य होता है। संविधान का स्वरूप भले ही लिखित हो या अलिखित या वह विकसित हो या अल्पविकसित उस सविधान में शासन व्यवस्था का संचालन करने वाले पदाधिकारियों, शासन व्यवस्था के विभिन्न अंगों, उनकी शक्तियों, सीमाओं इत्यादि का स्पष्ट विवेचन होता है। कार्यपालिका, व्यवस्थापिका, न्यायपालिका, सामान्य प्रषासन, सैन्य प्रशासन इनके स्वरूप, कार्यों, शक्तियों एवं पारस्परिक संबंधों इत्यादि का संविधान में उल्लेख करता है। राजनीतिक संस्थाओं की स्थापना के अभाव में विधि के शासन की स्थापना संभव नहीं है।

2.राजनीतिक शक्तियों पर नियंत्रण की व्यवस्थाः

किसी देश के संविधान के अभिलक्षण ही संविधानवाद का मूल आधार होते हैं। प्रत्येक राज्य में शासन प्रणाली की सुविधाओं को बनाए रखने के लिए, उसके संचालन के लिए शासन व्यवस्था की शक्तियों पर नियंत्रण का होना अपरिहार्य होता है। फ्रांसीसी दार्शनिक विचारक मोंटेसक्यू ने भी इसी राज्य शक्ति को नियंत्रित रखने के लिए अथवा सीमित

शक्तियों की शासन को स्थापित करने के लिए शक्ति पर शक्ति के नियंत्रण की व्यवस्था का प्रतिपादन किया। संविधान में शासन की शक्तियों का स्पष्ट विभाजन, सीमांकन, नियंत्रण, पृथक्करण और संतुलन होना ही चाहिए। इस प्रकार की व्यवस्था से किसी भी प्रकार की अथवा कोई भी स्वेच्छाचारी शक्ति विधि के शासन का उल्लघंन नहीं कर सकती है। अतः संविधानवाद के लिए राजनीतिक शक्ति पर नियंत्रण की व्यवस्था इसका मूल घटक है।

3.भविष्य की ओर उन्मुख एवं विकास की दिशा का निर्धारणः

यह संविधानवाद का मूलभूत तत्व है कि संविधान केवल किसी एक समय विशेष के लिए ही नहीं बनाया जाता अपितु संविधानवाद में लचीलापन और परिवर्तनशीलता का गुण भी होना चाहिए। संविधान देश, काल, परिस्थितियों के अनुरूप विकास की प्रक्रिया का मार्गदर्शक होना चाहिए। वह सत्ता परिधि से बाहर जाकर विकास की अवधारणा का निर्देशक बने, राजनीतिक शक्ति के माध्यम से विकास की नीति का निर्धारण करें। संविधान विकास का श्रेष्ठतम साधन होता है। संविधान के माध्यम से ही समाज की भावी आकांक्षाओं को पूर्ण करना संभव हो सकता है। अतः सविधान विकास का निदेशक होना चाहिए। संविधानवाद की व्यवहारिकता इसी से निर्धारित होती है कि संविधानवाद में सजीवता और गतिशीलता लाने वाले तत्व विद्यमान होते हैं अथवा नहीं। समय के अनुरूप समाज के मूल्यों में परिवर्तन होना चाहिए और इसी के अनुरूप संविधान शासन व्यवस्था को भी अपने आपको अनुकूलित बना लेना चाहिए।

4.राजनीतिक सत्ता का संगठनः

संविधानवाद केवल सैद्धांतिक पक्ष ही नहीं है अपितु व्यवहारिक पक्ष भी है। संविधान के द्वारा केवल राजनीतिक शक्तियों और संस्थाओं की सीमाओं का ही निर्धारण नहीं किया जाता है अपितु संविधान के द्वारा राजनीतिक शक्तियों का, संस्थाओं में, पदाधिकारियों में और संगठनों में क्षितिजीय अथवा उर्ध्वमुखी वितरण भी किया जाता है। शासन न केवल वैधानिक स्वरूप में संचालित हो अपितु सरकार के कार्य भी संविधान सम्मत होने चाहिए। इसके अभाव में कोई भी सरकार और संविधान लंबे समय तक विद्यमान नहीं रह सकते हैं। अतः राजनीतिक व्यवस्था में संविधानवाद के द्वारा राजनीतिक शक्ति का संगठन किया जाता है।

प्रोफेसर डिक हॉवर्ड के अनुसार संवधिनवाद के मूल घटकः

डिक व हॉवर्ड ने संविधानवाद या संवैधानिकता के आधारभूत मूल्यों को 6 स्वरूपों में विभाजित किया है।

1. **लोकप्रिय सहमति।**
2. **शासन की शक्तियों को सीमित करना।**
3. **खुला समाज।**
4. **व्यक्ति की अदृश्यता।**

5. **समानता और निष्पक्षता।**
6. **संवैधानिकता की निरंतरता।**

लूई हेनकिन ने संवैधानिकता की धारणा के निम्न नौ तत्व बताएं है अर्थात् संविधान के अनुसार शासन; शक्तियों के पृथक्करण की व्यवस्था; लोकप्रिय संप्रभूता व लोकतांत्रिक सरकार; संवैधानिक समीक्षा; स्वतंत्र व निष्पक्ष न्यायपालिका; मौलिक अधिकारों की व्यवस्था; पुलिस पर नियंत्रण; सेना पर नागरिको का नियंत्रण; सीमित राज्य शक्ति।

शासन प्रणाली के स्वरूप और संविधानवाद में अंतः संबंध :

संविधान और संविधानवाद की अवधारणा सैद्धांतिक और व्यावहारिक रूप से उस शासन व्यवस्था के स्वरूप पर भी निर्भर करती है जिस शासन प्रणाली में वह कार्य कर रही होती है। सामान्यतया संविधान और संविधानवाद की अवधारणा लोकतांत्रिक शासन प्रणाली की प्रकृति और उसके स्वरूप से प्रभावित होती है। किसी देश में संविधान और संविधानवाद की अवधारणा किस स्तर तक सफल होगी, यह इस बात पर भी निर्भर करता है कि उस देश में शासन व्यवस्था का लोकतांत्रिक स्वरूप कैसा है? इस आधार पर यदि हम राजनीतिक दुनिया का विश्लेषण करें तो संविधान और संविधानवाद के लिए आधुनिक दुनिया में तीन प्रकार की शासन व्यवस्थाओं का उल्लेख किया जा सकता है।

1. **उदार लोकतंत्र अथवा पश्चिमी लोकतंत्र की अवधारणा और संविधानवाद।**
2. **साम्यवादी या समाजवादी लोकतंत्र और संविधानवाद की अवधारणा।**
3. **नवोदित या विकासशील लोकतंत्र और संविधानवाद की अवधारणा।**

उदार अथवा पश्चिमी लोकतंत्र और संविधानवादः

मूलतः उदारवाद की अवधारणा ही व्यक्ति की स्वतंत्रता और विवेकशीलता से जुड़ी हुई अवधारणा है। उदारवाद लोकतंत्र की विकासवादी धारणा है। उदारवाद के पिता जॉन लॉक ने शासन व्यवस्था के संचालन हेतु जन सहमति पर आधारित शासन प्रणाली का समर्थन किया है। इस उदार लोकतंत्र की अवधारणा का उदय राजनीतिक चिंतन की पाश्चात्य दुनिया में होता है। इसी कारण से इसे पश्चिमी उदारवाद अथवा पश्चिमी लोकतंत्र की अवधारणा के नाम से भी जाना जाता है। यह अवधारणा मूल रूप से राजनीतिक समानता, व्यक्ति की स्वतंत्रता, विवेकशीलता, सामाजिक व आर्थिक न्याय, लोक कल्याण की भावना पर आधारित होती है। इन सबके लिए ही संविधानवाद कार्य करता है। यही कारण है कि इसे अथवा पश्चिमी संविधानवाद को उदारवादी दर्शन कहा जाता है। यहाँ आरंभिक स्वरूप में ही व्यक्ति के शासन की अपेक्षा कानून के शासन की अवधारणा को स्थापित किया गया। अरस्तु के युग में भी व्यक्ति के शासन के स्थान पर कानून के शासन का समर्थन किया गया। यही कारण है कि आगे चलकर मोंटेसक्यू जैसे विचारकों ने व्यक्ति की स्वतंत्रता की सुरक्षा के लिए शक्तियों के पृथक्करण तथा नियंत्रण और संतुलन की व्यवस्था का समर्थन

किया। उनके विचारों में सीमित सरकार व्यक्ति के कल्याण के लिए कार्य करने के लिए उचित होती है। सीमित शक्तियों के शासन के द्वारा ही व्यक्ति के हित में कार्य किया जाना संभव हो सकता है। उदार लोकतंत्र और संविधानवाद के मध्य संबंधों की अवधारणा को निम्नलिखित बिंदुओं के आधार पर स्पष्ट किया जा सकता है।

1. *व्यक्ति की स्वतंत्रता।*
2. *राजनीतिक समानता का आदर्श।*
3. *सामाजिक व आर्थिक न्याय के आदर्श की प्राप्ति।*
4. *लोक कल्याण की अवधारणा का आदर्श।*
5. *पश्चिमी संविधानवाद के संस्थागत आधारः संस्थागत आधारों को भी चार भागों में विभाजित किया गया है। विधि के शासन की स्थापना, मौलिक अधिकार और स्वतंत्रताओं का प्रावधान, राजनीतिक शक्तियों का विभाजन पृथक्करण तथा नियंत्रण और संतुलन, स्वतंत्र व निष्पक्ष न्यायपालिका की स्थापना करना।*
6. *विधि के शासन की अवधारणा की स्थापना।*
7. *नागरिकों के मौलिक अधिकारों और स्वतंत्रताओं की स्थापना।*
8. *राजनीतिक शक्तियों का विभाजन पृथक्करण और नियंत्रण और संतुलन की व्यवस्था।*
9. *स्वतंत्र व निष्पक्ष न्यायपालिका की स्थापना।*

2.साम्यवादी लोकतांत्रिक प्रणाली और संविधानवाद की अवधारणाः

पाश्चात्य संविधानवाद की अवधारणा के अनुरूप भी साम्यवादी लोकतंत्र की अवधारणा भी संविधानवाद की इस मुल्ले में विश्वास करती है कि शासन की शक्तियां नियंत्रित हो रही चोरी के सीमित नहीं फिर भी साम्यवाद और लोकतांत्रिक आशा से लोकतंत्र भिन्न-भिन्न उदाहरण हैं दोनों का ही संविधानवाद के संदर्भ में अपना-अपना विचार होता है यदि वीर जी की बारी में साम्यवाद का अपना एक विचार है और कार्ल मार्क्स के विज्ञानिक समाजवाद में अथवा मार्क्सवादी साम्यवादी राज्य को शोषण का यंत्र मानते हैं इसलिए वे राजनीतिक शक्ति के अपेक्षा आर्थिक शक्ति को अधिक महत्व देते हैं आर्थिक शक्ति के ऊपर ही राजनीतिक शक्ति का निर्माण होता है जिस व्यक्ति के हाथ में आर्थिक शक्ति होती है वहीं राजनीतिक शक्ति को धारण करता है अरे साम्यवाद उदारवाद की उस अवधारणा के खिलाफ है जहां कुछ लोगों के पास पूंजीवादी व्यवस्था का स्वरूप विद्यमान होता है साम्यवाद पूर्ण रूप से पूंजीवाद के विरुद्ध अवधारणा है आर्थिक शक्तियों का कुछ व्यक्तियों में सकेंद्र ने मानकर उनका सभी लोगों में न्यायोचित वितरण करने पर बल देते हैं यदि आर्थिक शक्ति संपूर्ण समाज के अधीन होती है तो राजनीतिक शक्ति भी संपूर्ण समाज के दिन आ जाती है साम्यवादी अवधारणा और संविधानवाद को निम्नलिखित बिंदुओं के आधार पर समझा जा सकता है:

1. *सामाजिक जीवन में शक्ति के आर्थिक पक्ष की सर्वोच्चता:*
2. *राजनीतिक शक्ति अधिरचना है, आर्थिक शक्ति उसका आधार है।*
3. *राजनीतिक शक्ति आर्थिक शक्ति के अधीन होती है।*
4. *यह साम्यवादी सिद्धांत के मूल मान्यता है कि जो आर्थिक शक्तियों को धारण करता है, वहीं राजनीतिक शक्तियों का स्वामी होता है। आर्थिक शक्ति से संपन्न प्रभुत्व वर्ग के सामने सभी प्रकार की अन्य शक्तियां नतमस्तक हो जाती हैं। अतः आर्थिक शक्ति संपूर्ण सामाजिक प्रणाली में निर्णायक भूमिका होती है।*
5. *उत्पादन तथा वितरण के साधनों पर सार्वजनिक स्वामित्व अथवा सबका नियंत्रण।*
6. *संपत्ति का समान वितरण।*
7. *साम्यवादी दल का एकाधिकार।*

इन सब प्रकार की व्यवस्थाओं के बावजूद भी जब व्यवहारिक स्तर पर साम्यवादी शासन प्रणाली में संविधानवाद की स्थिति का मूल्यांकन किया जाता है तो हम देखते हैं कि अनेक साम्यवादी देशों में संविधानवाद की अवधारणा अपनी मूल विचारधारा की विपरीत पाई जाती है। जैसे कि रूस के संविधान के बारे में यदि विवेचन किया जाए तो एंड्रयूज का यह कहना है कि रूस का संविधान ही संविधानवाद की अवधारणा के अनुरूप नहीं है। जीमैंन ने तो यहां तक कहा है कि संविधान के विचार का ही रूस का संविधान ही निषेध है।

3.विकासशील लोकतंत्र और संविधानवाद की अवधारणाः

विकासशील समाज से हमारा अभिप्राय उन देशों की राजनीतिक प्रणालियों से है जो हाल ही में साम्राज्यवाद और उपनिवेशवाद से उन्मुक्त हुए हैं परंतु अभी भी नव उपनिवेशवाद की शिकार बने हुए हैं। इन देशों को सामान्य रूप से तीसरी दुनिया के देश के नाम से जाना जाता है। इन देशों में सामाजिक और आर्थिक संस्थाओं का स्तर निम्न होता है। ये देश अपने नागरिकों की मूलभूत आवश्यकताओं को पूर्ण करने में जुटे हुए हैं या उसके लिए संघर्ष कर रहे हैं। ऐसे देश सामान्यतः राजनीतिक परिवर्तन, राजनीतिक अस्थिरता, नागरिक जीवन का निम्न स्तर, राजनीतिक उदासीनता, राजनीतिक उत्तर दायित्व के निर्वहन में कमी जैसी समस्याओं से ग्रसित हैं। इस प्रकार की समस्याएं इन देशों में संविधानवाद की अवधारणा को एक विनय स्वरूप में स्वीकार करती हैं।इन सभी प्रकार के समस्याओं के बावजूद भी इन विकासशील समाजों में संविधानवाद के व्यवहारिक स्वरूप में कुछ लक्षण दिखाई देते हैं जैसे कि:

1. संविधानवाद निर्माण की अवस्था में है।
2. संविधानवाद मिश्रित प्रकृति रखता है।
3. विकासशील देश मूल रूप से उदारवादी लोकतंत्र और संविधानवाद की अवधारणा का अनुगमन करने वाले हैं।

4. उदार लोकतंत्र और संविधानवाद की विशेषताओं अर्जित करने के लिए संघर्ष के दौर से गुजर रहे हैं। इन राज्यों में भी स्वतंत्रता, समानता, न्याय, अधिकार, लोक कल्याण, सामाजिक-आर्थिक न्याय, रोजगार, सामाजिक आर्थिक संरचना का विकास इत्यादि लक्ष्य दिखाई देते हैं।
5. भिन्न-भिन्न राजनीतिक प्रणालियां और संविधानवाद अलग-अलग स्वरूप को व्यक्त करते हैं।
6. उदारवादी लोकतंत्र से लेकर विकासशील समाजों में विद्यमान संविधानवाद की अवधारणा एक अलग स्वरूप में गमन कर रही है।

इस प्रकार से यह कहा जा सकता है कि शासन प्रणाली की प्रकृति पर यह निर्भर करता है कि संविधानवाद का स्वरूप क्या होगा। संविधानवाद किस रूप में विकसित होगा क्या संविधानवाद अपने मूल उद्देश्यों को प्राप्त कर सकेगा इसी अंतर्संबंध को अभिव्यक्त करने के लिए यहां तीन प्रकार की राजनीतिक प्रणालियों में संविधानवाद की स्थिति दिशा और दशा पर विवेचन किया गया है। यह भी कहा जा सकता है कि कुछ हद तक युद्ध, आपातकालीन दशाएं और अधिनायक या सर्वसतावादी प्रणाली संविधानावाद के सबसे बडे शत्रु होते है।

6

लोकतंत्र और अधिनायकतंत्र

लोकतंत्र

यह शासन का सबसे लोकप्रिय प्रारूप है जिसे प्रजातंत्र या लोकतंत्र के नाम से जाना जाता है। लोकतंत्र बीसवीं शताब्दी के मध्य में द्वितीय महायुद्ध के बाद अधिकांश दुनिया में लोकप्रिय हुआ। यह लोकतंत्र का ही सर्वश्रेष्ठ गुण है जिसकी वजह से वह पिछले पांच से सात दशकों में ही शताब्दियों से विद्यमान शासन प्रणालियों की अपेक्षा सबसे अधिक लोकप्रिय और सफल शासन के प्रकार के रूप में उभर कर सामने आया है। सामान्य अर्थ में लोकतंत्र लोगों का शासन है, जहाँ शासन प्रक्रिया में लोगों को महत्व प्रदान किया जाता है।

लोकतंत्र का अभिप्राय एवं परिभाषाः

लोकतंत्र के लिए प्रयुक्त अंग्रेजी शब्द 'डेमोक्रेसी' **यूनानी भाषा** के दो शब्दों **डेमोस एवं क्रेटोस** से मिलकर बना है। जहाँ डेमोस-का अर्थ है, जनसाधारण या लोग और क्रेटोस का अर्थ है-शासन। अर्थात् लोगों का शासन। लोगों के अधीन तंत्र का होना ही लोकतंत्र का सही मतलब है, न कि लोग किसी तंत्र के अधीन हो जाएं। लोकतंत्र एक शासन का प्रकार नहीं है अपितु वह मानवीय जीवन का एक तरीका अथवा जीवन शैली है जिसके मुख्य आधार स्वतंत्रता, समानता और न्याय होते हैं। लोकतंत्र में प्रभुसत्ता लोगों में निवास करती है। आधुनिक राज्यों में संविधान सभा के द्वारा निर्मित संविधान लिखित रूप से यह स्पष्ट घोषणा करता है कि प्रभुसत्ता जनता में निहित होगी। लोकतंत्र वास्तव में केवल प्रशासनिक स्वरूप को ही लोकतंत्र नहीं बनाता अपितु वह मानवीय जीवन, इस जीवन की गरिमा और इस जीवन को संवारने के लिए आवश्यक मौलिक अधिकारों जैसे तत्वों को भी शामिल करता है। यही कारण है कि लोकतंत्र को राजनीतिक क्षेत्र के साथ ही सामाजिक, आर्थिक व मानवीय जीवन से संबंधित भी माना जाता है अर्थात् सामाजिक लोकतंत्र, आर्थिक लोकतंत्र, मानवीय लोकतंत्र। अतः लोकतंत्र विविध राज्यों में, विविध स्वरूपों में विद्यमान है। इसे अनेक विद्वानों ने भिन्न-भिन्न तरीके से परिभाषित किया है अर्थात्

- *वलीवॉन के अनुसार, ''लोकतंत्र का मतलब है लोगों का शासन।''*
- *हेरोडोटस के अनुसार, ''लोकतंत्र का मतलब लोगों का, लोगों के द्वारा और लोगों के लिए शासन ही लोकतंत्र होता है।''*
- *महान यूनानी चिंतक पेरिक्लीज के शब्दों में लोकतंत्र ''शासन का ऐसा स्वरूप है जिसमें लोग शक्तिशाली होते हैं।'' यूनानी चिंतन के पितामह अरस्तु के शब्दों में ''बहुतों का शासन ही लोकतंत्र होता है लेकिन उसके लिए लोकतंत्र एक बुरे शासन के रूप में हुआ करता था।''*
- *पांचवी शताब्दी ईसा पूर्व की हेरोडोटस की परिभाषा को अमेरिकी राष्ट्रपति अब्राहिम लिंकन के द्वारा गैटिसबर्ग भाषण,1863 में पुनः दोहराया गया जिसे लोकतंत्र के अर्थ का अभिव्यक्त करने वाली सर्वश्रेष्ठ परिभाषा माना जाता है। लिंकन के अनुसार लोकतंत्र का मतलब है जो कि ''लोगों का, लोगों के द्वारा और लोगों के लिए शासन होता है।''*
- *सीले के शब्दों में लोकतंत्र का मतलब है ''ऐसा शासन जिसमें सब लोगों का हिस्सा हो।''*
- *ब्राइस का कहना है कि हेरोडोटस के समय से प्रजातंत्र शब्द का प्रयोग शासन के उस रूप को व्यक्त करने के लिए होता आया है जिसमें किसी राज्य पर शासन करने वाली शक्ति किसी विशेष वर्ग अथवा वर्गों में नहीं बल्कि समग्र रूप में समाज के सदस्यों में समाहित होती है।*
- *डायसी के अनुसार लोकतंत्र शासन का ऐसा स्वरूप है जिसमें शासन करने वाला निकाय तुलनात्मक दृष्टि से संपूर्ण राष्ट्र का बड़ा भाग होता है।*

समय के अनुरूप लोकतंत्र का मतलब व स्वरूप बदलता गया है। लोकतंत्र की चिरसम्मत धारणा के अंतर्गत लोकतंत्र एक अच्छा शासन नहीं था। प्राचीन यूनानी व रोमन साम्राज्य में लोकतंत्र अलग अभिप्राय रखता था और आज अलग। प्लेटों ने इसे अयोग्य लोगों का शासन कहकर संबोधित किया है तो वही अरस्तू ने अयोग्य, अशिक्षित और निर्धन लोगों का शासन कहा है। अरस्तू ने संविधानों के वर्गीकरण में इसे विकृत स्वरूप बताया था तथापि निःसंदेह लोकतंत्र का मतलब है-लोगों के हित में लोगों का शासन। लोकतंत्र की आधनिक अवधारणा के अनुसार वे एक श्रेष्ठ शासन है जो कि आमजन को शासन के सहभागिता का अवसर प्रदान करता है जबकि प्राचीन यूनानी व रोमन राज्यों में केवल 10 फीसदी नागरिकों के पास ही यह अवसर होता था बाकि लोग बुजुर्ग, महिलाएं, निर्धनजन दास होते थे। 16-17वीं सदी में आधुनिक दूनिया में सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक, धार्मिक व सांस्कृतिक परिवर्तनों का आगमन हुआ जिसने लोकतंत्र जैसी व्यवस्थाओं की राजनीतिक स्थली तैयार की। इंग्लैण्ड की गौरवपूर्ण क्रांति1688, और जॉन लॉक के सहमति के शासन की अवधारणा व व्यक्ति के लिए तीन प्राकृतिक अधिकारों की संकल्पना व उनकी राज्य द्वारा रक्षा जैसे चिंतन ने लोकतंत्र की आधुकनिक अवधारणा को उदित किया। अमेरिकी क्रांति,1776 और फ्रांसीसी क्रांति1789 को लोकतंत्र का काल कहा जाता है। ज्ञात हो कि महिलाओं को मत देने का

अधिकार अमेरिका ने 1919 में, इंग्लैण्ड ने 1928 में, फ्रांस ने 1945 में, भारत ने 1950 में और स्विट्जरलैण्ड ने 1971 में दिया है। डायसी ने अपनी पुस्तक लॉ एण्ड पब्लिक ओपिनियन इन इंग्लैण्ड ड्यूरिंग दि नाइंटींथ सेंचुरी1905 में तथा जैम्स ब्राईस ने अपनी रचना दि अमेरिकन कॉमनवेल्थ,1893 व मॉडर्न डेमोक्रेसी,1921 में लोकतंत्र को एक शासन प्रणाली के रूप में व्यक्त किया है। आधुनिक लोकतंत्र जिसे उदार लोकतंत्र के नाम से जाना जाता है। इसके सामान्य रूप से दो प्रकार होते हैं-प्रत्यक्ष लोकतंत्र और अपत्यक्ष या प्रतिनिधि लोकतंत्र।

प्रत्यक्ष लोकतंत्रः

आधुनिक विशालकाय राष्ट्र-राज्यों में प्रत्यक्ष लोकतंत्र के माध्यम से शासन का संचालन करना संभव नहीं है। इसमें स्वयं जनता के द्वारा ही शासन का संचालन किया जाता है। रूसों जैसे दार्शनिक चिंतक प्रत्यक्ष लोकतंत्र के प्रबल समर्थक रहे है। यद्यपि यह स्थानीय स्तर पर अथवा स्विट्जरलैण्ड के अद्र्धकैण्टन में आंशिक रूप से पाया जाता है। भारत में स्थानीय स्वशासन में ग्राम पंचायत स्तर का शासन प्रत्यक्ष लोकतंत्र का ही प्रतीक है। प्रत्यक्ष लोकतंत्र के संचालन में जनमत संग्रह, आरंभक, जनसभाएं और प्रत्यावर्तन चारों माध्यम महत्वपूर्ण भूमिका निभाते है।

अप्रत्यक्ष प्रजातंत्रः

लोकतंत्र का दूसरा सामान्य प्रकार अप्रत्यक्ष लोकतंत्र है जो कि ब्रिटेन की गौरवपूर्ण क्रांति1688, अमेरिका की क्रांति 1776, फ्रांस की क्रांति 1789 के परिणाम स्वरूप पूरी दुनिया में विकसित हुआ है। लोगों पर शासन करने की शक्ति का प्रयोग सब लोगों के द्वारा नहीं किया जा सकता है और इसीलिए लोगों के द्वारा निर्वाचित जनप्रतिनिधियों द्वारा शासन किया जाता है और ऐसे निर्वाचित जनप्रतिनिधि जनता के प्रति उत्तरदाई होते हैं। इसीलिए इसे प्रतिनिधि लोकतंत्र अर्थात जनता के प्रतिनिधियों का लोकतंत्र भी कहा जाता है। ब्रिटिश विचारक जे एस मिल के द्वारा इसे प्रतिनिधि शासन कहा गया है। आधुनिक राष्ट्र राज्य जो विशाल जनसंख्या वाले राज्य हैं। ऐसे राज्यों में प्रत्यक्ष लोकतंत्र व्यावहारिक रूप से संभव नहीं है।

लोकतंत्र की कुछ आधारभूत विषेशताएंः

1.सार्वभौमिक वयस्क मताधिकार की व्यवस्था होनाः

यह लोकतंत्र की आधारभूत विशेषताओं में से एक है। लोकतंत्र लोगों का तंत्र होता है और इसलिए प्रत्येक व्यक्ति को उस तंत्र के निर्माण व संचालन में बिना किसी भेदभाव के सहभागी होने का समान अवसर मिलना चाहिए। यह अवसर उपलब्ध कराने वाली व्यवस्था का नाम ही सार्वभौमिक वयस्क मताधिकार प्रणाली है। इस प्रणाली में एक निश्चित आयु के सभी लोगों को मत देने का समान अवसर प्रदान किया जाता है। विभिन्न देशों में इस आयु में अंतराल पाया जाता है जो उस देश की कानूनी प्रक्रिया हा हिस्सा होता है। ज्ञात हो कि

प्रत्यक्ष प्रजातंत्र का घर कहे जाने वाले स्विटजरलैण्ड ने महिलाओं को मत देने का अधिकार 1971 में दिया है अर्थात् इससे पहले लैंगिक आधार पर मतदान में भेदभाव विद्यमान था। ब्रिटिश भारत में भी भारित मतदान प्रणाली विद्यमान थी जिसे संविधान लागू होने के साथ ही आम निर्वाचन में समाप्त कर दिया गया है।

2.स्वतंत्र, निष्पक्ष और निश्चित समयावधि पर नियमित निर्वाचन की व्यवस्थाः

आम लोगों के द्वारा चुनाव प्रक्रिया में भाग लेकर अपने प्रतिनिधियों का निर्वाचन करना आधुनिक अप्रत्यक्ष लोकतंत्र का आधार है लेकिन इसके साथ ही यह जरूरी है कि ऐसे निर्वाचन एक निश्चित समयावधि पर निष्पादित होने चाहित। निर्वाचन की व्यवस्था स्वतंत्र, निष्पक्ष और पारदर्शी होनी चाहिए जिससे कि सही प्रतिनिधियों का उचित एवं वैधानिक तरीके से सुनिश्चित हो सके। यह गुण लोकतांत्रिक व्यवस्था को तानाशाही का रूप धारण करने से रोकता है।

3.राजनीतिक दलों की निर्णायक व प्रभावी भूमिका होनाः

लोकतंत्र का तीसरा महत्वपूर्ण गुण है कि जो संगठन राष्ट्रीय हित में शासन सता का संचालन करता है, उसकी भूमिका प्रभावी, अनुकरणीय एवं जनहितैषी होनी चाहिए। राजनीतिक दल न केवल शासन सता पर नियंत्रण स्थापित करने के लिए संवैधानिक एवं लोकतांत्रिक साधनों का प्रयोग करें अपितु आमजन को राजनीतिक शिक्षा भी प्रदान करें जिससे कि राजनीतिक चेतना का स्तर उच्च हो सके और लोग राजनीतिक उतरदायित्व का निर्वहन करने के लिए कटिबद्ध हो। राजनीतिक दलों के द्वारा सार्वजनिक विषयों पर खुली परिचर्चा की जाए और आमजन के सुझावों पर अमल किया जाए। लोकतंत्र में राजनीतिक दल इसके संचालनकर्ता होते है लेकिन यह लोकतंत्र से दलतंत्र में नहीं बदलें। राजनीतिक दलों के बीच सता प्राप्ति के लिए स्वतंत्र प्रतियोगिता लोकतंत्र का मुख्य गुण है। आजकल लोकतंत्र में यह गुण विलुप्त होता जा रहा है।

4.स्वतंत्र एवं निष्पक्ष न्यायपालिका का होनाः

लोकतंत्र में अंतिम शक्ति जनता में ही निहित होती है परंतु उस शक्ति को शासन के अंगों में विभाजित किया जाता है। इस विभाजित शक्ति को प्रयोग संविधान के दायरे में ही किया जाता है। संविधानवाद की इस धारणा को लागू करने के लिए एक स्वतंत्र एवं निष्पक्ष न्यायपालिका का प्रावधान होता है। यह न्यायपालिका लोकतंत्र की रक्षा करने वाली संस्था मानी जाती है। इसी के साथ लोगों के अधिकारों की रक्षा का कार्य भी न्यायपालिका के द्वारा ही संभव है। यदि किसी राज्य में न्यायपालिका का ही पतन हो जाता है तो लोकतंत्र अपने आप ही समाप्त हो जाता है। भारत जैसे विकासशील देशों में न्यायपालिक की स्थिति अमेरिकी न्यायपालिका की तुलना में बहुत कमजोर है। यह लोकतंत्र को भी कमजोर करती है।

5.स्वतंत्रता, समानता और न्याय जैसे नागरिक आदर्शों की व्यवस्थाः

लोकतंत्र को लोगों का शासन कहने का सबसे बड़ा आधार ही यह है कि वह लोगों के लिए

स्वतंत्रता, समानता और न्याय की व्यवस्था स्थापित करता है। संक्षिप्त शब्दों में कहे तो मानवीय जीवन के विकास की आधारभूत सुविधाओं की व्यवस्था का नाम ही लोकतंत्र है। इसीलिए कहा भी जाता है कि लोकतंत्र केवल राजनीतिक शासन का ही प्रकार नहीं है अपितु वह मानव के लिए एक जीवन दर्शन है। इसे अमेरिकी लोकतंत्र और काले लोगों की वस्तुस्थिति में बदलाव के माध्यम से और भारतीय लोकतंत्र में वर्ण या जाति प्रणाली के सामाजिक सोपान की वस्तुस्थिति के बदलाव से समझा जा सकता है। यहाँ तक कि भारतीय संविधान में अस्पृश्यता को अनुच्छेद 18 के तहत समाप्त करने का प्रावधान भी किया गया है।

6.संविधानवाद की धारणा का लागू होनाः

लोकतंत्र लोगों का शासन होता है। इसलिए यह आवश्यक है कि जनहित में कार्य करने वाले संगठनों, संस्थाओं एवं प्रतिनिधियों को असीमित शक्तियों प्रदान नहीं की जाए। लोकतंत्र शासन संचालन करने वाले अंगों की शक्तियों पर नियंत्रण की भी व्यवस्था करता है जिसे संविधानवाद के नाम से जाना जाता है। लोकतंत्र में व्यक्ति के स्थान पर कानून को सर्वोच्च तरजीह दी जाती है। इसका आभास डायसी की इस मान्यता से भी होता है कि कानून के शासन की स्थापना प्रतिनिधि लोकतंत्र का मुख्य ध्येय होता है।

7.राजनीतिक पदों का सभी के लिए उपलब्ध होनाः

लोकतंत्र में राजनीतिक पद लोगों के हितों का प्रतिनिधित्व करने वाला सबसे महत्वपूर्ण पद होता है। ऐसे पद किसी विशिष्ट वर्ग की बपौती नहीं होते है। इसके लिए निर्धारित योग्यता रखने वाले लोगों के लिए न केवल मतदान अपितु निर्वाचन में भाग लेकर प्रतिनिधि बनने के भी समान अवसर उपलब्ध होते है।

8.सशक्त और सक्रिय विपक्ष का होनाः

लोकतंत्र जिसे राजनीतिक दलों के द्वारा संचालित किया जाता है। उसमें केवल एक ही दल की प्रधानता या प्रभुत्व होना लोकतंत्र के लिए अवगुण के समान है। लोकतंत्र सही रूप में तभी लोकतंत्र बना रह सकता है जबकि शासन सता पर नियंत्रण रखने वाले दल के सामने एक मजबूत व सक्रिया विपक्ष भी विद्यमान रहें और जो सता पक्ष की मनमानी पर रोक लगाने का कार्य करें। अतः लोकतंत्र में एक सशक्त विपक्ष का मौजूद होना बहुत जरूरी होता है। इसके अभाव में सताधारी दल लोकतंत्र को दलतंत्र में या लोकतांत्रिक तानाशाही में बदल देता है। इसे भारत व अफ्रीका के राजनीतिक दलों के संदर्भ में स्पष्ट रूप से समझा जा सकता है।

लोकतंत्र के गुण व अवगुणः

ज्ञातव्य है कि लोकतंत्र हाल ही में उदित नवीन शासन प्रणाली है जिसने शताब्दियों से स्थापित शासन प्रणालियों को विस्थापित कर दिया है। लोकतंत्र के महत्व को व्यक्त करते हुए लार्ड ब्राईस लिखते है कि ''लोकतंत्र व्यक्तियों के सम्मान में वृद्धि करता है।'' जे एस मिल लिखते है कि स्वशिक्षा श्रेष्ठ शिक्षा है और स्वशासन श्रेष्ठ शासन है।'' गार्नर के शब्दों

में ''प्रजातंत्र में लोकप्रिया निर्वाचन, लोकप्रिय नियंत्रण और उतरदायी होने से श्रेष्ठ शासन है।'' इसका मतलब यह नहीं है कि लोकतंत्र हमेशा के लिए सर्वश्रेष्ठ शासन प्रणाली है क्योंकि समय के साथ शासन प्रणालियों में भी बदलाव आता रहता है। 21वीं सदी में विशेषकर 2019 की कोरोना महामारी से पहले, इस दौरान व बाद में दूनिया में लोकतंत्र के पैरोकार माने जाने वाले देशों में लोकतंत्र के समक्ष बहुत ही गंभीर संकट उदित हुए है। इसका अभिप्राय है कि तमाम तरह की शासन प्रणालियों की सफलता एवं स्थायीत्व लोगों की राजनीतिक संस्कृति पर निर्भर करते है। लोकतंत्र के गुण व अवगुण निम्न हैः

प्रजातंत्र के गुणः

1.शासन क्रियाओं में आम लोगों को सहभागिता एवं प्रतिनिधित्वः

लोकतंत्र की सबसे बड़ी खूबी ही यह है कि वह इस उक्ति को व्यवहार के धरातल पर चरितार्थ करता है कि वह लोगों का शासन है। आमजनों को अनेकानेक संवैधानिक मंचों, नागरिक संगठनों, कानूनों के माध्यम से अपनी सक्रिय सहभागिता का निर्वहन करने का अवसर उपलब्ध कराता है।

2.समानता, स्वतंत्रता एवं न्याय के दर्शन की विद्यमानता होनाः

लोकतंत्र ही दूनियाभर की राजनीतिक प्रणालियों में से एकमात्र ऐसी प्रणाली है जो अपने लोगों के लिए स्वतंत्रता, समानता और न्याय के मानवीय आदर्शों को अपनी शासन व्यवस्था में मुख्य स्थान प्रदान करती है। ये ही वे आदर्श है जिनकी वजह से ही लोकतंत्र से राजनीतिक दूनिया के अधिकांश लोग अथाम लगाव रखते है।

3.सता के दुरूपयोग की रोकथामः

लोकतंत्र का यह गुण भी है कि उसमें न केवल सता के संचालन की व्यवस्था होती है अपितु इसके साथ ही सता के दुरूपयोंग को रोकने की भी व्यवस्था की जाती है। लोकतंत्र में नियतकालिक चुनाव, स्वतंत्र व निष्पक्ष न्यायपालिका, संविधान की सर्वोच्चता और विपक्ष की स्थिति उसे निरूकुंश होने से रोकते है।

4.सार्वजनिक विषयो पर स्वतंत्र परिचर्चा व जनशिक्षा को प्रोत्सहानः

लोकतंत्र ही ऐसी शासन प्रणाली है जहाँ पर लोगां को स्वतंत्रता का अधिकार मिला होता है और वे इसका उपयोग जनहित में खुलकर कर सकते है। सार्वजनिक विषयों पर न केवल विधायिकाओं में अपितु जनमंचों पर भी स्वतंत्र परिचर्चा की जा सकती है। इसके माध्यम से न केवल लोकतंत्र मजबूत बनता है अपितु लोगों में राजनीतिक उतरदायित्व की भावना का विकास होता है और यह जनशिक्षा का सबसे बड़ा प्रतिफल होता है।

5.देशभक्ति की भावना का विस्तारः

लोकतंत्र एक ऐसी शासन प्रणाली है जिसमें लोगों को जब शामिल होने का अवसर मिलता है तो वे अपने शासन के प्रति वफादार बन जाते है औरयह वफादारी ही उनमें देशभक्ति के भावों को जन्म देती है। अतः लोकतंत्र में किसी को देशभक्त बनाने के लिए शक्ति की आवश्यकता

नहीं पड़ती है अपितु लोकतंत्र का मजबूत होना ही देशभक्ति या राष्ट्रभक्ति का प्रतीक बन जाता है।

6.परस्पर सद्भावना एवं सम्मान का विस्तारः

लोकतंत्र मानवीय आदर्शों का पैरोकार होता है जिसमें समानता, स्वतंत्रता और न्याय जैसे मानवीय आदर्शों को महत्व दिया जाता है और इसीलिए लोगों के बीच पारस्परिक सद्भावना और एक दूसरे के प्रति सम्मान की भावना विकसित होती है।

लोकतंत्र के अवगुण या आलोचनाएंः

लोकतंत्र सदा से कोई श्रेष्ठ शासन का स्वरूप नहीं रहा है। प्लेटो और अरस्तू ने लोकतंत्र सही अर्थ में भीड़तंत्र की संज्ञा दी जो कि अयोग्य और गरीब लोगों का शासन है। टेलीरैण्डन ने लोकतंत्र को काले रक्षकों का कुलीनतंत्र, कार्लाइल ने मूर्खों का शासन और वेल ने भ्रष्ट शासन की कहकर व्यक्त किया है। हॉब्सन कहते है कि ''धनिको के धन और गरीबों की गरीबी ने प्रजातंत्र को बर्बाद कर दिया है।'' वास्तविक स्वरूप में लोकतंत्र में अनेक बुराईयां विद्यमान है और अनेक समय के साथ उदित हो गई है।

1.शासन का आधार संख्याबल का होना या भीड़तंत्र का शासनः

लोकतंत्र में जनता के प्रतिनिधि शक्तियों को धारण कर उनका उपयोग करते है। इन शक्तियों को जिस तरीके से वे धारण करते है, उसे निर्वाचन प्रणाली कहा जाता है। प्रतिनिधित्व के अनेक सिद्धांत होते है और इनमें एकल सदस्य प्रतिनिधि वाली सामान्य बहुल मतदान प्रणाली भारत सहित अधिकांश देशों में प्रचलित है। इसका सूत्र होता है 'जीत उसकी जो सबसे आगे हो'। अनेक उम्मीदवारों में से कोई भी एक प्रत्याशी अन्य प्रत्येक व्यक्तिगत प्रत्याशी की तुलना में एक मत भी ज्यादा प्राप्त करे ले तो वह सता का संचालनकर्ता बन जाता है। इसमें गुण नहीं अपितु संख्या देखी जाती है और वह भी बहुमत वाली नहीं अल्पमत वाली अर्थात् अल्पजनों का बहुजनों पर तानाशाही का नाम लोकतंत्र है। मतदान व्यवहार बाहुबल, धनबल, प्रचारबल के द्वारा अपने पक्ष में करके राजनीतिक दल चुनाव जीत जाते है जो लोकतंत्र के साथ मजाक है। सच में यह लोकतंत्र नहीं अपितु भीडतंत्र होता है।

2.अत्यधिक खर्चीली या अतिव्ययपूर्ण शासन प्रणालीः

लोकतंत्र ऐसी शासन प्रणाली है जहाँ पर राजनीतिक दल चुनावी प्रतिस्पद्र्धा के माध्यम से सता प्राप्त करते है। भारत जैसे देशों में तो वर्षभर या ये कहे कि पूरे पाँच वर्ष तक चुनाव ही चलते रहते है जिसकी वजह से बहुत बड़ी मात्रा में बरसात के पानी की तरह देश के आमजन का पैसा बर्बाद होता है। इससे बड़ा मूर्खता या अतिव्ययता का कार्य क्या हो सकता है? अब निर्वाचन का मतलब मतदान नहीं अपितु धनबल का अधिकाधिक दुरूपयोग करना है। जो धन राष्ट्र के विकास पर खर्च होना चाहिए, वह धन व्यर्थ में चुनावी प्रचार-प्रसार में, मतदान व्यवहार को प्रभावित करने में, पोस्टर व बैनर में, चुनावी आयोजनों में खर्च कर दिया जाता

है तो फिर आर्थिक विवेकशीलता व लोकतंत्र का तो कोई अस्तित्व ही नहीं बचता है।

3.राजनीतिक दलों व दबाव समूहों का अधिनायकवादः

ज्ञात है कि आधुनिक लोकतंत्र की दलों के बिना कल्पना नहीं की जा सकती है। राजनीतिक दल लोकतंत्र के उदय के साथ ही पनपने लगे और आज लोकतंत्र को इनके प्रभाव ने दलतंत्र के रूप में स्थापित कर दिया है। इसी के साथ संकीर्ण हितों पर आधारित दबाव समूहों भी अलोकतांत्रिक रूप में लोकतंत्र को परदे के पीछे से अनेकानेक असंवैधानिक व अनैतिक तथा अनुचित तरीके से प्रभावित कर रहे है। दबाव समूहों का तो दुष्प्रभाव इतना अधिक हो गया है कि वे किसी भी प्रकार की शासन व्यवस्था में कार्य करने लगे है। यह लोकतंत्र के लिए सबसे बड़ा खतरा है जिसने उसे अधिनाकयवाद का स्वरूप प्रदान कर दिया है। ऐसा लगता है दूनियाभर में लोकतंत्र पर खतरे के बादल मंडराने लगे है और शायद अब अरस्तू द्वारा प्रतिपादित संविधानों के वर्गीकरण का चक्र लोकतंत्र के स्थान पर दूसरे प्रारूप को आमंत्रित कर रहा है।

4.बहुमत के द्वारा अल्पमत पर शासन एक मिथ्याः

सामान्य रूप से लोकतंत्र का मतलब लोगों का शासन परंतु कौनसे लोगों का? तो इस प्रश्न का जवाब है, जो बहुमत रखते है अर्थात् उन प्रतिनिधियों के द्वारा शासन जिनके पीछे जनता की बहुमत के रूप में सहमति हो लेकिन यर्थाथ के धरातल पर देश की जनता के 20 से 40 फीसदी तक बहुमत प्राप्त दल ही 60 से 80 फीसदी लोगों पर शासन कर रहे है तो फिर तो यह बहुमत का शासन नहीं है। भारत में अब तक,2019 तक कोई भी दल 40 फीसदी से ज्यादा मत प्राप्त नहीं कर पाया है और जिसे दूनिया का सबसे बड़ा लोकतंत्र कहते है। यह तो भारत का लोकतंत्र के साथ मजाक है।

5.अयोग्य, अकुशल व मूर्ख लोंगों का शासनः

लोकतंत्र में दलतंत्र के हावी होने से अयोग्य व अकुशल तथा मूर्ख व्यक्ति भी चुनाव जीतकर प्रतिनिधि के रूप में शासन करने लगते है। इसके दूनियाभर में सबसे अधिक प्रमाण भारत जैसे विश्व के सबसे बडे लोकतंत्र में दिखायी देते है, जहाँ अनैतिक, बेशर्म व अपराधी व्यक्ति प्रधानमंत्री, गृहमंत्री या कोई अन्य मंत्री बनकर आमजन पर शासन कर रहे है। प्लेटों व अरस्तू ने सही कहा था कि लोकतंत्र अयोग्य व मूर्ख लोगों का शासन होता है।

6.भ्रष्ट शासनतंत्रः

यदि व्यक्ति के भ्रष्ट होने की संभावनाओं को धरातल उपलब्ध कराने वाला शासन का कोई प्रकार है तो वह है, लोकतंत्र। लोकतंत्र एक धर्मशाला की तरह है जिसमें जिसको भी लूटने का मौका मिलता है, वह आमजन को लूटने लग जाता है। भारत में न केवल राजनीतिक प्रतिनिधि अपितु उसकी शरण में पलने वाली नौकरशाही और उन दोनों की शह पर बरसाती मशरूम की तरह पनपने वाले निजी क्षेत्र के व्यवसायी या ठेकेदार त्रिगुट बनाकर आमजन की मेहनत को हजम कर जाते है। 2009 में तो दूनिया के सबसे बड़े भ्रष्टाचारी शासन की

वजह से भारत में शासन सता में ही बदलाव हो गया लेकिन एक भ्रष्ट जाता है और दूसरा भ्रष्ट आ जाता है। अतः अब इसे लोकतंत्र नहीं अपितु भ्रष्टतंत्र कहा जाना चाहिए।

इन सब बुराईयों के बावजूद भी हम लोकतंत्र की महता को नकार नहीं सकते है। जैसा कि सी डी ब्रन्स ने लिखा है कि ''इस बात से कोई इंकार नहीं करता कि वर्तमान प्रतिनिधि सभाओं में अनेक त्रुटियां है परंतु यदि मोटरगाड़ी खराब हो जाए तो उसकी जगह बैलगाड़ी का इस्तेमाल करना मूर्खता ही होगी, भले ही इसकी कल्पना कितनी ही सुंदर क्यों न लगे।'' यदि लोकतंत्र में बुराईयां है तो भी उन्हें दूर किये जाने की संभावना सदैव बनी रहती है और यह जनतंत्र जनता की सक्रियता और चेतना के दम पर ही चलता है।

लोकतंत्र की सफलता के लिए आवश्यक शर्तेः

प्रजातंत्र अपना लेने से ही सफलता की प्रत्याभूती नहीं मिलती है। इसके लिए कुछ आधारभूत व्यवस्थाओं का बरकरार होना जरूरी है जो इसे लोकतांत्रिक स्वरूप में बनाए रखती है। वाल्टर के द्वारा निम्न पूर्व शर्तों को लोकतंत्र के लिए अपरिहार्य माना गया हैः

1. *किसी वर्ग विशेष को स्थाई रूप से सत्ता से बहिष्कृत नहीं करना।*
2. *देशवासियों को सहनशीलता तथा सामान्य आदतों से युक्त होना चाहिए।*
3. *लोगों को अपने राज्य के संविधान के प्रति सम्मान की भावना रखनी चाहिए।*
4. *लोगों को अभद्र लोगों अथवा अज्ञानियों की भीड़ की भावनाओं से बहुत प्रभावित नहीं होना चाहिए।*
5. *लोगों को सार्वजनिक मामलों में किसी प्रकार का भेदभाव नहीं करना चाहिए।*
6. *लोगों को ईमानदार, निष्पक्ष व पारदर्शी होना चाहिए।*
7. *लोकतंत्र की सफलता के लिए लोकतांत्रिक चरित्र का होना आवश्यक है।*
8. *स्वतंत्रता, समता व न्याय के लक्ष्यों के लिए निरंतर कार्यरत होना आवश्यक है।*
9. *स्वतंत्र, निष्पक्ष और नियतकालिक निर्वाचन होना अनिवार्य है।*
10. *नागरिकों में राजनीतिक जागरूकता का होना जरूरी है।*
11. *संविधानवाद व विधि के शासन की सर्वाच्चता का यर्थाथ में बने रहना आवश्यक है।*
12. *राजनीतिक दलों के द्वारा जनहित को प्राथमिकता देना अपरिहार्य है।*
13. *लोकतांत्रिक एवं संवैधानिक साधनों द्वारा परिवर्तन में विश्वास बनाए रखना।*
14. *सताधारक के द्वारा सता का स्वहित में उपभोग नहीं करना।*
15. *कुर्सी व सता से अत्यधिक मोह नहीं रखना।*
16. *स्वतंत्र, निष्पक्ष एवं पारदर्शी पत्रकारिता जिस पर किसी वर्ग विशेष का आधिपत्य न हो, जैसा कि भारत में है।*
17. *शिक्षित, संवेदनशील व उतरदायित्व की भावना से परिपूर्ण आमजन का सक्रिय बने रहना।*
18. *शांति एवं व्यवस्था का वातावरण होना।*

19. *आर्थिक समता व सामाजिक न्याय एवं सांस्कृतिक विविधता को बनाए रखना।*

ये सब शर्ते किसी भी लोकतांत्रिक व्यवस्था को लोकतांत्रिक स्वरूप में बनाए रखने के लिए अनिवार्य है। इनके बिना लोकतंत्र केवल नाममात्र का लोकतंत्र होता है, सचा लोकतंत्र नहीं। लोकतंत्र के लिए हेरोडोटस व लिंकन की परिभाषा को सदैव ध्यान में रखना चाहिए अर्थात् जनता का, जनता के द्वारा और जनता के लिए शासन ही लोकतंत्र है। शासन का केन्द्र बिन्दु आम जनता होती है। राजनीतिक दल या अन्य कोई सता नहीं। इसका आभास हमें भारतीय लोकतंत्र के पैरोकार जवाहरलाल नेहरू के इस कथन से भी होता है कि "लोकतंत्र का मतलब है सहिष्णुता, न केवल उन लोगों के प्रति जिनसे हम सहमत हों, बल्कि उनके प्रति भी जिनसे हम असहमत हों।"

अधिनायकतंत्र

अधिनायकतंत्र या डिक्टेटरशिप किसी शासन प्रणाली का निरंकुश रूप होता है। जहां कानून के शासन की अपेक्षा व्यक्ति की इच्छा के अनुसार संपूर्ण शासन व्यवस्था का संचालन किया जाता है। शासक या सताधारक जनहित की अपेक्षा व्यक्तिगत हितों पर विशेष बल देता है। अधिनायकतंत्र या अधिनायकवाद ऐसी शासन प्रणाली का प्रतीक है जहां कोई व्यक्ति अपने विलक्षण नेतृत्व, लोकप्रियता या सैन्य संगठन की निष्ठा के बल पर सांविधानिक व्यवस्था पर अपना नियंत्रण स्थापित कर लेता है। तानाषाही या अधिनायकतंत्र शासन प्रणाली ने बीसवीं शताब्दी के आरंभिक दशकों में और मध्य शताब्दी तक अपना वर्चस्व स्थापित किया। यद्यपि इसे शासन का निरंकुश स्वरूप माना जाता है और यह लोकतंत्र के विपरीत लक्षणों वाला शासन प्ररूप है फिर भी यह शासन प्रणाली आंशिक रूप से सफल होते हुए भी दुनिया में अथवा राजनीतिक चिंतन की दुनिया में सर्वाधिक चर्चित रही है। दूसरा महायुद्ध इसी तानाशाही अथवा अधिनायक तंत्र की व्यवस्था का परिणाम था। तुर्की में कमाल पाशा के नेतृत्व में, रूस में स्टालिन के नेतृत्व में, इटली में मुसोलिनी के निर्देशन में, जर्मनी में हिटलर के निर्देशन में, स्पेन में जनरल फ्रेंको के नेतृत्व में तानाशाही शासन प्रणालियां विश्व प्रसिद्ध रही है। तानाशाही शासन प्रणाली का केवल एक ही स्वरुप नहीं होता है अपितु यह अनेक स्वरूपों में आधुनिक समय तक विद्यमान है। आधुनिक दुनिया के अनेक राज्यों में आज भी तानाशाही का स्वरूप देखने को मिलता है।

अधिनायकतंत्र का अभिप्रायः

डिक्टेटरशिप शब्द की उत्पत्ति लेटिन भाषा के डिक्टेटर शब्द से हुई है जो दंडाधिकारी या मजिस्ट्रेट का प्रतीक होता है। यह एक व्यक्ति अथवा इकाई का शासन होता है जो निरंकुश

शक्तियों का प्रयोग करते हुए सत्ता पर आसीन होता है अथवा बना रहता है। उसका जनता के प्रति कोई उत्तरदायित्व नहीं होता है। वह सत्ता पर कब तक बना रहेगा? इसका अंदाजा लगाना मुश्किल होता है। वह चाहे तो अपनी इच्छा अनुसार अपने राज्य को गणराज्य घोषित कर दे, वह निसंदेह प्रभुसत्ता संपन्न राजा की तरह सत्ताधारी होता है।

- *जॉन ऑस्टिन का यह कथन अधिनायकतंत्र पर पूर्णतया लागू होता है कि "संप्रभु का आदेश ही कानून होता है।"*
- *अल्फ्रेड केबान के शब्दों में "यह एक व्यक्ति का शासन है जिसने अपना पद अनुवांशिकता से नहीं बल्कि बलपूर्वक या सहमति अथवा दोनों के सहयोग से प्राप्त किया है और उसके पास असीम प्रभुसत्ता होती है जिसका क्षेत्र भी असीमित होता है और वह सत्ता का प्रयोग मनमाने ढंग से कानून की अपेक्षा आदेश द्वारा करता है। अधिनायक की सत्ता न तो समय अवधि द्वारा सीमित होती है और ना ही वह किसी अन्य सत्ता के अधीन रहती है क्योंकि वह निरंकुश शासन का प्रतिनिधित्व करती है।"*
- *राजनीति विज्ञान के जनक अरस्तु ने एक व्यक्ति की शासन को जिसका उद्देश्य जनहित नहीं होता है। वह शासन का विकृत स्वरूप अत्याचारतंत्र होता है। अतः यह कहा जा सकता है कि अधिनायकतंत्र शासन का उतना ही पुराना स्वरूप है जितना कि राजतंत्र। प्राचीन रोमन साम्राज्य के अंतर्गत तो संकटकालीन राष्ट्रीय दशाओं से निपटने के लिए अधिनायकों की नियुक्ति की जाती थी परंतु आधुनिक अधिनायकतंत्र विशेष परिस्थितियों की देन माना गया है। आधुनिक अधिनायक तंत्र संपूर्ण राज्य और लोगों की जीवन पर नियंत्रण स्थापित करने वाली और बनाए रखने वाली निरंकुश व्यवस्था का नाम है।*
- *माइकल कर्टिस के विचार के विचारों में अधिनायक तंत्र प्रभावशाली सुविधानिक प्रतिबंधों के बिना असीमित सत्ता का प्रयोग करता है। कर्टिस के अनुसार अधिनायकतंत्र प्राधिकारवाद, स्वेच्छाचारी शासन असीम सतावाद, निरंकुशवाद, अत्याचारतंत्र और सर्वाधिकारवाद से भिन्न होता है।*

अधिनायक तंत्र के उदय के कारण :

जैसा की पहली भी अभिव्यक्त किया गया है कि अधिनायक तंत्र विशिष्ट दशाओं की उपज है इसके उदय के पीछे निम्नलिखित कारक उत्तरदाई माने जाते हैं

1.विद्यमान आर्थिक, सामाजिक और राजनीतिक प्रणाली की असफलताः

अधिनायकतंत्र के उदय के लिए सबसे अनुकूल दशाएं तब उदित होती है जब उस देश में विद्यमान राजनीतिक, सामाजिक एवं आर्थिक प्रणाली तहस-नहस हो जाती है। लोगों में राजनीतिक उदासीनता आ जाती है। आर्थिक बेकारी व महंगाई चरम पर चली जाती है। लागों में सामाजिक अंतराल बहुत अधिक बढ़ जाता है। ऐसी दुदर्शा अधिनायकवाद के लिए

अनुकूल होती है।

2.राष्ट्रवाद का चरम सीमा पर होनाः

अधिनायकवाद के उदय के लिए यह आवश्यक होता है कि लोगों के दिलों-दिमाग में केवल राष्ट्र और राष्ट्र की भावना का संचार किया जाए। यह राष्ट्रवाद की उग्र सीमा का प्रतीक होता है। लोगों को केवल अपने बारे में या अपने देश के बारे में सोचने के लिए मजबूर कर दिया जाता है। मानवीय मूल्यों का भूला दिया जाता है। राष्ट्र को हर तत्व से सर्वोच्चता का स्थान दिया जाता है।

3.अधिनायवाद एक नेतृत्व या व्यक्ति प्रधान शासनः

अधिनायकवाद के उदय का सबसे बड़ा आधार ही यही है कि इसमें केवल व्यक्ति पूजा और व्यक्तिगत नेतृत्व में विश्वास होता है। लोग अपने नेता के करिश्माई व्यक्तित्व में विश्वास करते है। यह मानते है कि नेता में कोई जादूई चमत्कार है जो उनकों तमाम समस्याओं से बाहर निकाल सकता है।

4.सेना पर व्यक्ति विशेष का नियंत्रण होनाः

अधिकांशतया अधिनायकवाद सैन्य ताकत या बल पर ही स्थापित होता है और बना रह सकता है। जब किसी व्यक्ति विशेष का सेना पर नियंत्रण होता है तो वह अधिनायवाद को स्थापित कर लेता है। पाकिस्तान व म्यामांर की सैन्य तानाशाही इसी अधिकनायवाद का उदाहरण है।

5.आम जनता का तानाशाही में विश्वास प्रकट होनाः

हम जानते है कि केवल अपने दम पर या सेना के बंदुक के नोक पर लंबे समय तक अधिनायकवाद को बनाए रखना संभव नहीं है। अतः अधिनायकवाद के उदय के पीछे जनता का राजनीतिक मानस बहुत अधिक मायने रखता है। यदि जनता की राजनीतिक मनोदशा व्यापक स्तर पर बदल जाती है तो अधिनायकतंत्र के सामने वैधता का संकट जन्म ले लेता है।

6.अन्य कारणः

जैसा की सर्वविदित है कि आधुनिक अधिनायक तंत्र के उदय के पीछे अथवा जर्मनी और इटली में तानाशाही के उदय के पीछे तत्कालीन परिस्थितियों की विधिमान्यता रही है जिनमें मुद्रास्फीति, अर्थव्यवस्था का विनाश, व्यापक बेरोजगारी ,राजनीतिक और सुरक्षा व प्रजातंत्र की विफलता, राष्ट्रवाद का उच्चतम सीमा पर पहुंचना, आम जनता का अधिनायक तंत्र में विश्वास इत्यादि रहे हैं। इनसे यह स्पष्ट होता है कि किसी भी समय तानाशाही व्यवस्था का उदय संभव है यदि उसके अनुकूल परिस्थितियां उत्पन्न हो जाती है तो वह उदित हो जाती है।

अधिनायकतंत्र की विशेषताएंः

अधिनायकतंत्र भी शासन का एक प्रकार है जो कि प्राचीनकाल से लेकर वर्तमान तक

विद्यमान है। जिस तरह से लोकतंत्र की अपनी विशेषताएं होती है, उसी तरह से अधिनायतंत्र शासन व्यवस्था की भी लोकतंत्र के विपरीत कुछ आधारभूत विशेषताएं होती है जिनकी वजह से वह अस्तित्व में बने रहते है। इन विशेषताओं को निम्न बिन्दुओं के आधार पर स्पष्ट किया जा सकता हैः

1.सर्वसतावाद में विश्वासः
अधिनायकतंत्र की मूलभूत विशेषता ही यह है कि वह सर्वसतावाद में विश्वास पर आधारित होती है। सता या शासन की शक्ति ही सबकुछ है, उसके अलावा कुछ भी नहीं है। ऐसी व्यवस्था में लोगों के जीवन व मरण का फैसला भी सताधारी की इच्छा पर निर्भर करता है। सता को सलाम की नीति पूरी तरह से अमल में लायी जाती है। सता प्रत्येक कार्य के लिए उतरदायी होती है।

2.उदारवाद, व्यक्तिवाद व प्रजातंत्र विरोधीः
अधिनायवाद व्यक्तिगत सता में विश्वास वाली प्रणाली है। यह उदारवाद, व्यक्तिवाद एवं प्रजातंत्र की प्रतिरोधी होती है। उदारवाद जो कि व्यक्ति के विवेक व उसकी स्वतंत्रता में विश्वास करने वाली विचारधारा है और व्यक्तिवाद जिसमें व्यक्तिगत इकाईयों को सर्वाधिक महत्व प्रदान किया जाता है अथवा व्यक्ति धुरी के रूप में कार्य करता है। प्रजातंत्र जिसमें सभी लोगों को महत्व दिया जाता है। अधिनायक इन सबके विपरीत मान्यताओं पर कार्यरत प्रणाली है।

3.व्यक्तिपूजा में अंधिविश्वासः
लोकतंत्र जहाँ केवल लोगों का शासन में विश्वास पर कार्य करता है, वही पर अधिनायकतंत्र एक व्यक्ति की पूजा में अंधविश्वास पर आधारित होता है। विश्वास करना कोई बुरी बात नहीं है लेकिन किसी व्यक्ति या इकाई में अंधविश्वास करना मानवता के लिए विनाशकारी होता है। अंधविश्वास करने वाला व्यक्ति अपने नायक के बारे में कुछ भी सुनना पसंद नहीं करता है। विश्वास में तार्किकता व सहनशीलता और सहिष्णुता हो सकती है लेकिन अंधविश्वास में नहीं। जैसे कि लोगों के द्वारा काल्पनिक धार्मिक व्यक्तितत्व जिसे ईश्वर या भगवान के नाम से जाना जाता है, उसके अंधभक्त यह जानते है कि ऐसा कुछ भी वैज्ञानिक व तार्किक नहीं है परंतु फिर भी वे इसे मानने को तैयार नहीं है। ऐसा ही अधिनायकतंत्र में होता है।

4.दल व शासन में अंतराल नहींः
यदि अधिनायकतंत्र किसी राजनीतिक दल के भरोसे स्थापित होता या किया जाता है तो लोगों के लिए वह दल ही नायक व शासन का प्रतीक बन जाता है। जैसे कि अनेक देशों में केवल एक ही राजनीतिक दल शासन करता है जिसे अधिकांशतया एक दलीय प्रभुत्व वाली प्रणाली के नाम से जाना जाता है। भारत में 1989 तक कांग्रेस और 2014 के बाद भाजपा का

केन्द्रीय सता में बना रहना लोकतंत्र के परदे के पीछे अधिनायकतंत्र का प्रतीक है। इसी तरह से अफ्रीका में 1994 तक, वर्तमान रूस व चीन आदि देश इसी अधिनायतंत्र के प्रतीक है।

5.प्रजातांत्रिक आडंबरः

अधिनायकतंत्र की सबसे प्रमुख विशेषता यह है भी है कि वह लोगों को सामान्यतया यह महसूस ही नहीं होने देता है कि उनकी शासन प्रणाली गैर लोकतांत्रिक है। वह राजनीतिक दल के माध्यम से, नियंत्रित चुनाव के माध्यम से अथवा अपनी कार्यप्रणाली के माध्यम से लोगों का विश्वास जीत लेता है। कुशल प्रशासनिक तंत्र एवं न्यूनतम भ्रष्टाचार के बलबूते पर लोगों की आधारभूत समस्याओं को दूर कर वह प्रजातांत्रिक आडंबरों का सहारा लेता है।

6.राज्य की सर्वाच्चता व सर्वाधिकारवाद में विश्वासः

अधिनायकतंत्र का मूल घटक ही राज्य की सर्वाच्चता एवं सर्वाधिकारवाद को बनाए रखना है। सब कुछ राज्य ही होता है। हर क्षेत्र में राज्य को तरजीह दी जाती है। राज्य से उपर कोई नहीं होता है। राज्य का जो विरोध करता है, उसे राष्ट्रद्रोही बनाकर समाप्त कर दिया जाता है। ऐसा आजकल लोकतांत्रिक देशों में भी किया जाने लगा है जो कि अधिनायकतंत्र के आगमन का संकेत है।

7.यह एक राष्ट्रीय नायक की भूमिका में विश्वासः

अधिनायकतंत्र में लोग केवल अपने नेता को ही सर्वसताधारी ईश्वर मानते है जिसके पास सारे चमत्कार होते है और वह आम लोगों के लिए ही समर्पित होता है, ऐसा विश्वास लोगों के जहन में बैठ जाता है। लोग एक देश, श्रेष्ठ देश, एक नायक, एक दल, एक धर्म, एक संस्कृति इत्यादि मिथ्यात्मक वैचारिकी के वशीभूत हो जाते है।

8.यह सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक व्यवस्था में सुधार और परिवर्तन की प्रति आस्थाः

अधिनायतंत्र की यह भी विशेषता है कि यह ऐसी शासन प्रणाली है जो लोगों को भावनाओं के तुफान के सहारे यह विश्वास दिलाती है कि देश की सामाजिक, आर्थिक व राजनीतिक प्रणाली में सुधार व परिवर्तन केवल उसके अधीन ही संभव है। अतः वे उसमें विश्वास बनाए रखे।

अधिनायकतंत्र की गुणः

सामान्यतया अधिनायकतंत्र को लोकतंत्रवादी एक बुरी शासन प्रणाली के रूप में देखते है तथापि जिस तरह से प्रत्येक व्यक्ति में गुण व अवगुण होते है। ठीक उसी तरह से प्रत्येक शासन प्रणाली के अपने गुण-दोष होते है। अधिनायकतंत्र के गुण निम्न हैः

1. *एक कठोर, कुशल और शक्तिशाली प्रशासनिक व्यवस्था होती है।*
2. *संकट में सर्वश्रेष्ठ शासन प्रणाली के रूप में कार्य करती है।*
3. *देशभक्ति व राष्ट्रवाद को बढ़ावा देने वाली शासन प्रणाली होती है।*

4. *राजनीतिक स्थायित्व के साथ सामाजिक आर्थिक विकास की योजनाओं को समय पर लागू किया जाता है।*
5. *यह प्राकृतिक समानता के सिद्धांत पर आधारित व्यवस्था होती है, जहां कुछ गिने-चुने लोगों को निर्णय शक्ति सौंपी जाती है।*

अधिनायक तंत्र के अवगुण या दोषः

1. *इसमें व्यक्तिगत स्वतंत्रता का कोई स्थान नहीं होता है।*
2. *व्यक्ति की उपेक्षा इसमें राज्य ही साध्य या लक्ष्य होता है, व्यक्ति केवल साधन मात्र रहता है।*
3. *विद्यमान सता के प्रतिरोध में कुछ भी स्वीकार्य नहीं होता है।*
4. *केवल एक ही राजनीतिक विकल्प को स्वीकार करता है।*
5. *यह साम्राज्यवाद की अवधारणा का समर्थन करती है जैसे कि मुसोलिनी कहते थे कि "मैं शेर की पंजों की तरह इतिहास के पन्नों पर अपना नाम अंकित करना चाहता हूँ।"*
6. *शासन का स्थायित्व तानाशाह की साथ जुड़ा रहता है।*

इस प्रकार तानाशाही व्यवस्था की उदय विशेषताओं गुण और अवगुण के आधार पर यह कहा जा सकता है कि अधिनायक तंत्र एक ऐसी व्यवस्था है जिसका कब उदय होता है और कब अंत होता है। इसका अनुमान लगाना संभव नहीं है। देखते-देखते लोकतांत्रिक सता भी तानाशाही में बदल जाती है।

7

एकात्मक एवं संघात्मक प्रणाली

एकात्मक प्रणाली

ऐसी शासन प्रणाली जिसमें शासन की समस्त शक्तियां एक केन्द्रीय सरकार में निहित होती है। उसे एकात्मक शासन प्रणाली के नाम से जाना जाता है। इसमें संघ सरकार की तरह इकाईयों के पास संविधान से कोई स्पष्ट व लिखित शक्तियां नहीं होती है। यह केन्द्रीय शासन प्रणाली पर निर्भर करता है कि वह किसी अन्य अधीनस्थ इकाई को शक्तियां देती है या नहीं देती है। एक तरह से यह सता का प्रत्यायोजन है जो कि केन्द्रीय सरकार पर निर्भर करता है। जैसे कि ब्रिटेन, जापान, चीन की शासन प्रणाली एकात्मक व्यवस्था का प्रतिनिधित्व करती है। इनमें ब्रिटेन एक आदर्श एकात्मक शासन प्रणाली का उदाहरण है।

एकात्मक शासन प्रणाली की विशेषताएंः

एकात्मक शासन प्रणाली शासन की एक ही इकाई में शक्तियों को अंतर्निहित करती है, भले ही शासन की कई इकाईया हो सकती है लेकिन वे सब केन्द्रीय इकाई की इच्छा पर निर्भर करती है। ब्रिटेन में काउण्टी की स्थानीय शासन की व्यवस्था भारत के स्थानीय ग्रामीण व शहरी शासन की तुलना में बहुत अधिक शक्तिशाली एवं प्रभावी है जबकि भारत की संघीय व्यवस्था के तहत संविधान में स्थानीय स्वशासन को स्थान दिया गया है और उसके पास संविधान से प्रदत शक्तियां है। ब्रिटिश केन्द्रीय शासन ने काउण्टी को न केवल प्रशासनिक एवं विधायी अपितु वितीय शक्तियां भी प्रदान कर रखी है जिनके लिए काउण्टी पूर्णतया जिम्मेदार होती है। फिर भी काउण्टी का अस्तित्व ब्रिटेन की केन्द्र सरकार की इच्छा पर ही निर्भर है।

एकात्मक शासन प्रणाली की विशेषताएंः

1.शासन की शक्तियों का एक केन्द्रीय इकाई में निहित होनाः

एकात्मक शासन प्रणाली के अंतर्गत शासन की समस्त शक्तियां केवल एक केन्द्रीय इकाई में ही निहित होती है। अन्य शासकीय इकाईयों का अस्तित्व और उनकी शक्तियां केन्द्रीय

सरकार की इच्छा पर निर्भर होती है।

2.केन्द्रीय विधायिका के दो सदन होना या उसमें इकाईयों को प्रतिनिधित्व देने का प्रावधान नहीं:

केन्द्रीय विधायिका का द्विसदनीय होना आवश्यक नहीं होता है जैसे कि चीन और यदि हो तो भी इकाईयों को प्रतिनिधित्व दिया जाए, यह अनिवार्य नहीं है। जैसे कि ब्रिटिश संसद के दूसरे सदन हाउस ऑफ लॉर्डस की संरचना।

3.स्वतंत्र, निष्पक्ष व सशक्त न्यायपालिका का होना जरूरी नहीं:

एकात्मक शासन प्रणाली में केन्द्र ही सबसे शक्तिशाली संस्था के रूप में कार्य करता है। शासन के अन्य अंगों की शक्तियां क्या होगीं व उनका स्वरूप कैसा होगा? यह सब कुछ केन्द्रीय इकाई पर निर्भर करता है। जैसे कि ब्रिटिश न्यायपालिका की कमजोर स्थिति होना।

4.इकहरी नागरिकता का प्रावधान होना:

एकात्मक शासन प्रणाली राष्ट्रीय एकीकरण का प्रतिनिधित्व करने वाली शासन प्रणाली होती है। अतः इस व्यवस्था में केवल एक राष्ट्रीय नागरिकता का प्रावधान होता है। इकाईयों को नागरिकता प्रदान करने की शक्ति नहीं होती है। जैसे कि ब्रिटिश नागरिकता।

5.राष्ट्रीय नेतृत्व वाली शासन व्यवस्था:

एकात्मक शासन प्रणाली में एक राष्ट्रीय नेतृत्व वाली सरकार के द्वारा देश की शासन प्रणाली का संचालन व नियंत्रण किया जाता है। इससे क्षेत्रीय इकाईयों या अन्य इकाईयों के बीच शासन प्रणाली को लेकर कोई दोहराव नहीं होता है।

एकात्मक व्यवस्था के गुण:

1. *यह राजनीतिक एवं प्रशासनिक व्यवस्था का कुशल क्रियान्वयन का प्रतीक है।*
2. *यह एक नमनीय स्वरूप वाली शासन प्रणाली होती है।*
3. *यह शासन प्रणाली प्रशासन तथा विधायी क्षेत्र में एकरूपता स्थापित करती है।*
4. *संघीय व्यवस्था की तुलना में मितव्ययी शासन प्रणाली है।*
5. *यह उन देशों में अधिक सफल है जहां धर्म, जाति, भाषा, संस्कृति का सजातीय समुदाय होता है।*

अवगुण:

1. *केंद्रीय सरकार के तानशाही होने की संभावना बहुत ज्यादा होती है।*
2. *स्थानीय पहल का कोई अवसर नहीं मिलता है।*
3. *स्थानीय शासन व प्रशासकीय मामलों को कम महत्व दिया जाता है।*
4. *यह शक्तियों के केन्द्रीयकरण की अवधारणा में विश्वास रखती है।*

संघात्मक प्रणाली

राजनीतिक प्रणाली के अन्तर्गत शासन के संचालन की शक्तियो के निहित होने के आधार पर शासन प्रणालियों को सामान्यतया दो भागों में विभाजित किया जाता है। पहला स्वरूप है-एकात्मक शासन प्रणाली और दूसरा स्वरूप है-संघात्मक शासन प्रणाली। यदि संविधान के अनुसार शासन की समस्त शक्तियाँ किसी एक केन्द्रीय इकाई में ही अन्तर्निहित होती है तो इसे एकात्मक शासन प्रणाली के नाम से जाना जाता है। जैसे कि ब्रिटेन, चीन, जापान की राजनीतिक प्रणालियां। दूसरी ओर यदि संविधान के द्वारा लिखित एवं स्पष्ट रूप से शासन की शक्तियों का विभाजन संघ एवं उसकी इकाईयों के बीच कर दिया जाता है तो इसे संघात्मक शासन व्यवस्था के नाम से जाना जाता है। जैसे कि अमेरिका, आस्ट्रेलिया, स्विटजरलैण्ड, जर्मनी, कनाडा, भारत इत्यादि देशों की शासन प्रणालियां।

संघात्मक शासन प्रणाली की वस्तुस्थितिः

संघीय व्यवस्था शासन की व्यवस्था शासन के उस स्वरूप को अभिव्यक्त करती है जिसमें केंद्रीय, राष्ट्रीय अथवा संघीय शासन के राष्ट्रीय महत्व के सभी दायित्व संघ सरकार को प्रदान किए जाते हैं जबकि उस संघ की इकाइयों की सरकारों को क्षेत्रीय अथवा स्थानीय महत्व के सभी प्रकार के दायित्व सुपुर्द किए जाते हैं। इन इकाइयों को भी संघात्मक राज्यों में अलग-अलग नामों से पहचाना जाता है। जैसे कि कनाडा में इकाइयों को प्रांत, जर्मनी में लैण्ड्स, स्विट्जरलैंड में कैण्टन, अमेरिका और भारत में राज्य तथा बेल्जियम में क्षेत्र इत्यादि नामों से जाना जाता है।

संघात्मक शासन प्रणाली का अभिप्रायः

फेडरेशन शब्द की उत्पत्ति **लैटिन भाषा के फोएड्स शब्द से हुई है जिसका शाब्दिक अर्थ होता है संधि या समझौता।** इसका सामान्य अभिप्राय है कि संघ व उसकी इकाईयों के बीच शासन व्यवस्था को लेकर होने वाला समझौता। संघात्मक शासन संघ व इकाईयों के द्वारा संचालित किया जाने वाला शासन है। संघ और इकाई की सरकारें पारस्परिक सहयोग के माध्यम से संचालित होती है। इकाई सरकारों का भी अपना स्वतंत्र अस्तित्व होता है और वे एक निर्धारित मात्रा तक संघ सरकार से सहायता भी प्राप्त करती हैं।

यद्यपि यह उस देश की संघीय व्यवस्था की प्रकृति पर बहुत हद तक निर्भर करता है फिर भी यह कहा जा सकता है कि इकाइयों के शासन को अधीनस्थ शासन नहीं कहा जा सकता है। यद्यपि ऐसी इकाइयों को संघ सरकार के समानांतर शक्तियां प्रदान नहीं की जाती है क्योंकि अंतिम रूप से संघ ही सर्वोच्च होता है। ये इकाइयां संघीय व्यवस्था से

पृथक होकर अपनी स्वतंत्र पहचान को स्थापित नहीं कर सकती हैं। यह राष्ट्र की एकता और अखंडता को बनाए रखने का सबसे बड़ा आधार होता है। स्पष्ट रूप से कहा जाए तो इकाइयों का संघ से पृथक कोई स्वतंत्र अस्तित्व नहीं होता है अपितु वे भी संघ से ही जुड़ी हुई रहती है। यह संघात्मक व्यवस्था परिसंघात्मक व्यवस्था की समान नहीं होती है, जहां इकाइयों को संघ से पृथक होने की भी स्वतंत्रता दी जाती है। संघात्मक शासन प्रणाली में संघ सरकार या केंद्र सरकार को न तो समाप्त किया जा सकता है न ही उसका अंत किया जा सकता है और न ही उसे छोड़कर इकाइयां संघ से बाहर जा सकती हैं। जैसा कि कहा भी गया है कि अमेरिकी संघ अविनाशी राज्यों का अविनाशी संघ है। यद्यपि भारत जैसी संघीय प्रकृति वाले राज्यों के अथवा इकाइयों के लिए कहा जाता है कि भारतीय संघ विनाशी राज्यों का अविनाशी संघ है।

संघात्मक व्यवस्था की आधारभूत विशेषताएंः

यद्यपि संघीय व्यवस्था की अपनी महत्वपूर्ण विशेषताएं होती हैं फिर भी किसी भी प्रकार की संगत में व्यवस्था के लिए तीन आधारभूत विशेषताएं मानी जा सकती हैं इनके अलावा संघात्मक व्यवस्था की विशेषताएं उस संघ या भिन्न-भिन्न देश की संघात्मक प्रकृति पर निर्भर करती हैं। संघीय व्यवस्था की आधारभूत विशेषताएं निम्न हैः

1.शासन शक्तियों का संविधान के माध्यम से लिखित एवं स्पष्ट विभाजनः

जहां संविधान के अंतर्गत केंद्र और इकाई सरकारों के अधिकार क्षेत्र को स्पष्ट और लिखित रूप से प्रस्तुत किया गया होता है। केंद्र और इकाइयों के बीच संविधान के द्वारा शक्तियों का स्पष्ट वितरण कर दिया जाता है। जैसे कि अमेरिका और भारत में सूची प्रणाली के माध्यम से संघ व इकाईयों के बीच शक्तियों का स्पष्ट विभाजन किया गया है। इनके अलावा अमेरिका और स्विट्जरलैंड जैसे संघीय व्यवस्था वाली प्रणातियों में अवशिष्ट शक्तियां इकाइयों को प्रदान की गई हैं परंतु भारत और कनाडा जैसे संघीय राज्यों में अवशिष्ट शक्तियों को केंद्रीय सरकार को प्रदान किया गया है। यह सब कुछ उस देश की संघीय व्यवस्था की प्रकृति पर निर्भर करता है।

2.संविधान की सर्वोच्चता का प्रावधानः

संघवाद की दूसरी प्रधान विशेषता संविधान की सर्वोच्चता है। शासन की शक्तियों के विभाजन का स्पष्ट उल्लेख संविधान में किया जाता है। अतः न तो संघ बड़ा होगा और न ही इकाई या राज्य बड़ा होगा। दोनों को संविधान को तरजीह देनी होगी। संघ व इकाईयां संविधान से उपर नहीं है।

3.स्वतंत्र, निष्पक्ष, सशक्त एवं पारदर्शी न्यायपालिका की स्थापना का प्रावधानः

संघीय व्यवस्था की तीसरी अनिवार्य विशेषता है कि जहां केंद्र या संघ सरकार तथा प्रांतीय इकाई सरकारों के बीच उत्पन्न विवादों का समाधान करने के लिए एक स्वतंत्र व निष्पक्ष न्यायपालिका होती है। न्याय की प्रक्रिया का पारदर्शी होना बहुत आवश्यक है। इस पैमाने पर भारतीय न्यायपालिका न तो स्वतंत्र है, न ही निष्पक्ष है और न ही उसकी कार्यप्रणाली में

कोई पारदर्शिता दिखायी देती है।

4.केन्द्रीय विधायिका का द्विसदनात्मक स्वरूप और इकाईयों का प्रतिनिधित्वः

संघवाद का यह मुख्य प्रावधान होता है कि पूरे संघ के लिए शासन व्यवस्था का संचालन करते समय नियम निर्माण की प्रकिया में या संविधान में बदलाव अथवा राष्ट्रीय महत्व के किसी विषय पर निर्णय लेने की प्रणाली में इकाईयों को भी निश्चित प्रतिनिधित्व प्रदत हो। इसके लिए यह आवश्यक है कि राष्ट्रीय विधायिका के दो सदन हो और उनमें से एक सदन में संघ की इकाईयों को प्रतिनिधित्व प्रदान किया जाए। अमेरिका संघीय प्रणाली का आदर्श उदाहरण है। अमेरिकी संसद जिसे कांग्रेस के नाम से जाना जाता है, उसके दो सदन है। एक प्रतिनिधि सभा और दूसरा सीनेट। सीनेट के अंतर्गत संघ की इकाईयों या राज्यों को समान प्रतिनिधित्व दिया गया है। ज्ञात हो कि भारतीय संसद के दूसरे सदन राज्य सभा में भी भारतीय संघ की इकाईयों को प्रतिनिधित्व दिया गया है परंतु वह जनसंख्या के आधार पर है अर्थात् बड़ी जनसंख्या वाले राज्यों से राज्यसभा में अधिक प्रतिनिधि होते है और कम जनसंख्या वाले राज्यों से कम प्रतिनिधि होते है। अमेरिका में ऐसा नहीं है। वहां प्रत्येक राज्य को बराबर सीटें मिलती है अर्थात् यदि 50 राज्य है तो प्रत्येक राज्य से सीनेट में 2 प्रतिनिधि होते है।

5.दोहरी नागरिता का उपबंध होनाः

संघात्मक व्यवस्था के लिए यह आवश्यक है कि लोगों के पास दोहरी नागरिकता हो अर्थात् एक संघ की नागरिकता और दूसरी उस राज्य की नागरिकता जिसका वह निवासी होता है। अमेरिका में ऐसी ही दोहरी नागरिकता का प्रावधान है तो वही स्विट्जरलैण्ड में तीहरी नागरिकता का प्रावधान किया गया है। ज्ञात रहे कि भारत में इकहरी नागरिकता का प्रावधान है।

6.दोहरी प्रशासनिक व्यवस्था का प्रावधानः

संघात्मक प्रणाली के लिए दो स्तर पर शासन प्रणालियां कार्य करती है। अतः यह आवश्यक है कि इसके लिए लिखित व स्पष्ट प्रावधानों की आवश्यकता होती है। अमेरिका में संघ की अपनी विधायिका, कार्यपालिका और संघीय न्यायपालिका होती है तो वही प्रत्येक राज्य की अपनी विधायिका, कार्यपालिका और न्यायपालिका होती है।

7.दोहरे संविधान की विद्यमानताः

संघीय प्रणाली में दोहरी शासन व्यवस्था का संचालन करने के लिए दोहरे संविधान की आवश्यकता होती है। राज्यों का या इकाईयों का अपना अलग संविधान होता है जो कि राज्य शासन व्यवस्था के संचालन के लिए दिशा-निर्देश प्रदान करता है।

7.संविधानवाद की अनुपालनाः

संघीय प्रणाली के लिए यह अति-आवश्यक है कि शासन की शक्तियों को सीमित स्वरूप प्रदान किया जाए ताकि कोई भी अर्थात् संघ या इकाई निरूकुंश न हो। अतः सीमित शक्तियों के शासन को ही संविधानवाद के नाम से जाना जाता है जो कि संविधान और संविधान की

भावना में विश्वास को लागू करती है।

आदर्श संघात्मक व्यवस्था के लिए वांछनीय आवश्यकताएंः

किसी संघात्मक व्यवस्था वाली संगठन की सफलता के लिए कुछ महत्वपूर्ण शर्तें या आवश्यक दशाएं होती हैं जैसे कि-

1. *संघ की इकाइयों के बीच भौगोलिक निकटता अथवा भौगोलिक दृष्टि से संपर्क होना।*
2. *धर्म, नस्ल, भाषा, संस्कृति इत्यादि क्षेत्रों के आधार पर संघीय इकाइयों में विविधता होना अर्थात् वीजातीयता का होना।*
3. *संघ व इकाईयों को संघीय शासन में समान प्रतिनिधित्व मिलना।*
4. *सामाजिक तथा राजनीतिक संस्थाओं में समानता का होना।*
5. *सामाजिक आर्थिक विकास की समरूपता का होना।*
6. *राजनीति की योग्यता एवं राजनीतिक व राष्ट्रीय एकता का होना।*
7. *केंद्र और इकाइयों के बीच सामान्य संबंध होना।*
8. *केंद्रीयकरण की प्रवृति से स्वतंत्र व्यवस्था होना।*

उल्लिखित आवश्यकताएं केवल वांछनीय स्थिति का प्रतिनिधित्व करती है। इसका अभिप्राय यह नहीं है कि इनके अभाव में संघीय व्यवस्था स्थापित नहीं हो सकती है। इनके बिना भी लचीले स्वरूप में भारत या कनाड़ा, जर्मनी, स्विटजरलैण्ड, पाकिस्तान जैसी संघात्मक प्रणाली की विद्यमानता हो सकती है।

संघात्मक प्रणाली के प्रमुख गुणः

संघीय व्यवस्था में कई छोटे राज्य आपस में मिलकर एक शक्तिशाली संघ राज्य का निर्माण कर सकते हैं। आंतरिक तथा बाह्य दोनों प्रकार के कुछ स्पष्ट लाभ प्राप्त कर सकते हैं, जो संघ की स्थापना से ही प्राप्त होते हैं, अन्यथा नहीं। प्रत्येक प्रणाली के अपने-अपने गुण-दोष होते है। संघीय प्रणाली के गुण निम्न हैः

1. *संघात्मक व्यवस्था ही एकमात्र ऐसी व्यवस्था है जहां विधायिका, कार्यपालिका और न्यायपालिका के बीच राष्ट्रीय मामलों में एकरूपता को संभव बनाया जा सकता है जिनमें संदर्भ में ऐसा होना अपेक्षित है तथा साथ ही उन क्षेत्रों में अनेकता को भी संभव बनाती है जहां देश के विभिन्न भागों में विद्यमान विभिन्न परिस्थितियों और मापदंडों के कारण ऐसा होना वांछित है।*
2. *प्रत्येक घटक राज्य के निवासियों को व्यापक स्तर पर स्वशासन की अनुमति होने से सार्वजनिक मामलों में उनकी रुचि प्रोत्साहित होती है।*
3. *संघात्मक व्यवस्था वैश्विक शासन के लिए एक नमूना पेश करती है।*
4. *यह सुशासन को जीवित रखती है तथा स्थानीय लोगों द्वारा स्थानीय मामलों का प्रशासन सुनिश्चित करती है।*

5. *यह राज्यों को उनके प्राथमिक राजनीतिक अस्तित्व को समाप्त किए बिना एक राष्ट्र में एक राष्ट्रीय शासन के अधीन शासन के साधन उपलब्ध कराती है।*
6. *यह लोगों की शक्तियों को सीमित करने वाले तथा नागरिकों की व्यक्तिगत स्वतंत्रता को नियंत्रित करने वाले निरंकुश केंद्रीय शासन के विकास को प्रतिबद्ध करती है।*
7. *यह एक नए विशाल देश को विकसित करने के लिए सबसे उपयुक्त शासन प्रणाली है।*

अवगुणः

1. *केंद्र तथा इकाइयों के बीच शक्तियों के विभाजन के कारण एक दुर्बल शासन व्यवस्था की स्थापना होती है।*
2. *संघीय व्यवस्था शासन में दोहराव, अनावश्यक जटिलता और भ्रम की स्थिति उत्पन्न करती है।*
3. *संविधान में आवश्यक परिवर्तन कर संघीय व्यवस्था की अनेक समस्याओं का समाधान किया जा सकता है परंतु यह वास्तव में आसान नहीं होता है।*
4. *संघीय प्रणाली में सदैव राजनीतिक विघटन का भय बना रहता है जैसा कि 1960 में कांगो में हुआ तथा 1991 में सोवियत संघ में हुआ।*
5. *विधान तथा कार्यपालिका में दोहरी व्यवस्था की जटिलता के कारण व्यर्थ का खर्चा और विलंब होता है।*
6. *विधायी और कार्यकारी क्षेत्रों में राज्यों के बीच एकरूपता के अभाव को प्रदर्शित करती है।*
7. *यह विदेशी मामलों के संचालन में कमजोर स्थिति को उदित करती है।*

8

संसदात्मक एवं अध्यक्षात्मक प्रणाली

फ्रांसीसी दार्शनिक चिंतक **मोण्टेस्क्यू** के द्वारा सरकार या शासन के अंगों को तीन भागों में विभाजित करने की पैरवी की है जिन्हें विधायिका, कार्यपालिका और न्यायपालिका के नाम से जाना जाता है। प्रत्येक देश में इन अंगों को अलग-अलग नामों से मान्यता प्रदान की गई है। शासन के इन्हीं अंगां के बीच आपसी संबंध भी भिन्न प्रकार के होते है और ये संबंध एक विशिष्ट प्रकार की शासन प्रणाली का सर्जन करती है। जिस तरह से शासन की शक्तियों के विभाजन के आधार पर राजनीतिक प्रणालियों को एकात्मक एंव संघात्मक शासन व्यवस्थाओं में विभाजित किया गया है। उसी तरह से शासन के अंगों के बीच विशेषतः विधायिका और कार्यपालिका के बीच संबंधों के आधार पर राजनीतिक प्रणालियों को दो भागों में विभाजित किया गया है। पहली संसदीय शासन प्रणाली और दूसरी अध्यक्षात्मक या राष्ट्रपति प्रणाली। शासन शक्तियों के अनुप्रयोग की स्थितियों के आधार पर हम इन्हें संसदीय प्रभुत्व वाली और राष्ट्रपति अर्थात् कार्यपालिका के प्रभुत्व वाली शासन प्रणाली।

संसदीय शासन प्रणाली

यह शासन प्रणाली शासन के अंगों के बीच विशिष्ट प्रकार के संबंधों को स्थापित करती है जिसे संसदीय शासन प्रणाली कहा जाता है। सर आई वर जेनिंग्स ने इसे मंत्रिमंडलीय या वेस्टमिनिस्टर शासन के नाम से पुकारा है तो रिचर्ड इसे प्रधानमंत्री शासन के नाम से संबोंधित किया है। इस व्यवस्था का सबसे आदर्श उदाहरण है-**ब्रिटेन की शासन प्रणाली**। इसके अलावा यह प्रणाली आस्ट्रेलिया, आस्ट्रिया, बेल्जियम, कनाडा, डेनमार्क, जर्मनी, यूनान, इटली, आयरलैण्ड, इजरायल, भारत, जापान, नार्वे, स्पेन इत्यादि देशों में प्रचलित है। संसदीय शासन प्रणाली की आधारभूत विशेषताएं निम्न हैः

1.संसद की सर्वोच्चताः

संसदीय शासन प्रणाली की सबसे प्रमुख विशेषता संसद की सर्वोच्चता है। शासन के अन्य अंगों की तुलना में विधायिका शक्तिशाली होती है। जैसा कि संसदीय प्रणालियों की जननी ब्रिटिश संसद के बारे में कहा जाता है कि 'वह महिला को पुरूष और पुरूष को महिला बनाने का आदेश देने के अलावा सब कुछ कर सकती है।' ज्ञात रहे कि भारतीय में संसदीय व न्यायिक सर्वोच्चता के बीच सामंजस्य की स्थिति को अपनाया गया है और वह ब्रिटिश वेस्टमिनिस्टनर प्रतिमान पर आधारित होकर भी उसके समान संसदीय प्रणाली नहीं है।

2.कार्यपालिका का गठन विधायिका में से होनाः

संसदीय प्रणाली की दूसरी प्रमुख विशेषता है कि इसमें विधायिका में से ही कार्यपालिका का सर्जन होता है। हम यह कह सकते है कि कार्यपालिका विधायिका की ही छोटी संरचना होती है। अतः विधायिका या कार्यपालिका में अंतर ही समाप्त प्रायः हो जाता है। कार्यपालिका का राजनीतिक मुखिया या सरकार का अध्यक्ष प्रधानमंत्री और उसकी मंत्रिपरिषद के सभी सदस्य अंतिम रूप से विधायिका के ही सदस्य होते है। इसी तरह से विधायिका ही कार्यपालिका होती है या इन दोनों में केवल नाम का ही अंतर होता है।

3.कार्यपालिका का विधायिका के प्रति दैनिक, प्रत्यक्ष व निरंतर उतरदायी होनाः

विधायिका व कार्यपालिका के घनिष्ठ संबंध संसदीय प्रणाली के मूल आधार है। कार्यपालिका का सर्जन विधायिका में से होने के कारण वह सदैव विधायिका या संसद के प्रति दैनिक रूप से, प्रत्यक्ष रूप से और निरंतर उतरदायी होती है। यह उतरदायित्व नीतिगत मामलों में सामुहिक होता है।

4.कार्यपालिका का कार्यकाल निश्चित होते हुए भी अनिश्चित होनाः

सामान्य रूप से सभी संसदीय प्रणाली वाले देशों में कार्यपालिका का कार्यकाल कुछ वर्ष दो या पाँच या सात वर्ष निर्धारित होता है लेकिन यह कार्यकाल स्थायित्व से परे होता है। कार्यपालिका का कार्यकाल विधायिका में विश्वास बनाए रखने पर निर्भर करता है। जब तक और जिस दिन तक अर्थात् निर्धारित कार्यकाल तक या उसके पूर्व तक, तब तक और उस दिन तक कार्यपालिका अस्तित्व में बनी रहती है। ज्ञात रहे कि इसका मतलब यह नहीं है कि निर्धारित अवधि के बाद भी वह विश्वास पर बनी रहेगी, गठन की तारीख़ से निर्धारित अवधि की समाप्ति पर वह स्वतः ही संसद के विघटन के साथ समाप्त हो जाती है।

5.राष्ट्र का अध्यक्ष व सरकार का अध्यक्ष अलग-अलग व्यक्ति होते हैः

संसदीय शासन प्रणाली में शासन की शक्तियां संविधान अथवा वैधानिक रूप में सम्राट या राष्ट्रपति में निहित होती है जबकि उन तमाम कार्यपालिका की शक्तियों का वास्तविक प्रयोग सम्राट या राष्ट्रपति के विश्वास पर मंत्रीपरिषद सहित प्रधानमंत्री करता है जो कि मंत्रिपरिषद का प्रधान या मुखिया होता है। कार्यपालिका का राजनीतिक मुखिया होने के कारण वह राष्ट्रीय सरकार का अध्यक्ष भी होता है। सम्राट या राष्ट्रपति केवल नाममात्र का

सर्वोच्च कार्यपालक होता है जिसे राष्ट्र का अध्यक्ष कहा जाता है। इस तरह संसदीय व्यवस्था दो भिन्न दशाओं को व्यक्त करती है। यह नाममात्र एंव वास्तविक कार्यपालिका के अंतर को बताता है।

6.दलीय अनुशासन, गोपनीयता और सामूहिक उत्तरदायित्व के सिद्धांतः

संसदीय शासन प्रणाली में कठोर दलीय अनुशासन, मंत्रिपरिषद में गोपनीयता और विधायिका के प्रति सामुहिक उतरदायित्व के सिद्धांत का पालन किया जाता है। यह एक ऐसी दलीय व्यवस्था का सर्जन करता है जिसमें दल अपना प्रभुत्व बनाए रखता है परंतु अध्यक्षात्मक प्रणाली में इसकी अपरिहार्यता नहीं होती है।

संसदीय प्रणाली के गुणः

1. *यह शासन विधियों एवं कार्यकारी विभागों के बीच समन्वय स्थापित करती है*
2. *कार्यपालिका का विधायिका के प्रति उत्तरदायित्व जन उतरदायित्व का प्रतिनिधित्व करता है।*
3. *कार्यपालिका का दैनिक, प्रत्यक्ष व निरंतर उतरदायित्व उसे स्वेच्छाचारी होन से रोकता है।*
4. *यह शासन विधायिका व कार्यपालिका में उत्साह को सुनिश्चित करता है।*
5. *यह जनता के प्रति संवेदनशील दृष्टिकोण रखती है।*
6. *इसमें वैकल्पिक सरकार अथवा छाया मंत्रिमंडल की संभावना विद्यमान रहती है*
7. *यह राष्ट्रीय सरकार के गठन का एक महत्वपूर्ण प्रयास है।*

संसदीय शासन प्रणाली के अवगुणः

1. *यह शासन शक्तियों के पृथक्करण के सिद्धांत का उल्लंघन करता है।*
2. *यदि विधायिका में कोई दल स्पष्ट बहुमत प्राप्त नहीं करता है तो यह विखंडित जनादेश का निर्माण करता है अथवा मिली-जुली सरकार को बढ़ावा देती है।*
3. *संसदीय सर्वोच्चता की वजह से विपक्ष उत्तरदायित्व विहीन भूमिका का निर्वहन करता है।*
4. *यहां सत्ताधारी दल के हितों की सिदि्ध हेतु राष्ट्र के हितों की उपेक्षा की जाती है।*
5. *यह नौसिखियों का शासन कहलाता है, जहां मंत्री अपने विभागों के राजनीतिक मुखिया तो होते है परंतु विशेषज्ञ नहीं होते हैं।*

अध्यक्षात्मक शासन प्रणाली

ऐसी शासन प्रणाली जिसमें कार्यपालिका और विधायिका के बीच घनिष्ठ संबंध नहीं होता है। कार्यपालिका, विधायिका से स्वतंत्र रूप से गठित होती है। विधायिका की विधायी शक्तियां और कार्य तथा कार्यपालिका की कार्यकारी शक्तियां व कार्य पृथ्थ्क एवं स्वतंत्र होते है। राष्ट्र का अध्यक्ष राष्ट्रपति ही वास्तविक अध्यक्ष होता है जो शक्तियों को धारण भी करता है और उनका उपयोग भी करता है। अतः इसे अध्यक्षीय अथवा राष्ट्रपति प्रणाली के नाम से जाना जाता है। अध्यक्षात्मक शासन व्यवस्था का सबसे आदर्श उदाहरण संयुक्त राज्य अमेरिका है। इसके अलावा यह प्रणाली कोस्टोरिका, साईप्रस, फिलीपंस, दक्षिणी कोरिया, वेनजुएला इत्यादि में प्रचलित है।

अध्यक्षात्मक शासन प्रणाली की विशेषताएंः

1.संविधान की सर्वोच्चताः

अध्यक्षात्मक प्रणाली संसद की सर्वाच्चता के स्थाप पर संविधान को सर्वोच्च दर्जा प्रदान करती है। संविधान के द्वारा शासन के जिस अंग को शक्तियां प्रदान की गई है, उसी के द्वारा उनका प्रयोग किया जाता है। अमेरिकी संविधान संघ सरकार की कार्यकारी शक्तियों को राष्ट्रपति में निहित करता है और वही इनका प्रयोग करता है। अतः इसे राष्ट्रपति की सर्वोच्चता वाली प्रणाली भी कहा जाता है।

2.विधायिका व कार्यपालिका में घनिष्ठ संबंध नहींः

विधायी व कार्यकारी अंगों की असंबंधता के कारण ही इसे अध्यक्षीय शासन प्रणाली के नाम से जाना जाता है। विधायिका और कार्यपालिका की संरचना अलग होती है, अतः इनमें आपसी संबंध नहीं होता है। कार्यपालिका का मुखिय अपनी इच्छा से मंत्रिपरिषद का सर्जन करता है। कोई मंत्री विधायिका का सदस्य नहीं होता है। यह कहा जा सकता है कि कार्यपालिका का गठन विधायिका में से नहीं होता है।

3.कार्यपालिका विधायिका के प्रति उतरदायी नहींः

जब कार्यपालिका का गठन ही विधायिका से स्वतंत्र होता है तो कार्यपालिका का उतरदायित्त विधायिका के प्रति नहीं होता है। कार्यपालिका संविधान व जनता के प्रति उतरदायी होती है।

4.कार्यपालिका का कार्यकाल निश्चित होता हैः

इस व्यवस्था में कार्यपालिका का कार्यकाल विशेष दशाओं को छोड़कर पूर्णतया निश्चित होता है। सामान्यतया यह 2 से 6 वर्ष तक होता है। संयुक्त राज्य अमेरिका में कार्यपालिका अर्थात् राष्ट्रपति का कार्यकाल 4 वर्ष होता है। महाभियोग के अलाव कार्यपालिका का कार्यकाल समय से पहले समाप्त नहीं किया जा सकता है।

5.सरकार व राष्ट्र का अध्यक्ष एक ही होता हैः

अध्यक्षीय शासन प्रणाली में सरकार का अध्यक्ष और राष्ट्र का अध्यक्ष राष्ट्रपति ही होता है।

अतः संसदीय प्रणाली की तरह दोनों में कोई अंतर नहीं होता है। इसी वजह से संवैधानिक एवं यर्थाथ संप्रभु में भी कोई अंतर नहीं होता है।

6.शक्ति पृथ्थ्कण के सिद्धांत का लागू होनाः

शक्ति पृथ्थ्करण का सिद्धांत अध्यक्षात्मक प्रणाली से अनिवार्य रूप से जुड़ा हुआ है। शक्ति पृथ्थ्करण का अभिप्राय उस संवैधानिक व्यवस्था से है जिसमें शासन के अंगों को अलग-अलग शक्तियां और कार्य प्रदत होते है। ये सभी अंग अपने-अपने क्षेत्र में अपने उतरदायित्व का निर्वहन करते है। जैसे कि विधायिका के विधायी कार्य, कार्यपालिका के कार्यकारी कार्य और न्यायपालिका के न्यायिक कार्य। ये अंग एक दूसरे के कार्यों में और शक्तियों में हस्तक्षेप नहीं करते है।

अध्यक्षात्मक प्रणाली के गुणः

1. *यह शासन में स्थायीत्व को बनाए रखती है।*
2. *कार्यपालिका का कार्यकाल निश्चित होता है।*
3. *यह शासन प्रणाली प्रभावशाली ढंग से राष्ट्रीय संकट की स्थितियों का सामना कर सकती है।*
4. *यह व्यवस्था शक्तियों के पृथक्करण के सिद्धांत पर आधारित होती है।*
5. *प्रशासनिक दृष्टि से शासन अच्छा है क्योंकि मंत्रियों के लिए विधायिका का सदस्य होना अनिवार्य नहीं होता है।*
6. *विधायिका व कार्यपालिका एक दूसरे के लिए बाध्य नहीं होती है।*

अध्यक्षात्मक शासन प्रणाली के अवगुणः

1. *शक्ति पृथ्थ्करण के कारण शासन प्रणाली में अवरोध उत्पन्न होता है।*
2. *नियंत्रण व संतुलन की व्यवस्था की वजह से शासन के तीनों अंग एक-दूसरे पर आधिपत्य स्थापित करने की कोशिश करते है।*
3. *निश्चित कार्यकाल कार्यपालिका में तानाशाही की प्रवृति को जन्म देता है।*
4. *कार्यपालिका का विधायिका के प्रति उतरदायी न होना लोकतंत्र के उतरदायित्व के सिद्धांत की अवहेलना करता है।*
5. *मंत्रीपरिषद राष्ट्रपति की व्यक्तिगत इच्छा पर निर्भर है जो लोकतंत्र के सिद्धांतों का उल्लंघन है।*

डॉ. के सी सामोता

9

राजनीतिक दल व दबाव समूह

राजनीतिक दल

राजनीतिक दल, दबाव समूह से भी भिन्न होता है। राजनीति दल लोगों का संगठन है जो लोककल्याण की नीति के बड़े मुद्दों के प्रति प्रतिबद्ध होते हैं तथा वे राजनीतिक सत्ता में एकाधिकार प्राप्त करने तथा अन्य दलों के साथ उस में भाग लेने की प्रयास द्वारा नीतियों के लिए प्रत्यक्ष रूप से उत्तरदाई होते हैं। इनकी अपेक्षा दबाव समूह के द्वारा अपने क्षेत्रीय एवं संकीर्ण हितों को मुखरित करने का कार्य किये जाते है तथा वे अपने विशिष्ट हितों को प्रशासनिक अधिकरण के माध्यम से प्रत्यक्ष उत्तरदायित्व ग्रहण किए बिना प्रोत्साहित करने का प्रयास करते है। दबाव समूहों राजनीति में आँख-मिचौली का खेल खेलते है।
इसीलिए ठीक ही कहा गया है कि मौलिक रूप में दबाव समूह उन समन्वित हितों और कार्यक्रमों का प्रतिनिधित्व करते हैं जिनके माध्यम से वे अपना प्रभाव जमाना चाहते हैं। हित समूहों के द्वारा उस समय पूर्ण एवं प्रभावशाली भूमिका निभाई जाती है जब इनका कोई प्रत्यक्ष या सुनिश्चित उद्देश्य होता है। दूसरी तरफ राजनीतिक दलों के द्वारा पद चाहने वालों तथा नीति संबंधी निर्णय की ओर उन्मुख विभिन्न समूह को सम्मिलित किया जाता है। वास्तव में राजनीतिक समाज के भीतर विद्यमान अनेक विरोधी शक्तियों के बीच संगति स्थापित करना राजनीतिक दलों के प्रमुख विषयों में से एक है।

राजनीतिक दल के निर्धारक तत्व या स्रोत :

आखिरकार राजनीतिक दलों का निर्माण कैसे होता है अथवा राजनीतिक दल जन्म कैसे लेते हैं इसके अनेक घटक तत्व निम्नलिखित है

1. *मानवीय स्वभाव अथवा प्रकृति।*
2. *धार्मिक और सांप्रदायिक भावनाएं।*

3. *आसपास का परिवेश।*
4. *आर्थिक तत्व।*
5. *विचारधारा।*

राजनीतिक दलों की भूमिका अथवा कार्यः

राजनीतिक दल आधुनिक प्रतिनिधि लोकतंत्र की मुख्य धुरी के रूप में विद्यमान है। पिछड़े समाजों से लेकर विकसित राजनीतिक प्रणालियों तक राजनीतिक दलों के द्वारा प्रभावी एवं निर्णायक भूमिका का निर्वहन किया जाता है। राजनीतिक दल भले के लिए हो या बुरे के लिए परन्तु आधुनिक लोकतंत्र के संचालन के लिए अपरिहार्य है। विकासशील पारंपरिक समाजों के साथ-साथ उन्नत, विकसित, औद्योगिक देशों में राजनीतिक दल बहुत निर्णायक भूमिका निभाते हैं। उन्हें अपने लोगों/समर्थकों को सरकार के आधुनिक संस्थानों से परिचित कराना होगा। इसलिए, वे लोगों और सरकार के संस्थानों के बीच एक अनिवार्य कड़ी साबित होते हैं। विकास की परवाह किए बिना राजनीतिक प्रणालियों में, राजनीतिक दलों को एक स्थिर सरकार प्रदान करनी है और न केवल नए समूहों को राजनीतिक प्रक्रिया में लाना है, बल्कि उन्हें एक राष्ट्र के आर्थिक, राजनीतिक और सामाजिक लक्ष्यों की ओर उन्मुख करना है। दलों की प्रभावी भूमिका को निम्न बिन्दुओं के आधार पर विश्लेषित किया जा सकता है-

1.राजनीतिक दल लोकतंत्र का संचालन करते हैंः

ज्ञात रहे कि राजनीतिक दलों के बिना आधुनिक राष्ट्र -राज्यों की राजनीतिक प्रणालियां का संचालन करना संभव नहीं है। राजनीतिक दल निर्वाचन में भाग लेकर विजय प्राप्त करते है और अपने दलीय बहुमत के आधार पर सरकार का गठन करते है और इसी बहुमत के माध्यम से लोकतंत्र का संचालन करते है।

2.राजनीतिक दल राजनीतिक व्यवस्था को दिशा देने की कोशिश करते हैंः

किसी भी प्रतिनिधि लोकतांत्रिक व्यवस्था वाले देश की उन्नति की दिशा राजनीतिक दलों पर निर्भर हो गई है। लोकतंत्र अब दूनियाभर में दलतंत्र में परिवर्तित होता जा रहा है। दलों का चरित्र राष्ट्र का चरित्र बन गया है। इस संदर्भ में दूनिया के सबसे बड़े संख्याबल वाले लोकतंत्र में दलों की स्थिति से इस आसानी से समझा जा सकता है।

3.राजनीतिक दल राजनीतिक समाजीकरण के एक महत्वपूर्ण अभिकरण हैंः

समाजीकरण वह प्रक्रिया है जिसके माध्यम से किसी भी राजनीतिक प्रणाली के राजनीतिक मूल्य, मानक, आदर्श एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी की ओर विवर्तित या संचारित होते है। यह राजनीतिक प्रतिमानों का अधिगम करने की प्रक्रिया होती है। जिस तरह से बालक-बालिका सामाजिक मूल्यों को प्रत्यक्ष व अप्रत्यक्ष रूप से सीखता है, उसी तरह से राजनीतिक मानकों व मूल्यां, अभिवृतियां व अभिविन्यासों को आगामी पीढ़ीयों की ओर स्थानांतरित करने में

राजनीतिक दलों की निर्णायक व प्रभावी भूमिका होती है।

4.चुनावों का अनौपचारिक संचालनः

आधुनिक लोकतंत्र में औपचारिक रूप से संवैधानिक उपबंधों वाले चुनाव आयोग के द्वारा या अन्य नियामकीय अभिकरणों के द्वारा संचालित किये जाते है। परंतु यदि अनौपचारिक रूप से देखे तो प्रत्याशियों के चयन से लेकर सरकार के गठन तक का सम्पूर्ण कार्य राजनीतिक दलों के द्वारा ही किया जाता है।

5.राजनीतिक दल सत्ता पर अधिकार करने के लिए संघर्ष करते हैंः

राजनीतिक दल सता के लिए अन्य दलों के साथ संवैधानिक एवं लोकतांत्रिक साधनों के माध्यम से मुक्त प्रतिस्पद्र्धा करते है और विजय प्राप्त कर बहुमत के आधार पर सरकार का निर्माण करते है। अतः यह कहा जा सकता है कि दल सता के लिए आपसी संघर्ष करते है।

6.सरकार तथा जनता के बीच संपर्क सूत्र की भूमिकाः

राजनीतिक दल केवल सता का संचालन एवं नियंत्रण ही नहीं करते है अपितु सता पक्ष के रूप मे अथवा विपक्षी दल के रूप में शासन से जनता तक और जनता से शासन तक जनहित के लिए संप्रेषण की भूमिका का निर्वहन करते है।

7.राजनीतिक भर्ती और समाजीकरण का कार्यः

राजनीतिक दल केवल राजनीतिक मानकों को अधिगम कराने का कार्य ही नहीं करते अपितु अपनी राजनीतिक विरासत को भी आगे बढ़ाते है। इसके लिए इनके द्वारा युवा वर्ग को राजनीतिक क्षेत्र में भर्ती कर उन्हें तैयार किया जाता है। इस वर्ग को राजनीतिक समाजीकरण के माध्यम से जनता से जोड़ते है। इसे राजनीतिक दल के प्रमुख कार्यों में से एक माना जाता है।

8.राजनीतिक दलों के द्वारा राजनीतिक शिक्षा या चेतना का कार्य किया जाता हैः

राजनीतिक दल केवल राजनीति के लिए ही कार्य नहीं करते है अपितु आम जनता को राजनीतिक विषयों या सार्वजनिक विषयों के प्रति सचेत करते है, उनकी इस संदर्भ में समझ बढ़ाते है। राजनीतिक व्यवस्था के बारे में मतदान से लेकर चुनावी व्यवस्था के संचालन और राजनीतिक प्रणाली की कार्य व्यवस्था के बारे में शिक्षा प्रदान करते है।

राजनीतिक दलों के गुणः

1. *राजनीतिक दलों का विद्यमान होना प्रतिनिधि लोकतंत्र की प्रकृति की अनुकूल है।*
2. *वर्तमान प्रजातंत्र के युग में राजनीतिक दलों के बिना लोकतंत्र की कल्पना करना असंभव है।*
3. *राजनीतिक दलों के द्वारा राजनीतिक संचरण और भर्ती के माध्यम से राजनीतिक चेतना प्रशिक्षण को आगे बढ़ाया जाता है।*

4. *क्रांति दल या विपक्षी दल, सता पक्ष के दल की निरंकुशतावाद की प्रवृत्ति पर रोक लगाते हैं।*
5. *राजनीतिक दल संसदीय प्रजातंत्र के पर्याय हैं।*
6. *राजनीतिक दल राजनीतिक शिक्षा और राजनीति प्रशिक्षण के आधार स्तंभ होते हैं।*
7. *राजनीतिक दलों के द्वारा जनहित के विषयों को विश्लेषित करके जनता तक पहुंचाया जाता है।*
8. *राजनीतिक दल राजनीतिक अस्थिरता और उथल-पुथल से देश की रक्षा करते हैं।*

दलीय प्रणाली के अवगुणः

राजनीतिक दलों का उदय तथा विकास स्वाभाविक राजनीतिक परिवेश की तरह हुआ है। अमेरिकी राष्ट्रपति वांशिगटन की नजर में राजनीतिक दल लोकतंत्र के परे परंतु लोकतंत्र के सथ ही उदित हो गए है। ये दल केवल सता के लिए संघर्ष करते है। राजनीतिक दलों के नाम अलग होते है, उनके काम अलग नहीं होते है। इनके अवगुणों को निम्न बिन्दुओं के आधार पर स्पष्ट किया गया है-

1. *राजनीतिक दल संविधानेतर औपचारिक संगठन होते है।*
2. *राजनीतिक दलों का मूल ध्येय किसी भी तरह से सता को हासिल करना होता है।*
3. *राजनीतिक दलों ने अपने प्रभुत्व के चलते लोकतंत्र को दलतंत्र में बदल दिया है।*
4. *राजनीतिक दलों के द्वारा राष्ट्रीय हित के नाम पर स्वहित को बढ़ावा दिया जाता है।*
5. *सताधारी राजनीतिक दल विपक्षी दल के अस्तित्व को मिटाने की नीति पर कार्य करते है।*
6. *राजनीतिक दल अप्रत्यक्ष रूप से असंवैधानिक, गैर प्रजातांत्रिक और हिसंक साधनों का प्रयोग करते है जो लोकतंत्र के विनाश का प्रतीक है।*
7. *राजनीतिक दलों ने लोकतंत्र के मूल को परिवर्तित करने की कोशिश आरंभ कर दी है।*
8. *राजनीतिक दल सता का दुरूपयोग कर लोकतंत्र के आवरण के पीछे अधिनायकतंत्र को स्थापित कर रहे है।*
9. *राजनीतिक दलों ने जनसंचार साधनों पर नियंत्रण कर यर्थाथ स्थिति को छिपाकर आमजन के सामने मिथ्या सूचनाएं, तथ्य व धारणाएं प्रस्तुत करते है।*

दलीय व्यवस्था के मुख्य प्रकारः

राजनीतिक सता पर नियंत्रण एवं उसके संचालन के आधार पर राजनीतिक दलों को तीन मुख्य प्रकारों में विभाजित किया जाता है जो कि निम्न है-

1.एक दलीय व्यवस्थाः

एक दलीय व्ययस्था से हमारा अभिप्राय है कि किसी राजनीतिक प्रणाली की शासन

व्यवस्था में केवल एक दल के द्वारा ही शासन सता का संचालन, नियंत्रण एवं नियमन किया जाने से है। ऐसी प्रणाली में एक से अधिक राजनीतिक दलों का अस्तित्व तो होता है और वे सता के लिए संघर्ष भी करते है तथापि उन्हें इसमें सफलता नहीं मिलती है। अतः इसे स्पष्ट रूप से एक दलीय प्रभुत्व वाली दलीय प्रणाली कहा जा सकता है। 1917 में लेनिन के नेतृत्व में साम्यवादी राज्य की स्थापना के साथ ही एक दलीय व्यवस्था का जन्म हुआ। बोल्शेविकों ने साम्यवादी दल बनाया जिसने एक नई प्रकार की राजनीति व्यवस्था स्थापित की जिसे सर्वहारा का अधिनायकवाद कहा जाता है। एक दलीय व्यवस्था द्वितीय महायुद्ध से पूर्व जर्मनी में नाजीदल व इटली में फासीवादी दल के रूप में सबसे विख्यात रही है। अनेक बार इस व्यवस्था अन्य दलों पर प्रतिबंध भी लगा दिया जाता है अथवा इस तरह से प्रबंधन किया जाता है कि अन्य दल केवल मुँह ताकते रहते है। भारत में 1990 के दशक तक केन्द्रीय स्तर पर केवल भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस का प्रभुत्व रहा है। इसी तरह से अफ्रीका में अफ्रीकन नेशनल कांग्रेस ने 1994 तक एक दलीय व्यवस्था को बनाए रखा था। इस समय यह प्रणाली विश्व के अन्य देशों में पायी जाति है जिनमें स्पेन, पुर्तगाल, मैक्सिको, युगोस्लोवाकिया, अल्बानिया, बुलगारिया, हंगरी, रुमानिया, चेकोस्लोवाकिया इत्यादि में विद्यमान है।

एक दलीय व्यवस्था के गुणः

1. *अकेला दल राष्ट्रीय एकता का प्रतीक होता है।*
2. *लोगों की सामाजिक एकता को प्रतिबिंबित करने वाला प्रतिमान होता है।*
3. *एक दलीय व्यवस्था रखने वाला राज्य आदर्शों का धारक होता है।*
4. *विपक्ष के रूप में कोई बाधा नहीं होती है।*
5. *राजनीतिक स्थिरता बनी रहती है।*

एक दलीय व्यवस्था के अवगुणः

1. *मतदाताओं के पास केवल एक ही विकल्प होता है।*
2. *यह लोकतंत्र की मूल भावना के विरूद्ध है।*
3. *विपक्षी की दल के अभाव में एकदलीय तानाशाही विकसित होती है।*
4. *एक दल, एक राष्ट्र, एक नेता ये सब फासीवाद के आगमन के प्रतीक होते है।*
5. *एक दलीय व्यवस्था सर्वाधिकारवाद का ही दूसरा नाम है।*
6. *ऐसी व्यवस्था में नागरिकों के लिए स्वतंत्रता, समता और न्याय सपने के समान होते है।*
7. *एक दलीय प्रणाली लोगों के जीवन पर नियंत्रण कर लेती है।*

2.द्विदलीय दलीय प्रणालीः

दो दलों वाली द्वि-दलीय व्यवस्था से हमारा अभिप्राय है कि सत्ता की भागीदारी केवल दो ही दलों में होती है। यद्यपि अन्य दलों का अस्तित्व भी होता है लेकिन उनकों सता पर नियंत्रण

अथवा सरकार के गठन का अवसर कदापि नहीं मिलता है। यह कहा जा सकता है कि इसमें केवल दो ही दल सता का उपभोग करते है और अन्य दल दर्शक के रूप में भूमिका निभाते है। संयुक्त राज्य अमेरिका पिछले 200 वर्षों से इसका सर्वश्रेष्ठ उदाहरण बना हुआ है। ब्रिटेन भी इसी व्यवस्था का उदाहरण रहा है लेकिन 2010 के बाद वहाँ पर तीसरे दल को भी सता में साझेदार होने का अवसर मिल गया है।

द्विदलीय प्रणाली के प्रमुख गुणः

1. *यह शासन के लोकतांत्रि स्वरूप के सफल संचालन को सुनिश्चित बनाता है।*
2. *बहुमत प्राप्त करने वाला दल शासन सता का संचालन करता है और दूसरा दल विपक्ष का संचालन करता है।*
3. *इसके माध्यम से शासन का स्थायित्व प्रशासन की कुशलता पर सकारात्मक प्रभाव डालता है।*
4. *यह व्यवस्था लोगों के सामने का अच्छा विकल्प प्रस्तुत करती है।*
5. *इसमें प्रति क्रांति दल सकारात्मक और रचनात्मक भूमिका का निर्वहन करता है।*

द्वि-दलीय प्रणाली के अवगुणः

1. यह मतदाताओं की पसंद को केवल दो विकल्पों तक सीमित करती है।
2. राष्ट्र का केवल दो राजनीतिक दलों में स्पष्ट रूप से विभाजन दिखायी देता है। ऐसा लगता है कि दोनों दल मिलकर जनता को ठगने का काम कर रहे है।
3. नेतृत्व के प्रति लोगों में बुद्धिमता, गुण तथा चयन के बजाय श्रद्धाभाव स्थापित हो जाता है।

3.बहुदलीय व्यवस्था

ऐसी दलीय प्रणाली जहाँ पर दो से अधिक दलों को शासन सत्ता को संचालित करने का अवसर मिलता है। उसे बहुदलीय व्यवस्था कहा जाता है। इस दलीय व्यवस्था का स्वरूप इतना सरल होता है कि बड़ी संख्या में दबाव समूह व कार्य समूह भी राजनीतिक दलों जैसा व्यवहार करने लगते हैं। भारत, फ्रांस, इटली जैसे देशों सर्वाधिक प्रचलित है। विश्व के अधिकांश देशों में बहुदलीय प्रणाली विद्यमान है।

बहुदलीय व्यवस्था के गुणः

1. *मतदाताओं के पास अनेक विकल्प होते हैं।*
2. *यह लोगों के जनहितों को समुचित प्रतिनिधित्व प्रदान करती है।*

3. *यह स्वाभिमानी व्यक्ति के व्यक्तित्व की रक्षा करती है।*
4. *यह तानाशाही प्रवृत्ति पर कठोर नियंत्रण लगाती है।*
5. *अन्य दलीय प्रणालियों की तुलना में अधिक लोकतांत्रिक होती है।*

बहुदलीय प्रणाली के अवगुणः

1. राजनीतिक दलों की बड़ी संख्या बहुत अधिक भ्रम उत्पन्न करती है।
2. दलीय संघर्ष के बीच छोटे समूह को विलित होने के लिए प्रोत्साहित करती है।
3. गठबंधन वाली सरकारों को स्थापित करने की ओर कदम बढ़ाती है।
4. शासन के स्तर पर प्रशासनिक कुशलता को नष्ट करती है।
5. क्षेत्रीय हितों को अधिक महत्व दिया जाता है।

दबाव समूह

राजनीतिक प्रणाली का स्वरूप चाहे लोकतांत्रिक हो अथवा साम्यवादी, प्रत्येक प्रणाली के भीतर कुछ हितकारी समूहों को अस्तित्व पाया जाता है जिन्हें दबाव समूह के नाम से जाना जाता है। दबाव समूह उदारवादी प्रणालियों में प्रभावी एवं निर्णायक भूमिका का निर्वहन करते है। दबाव समूह लोकतांत्रिक सिद्धांतों के विपरीत उदय होकर स्वार्थी हितों की पूर्ति के लिए कार्य करते है। जब दबाव समूह और राजनीतिक दल घनीभूत हो जाते है तो लोकतंत्र के लिए विस्मयकारी चुनौती उत्पन्न कर देते है। इनके प्रभाव की वजह से फाईनर जैसे चिंतकों ने इन्हें गुमनाम साम्राज्य के नाम से पुकारा है।

दबाव समूह की परिभाषा:

दबाव समूह को 'रुचि समूह', 'लॉबी समूह' या 'विरोध समूह' के रूप में भी वर्णित किया जा सकता है। कुछ लोग 'दबाव समूह 'शब्द का उपयोग करने से बचते हैं क्योंकि यह एक अलग तरह की व्याख्या करता है जिसका अर्थ है ऐसे समूह जो अपने उद्देश्यों को प्राप्त करने के लिए वास्तविक दबाव का उपयोग करते हैं, जो जरूरी नहीं होता है। आम तौर पर यह कहा जाता है कि एक दबाव समूह एक संगठित संघ है, या एक अधिक संस्थागत रूप से रुचि व्यक्त करता है सामाजिक या राजनीतिक समूहों की गतिविधियों के माध्यम से होता है जो उनके घटकों के हितों का प्रतिनिधित्व करते हैं और चुनाव के लिए उम्मीदवार नहीं रखते हैं, लेकिन तलाश करते हैं सरकार की नीति या कानून को प्रभावित करें। इस संबंध में, डेविड ट्रूमेन ने कहा कि व्यक्ति कई अलग-अलग समूह की निष्ठाओं से संबंधित हैं, जो उनके हितों और व्यक्तित्वों के विभिन्न पहलुओं को दर्शाते हैं। डेविड ट्रूमैन कहते कि दबाव समूहों ने

परस्पर अतिव्यापी समूह संबद्धता के विचार को जन्म दिया।

दबाव समूहों के कार्यः

बहुलवादियों का तर्क है कि दबाव समूह की राजनीति लोकतंत्र के लिए एक बहुत ही महत्वपूर्ण चीज है क्योंकि ये समूह विभिन्न प्रकार की भूमिकाएं और कार्य करते हैं, जो बहुलतावादी लोकतंत्र के विचार को आगे बढ़ाने में मदद करते हैं। इस संबंध में रॉबर्ट डाहल का मानना है कि लोकतंत्र व्यक्ति की भूमिका पर जोर देने के साथ किसी एक व्यक्ति की धारणा पर आधारित है। वे तर्क देते हैं कि दबाव समूह एकमात्र तरीका है जिसके माध्यम से व्यक्तिगत हितों को पूरा किया जा सकता है। बहुलवादियों के अनुसार दबाव समूह कई भूमिकाएं निभाते हैं, ताकि लोकतंत्र का संतुलन बहाल हो सके, जैसे कि प्रतिनिधित्व, शिक्षा, राजनीतिक भागीदारी, नीति निर्माण और नीति कार्यान्वयन आदि में निर्णायक योगदान देना।

1.राजनीतिक दलों के प्रतिनिधित्व का विकल्पः

लोकतंत्र के बहुलवादी प्रतिमान में दबाव समूह एक आवश्यक भूमिका निभाते हैं क्योंकि यह माना जाता है कि राजनीतिक दल आधुनिक लोकतंत्र में विविध हितों और विचारों की पूरी श्रृंखला के लिए पर्याप्त प्रतिनिधित्व नहीं दे सकते क्योंकि उनका प्रमुख कार्य एक सुसंगत राजनीतिक इकाई में हितों को एकजुट करना है। जबकि दबाव समूह विशिष्ट हितों की पूर्ती के लिए लोगों को प्रतिनिधित्व प्रदान करते है। इस संबंध में यह तर्क दिया जा सकता है कि दबाव समूह औपचारिक प्रतिनिधित्व प्रक्रिया का एक विकल्प प्रस्तुत करते हैं जिसे कार्यात्मक प्रतिनिधित्व कहा जाता है।

2.राजनीतिक भागीदारी प्रदान करनाः

बहुलतावादियों का यह भी मानना है कि लोकतंत्र सरकार की एक प्रणाली है जिसमें लोगों को निर्वाचन प्रणाली के माध्यम से शासन प्रणाली में भाग लेने का अवसर मिलता है। दबाव समूह उस लोकतांत्रिक क्षति को दूर करने का विकल्प उपलब्ध कराते है जो कि दलों के नेतृत्व में एक बार मत मिलने के बाद प्रतिनिधि व जनता के बीच दूरी के रूप में उदित होती है। दबाव समूह राजनीतिक व्यवस्था में भागीदारी और पहुँच बढ़ाते हैं जिससे कि लोकतंत्र की गुणवत्ता में वृद्धि होती है।

3.जन शिक्षा प्रदान करनाः

यह भी कहा जाता है कि दबाव समूह लोकतंत्र में बहस, चर्चा और तर्क को बढ़ावा देते हैं। ऐसा करके वे अधिक शिक्षित मतदाता वर्ग का निर्माण करते है। दबाव समूह जनता के साथ संवाद करने और उनके बीच राजनीतिक चेतना बढ़ाने का कार्य करते है। इसी के साथ आजकल सोशल मीड़िया के माध्यम से सार्वजनिक विषयों पर जनता को जागरूक करने का कार्य भी किया जा रहा है। दबाव समूह शासन को सच बताने के लिए मजबूर करते है।

4.नीति निर्धारण में अप्रत्यक्ष भूमिकाः

दबाव समूह प्राधिकृत रूप से नीति-निर्माता समूह नहीं होते हैं लेकिन ये अप्रत्यक्ष रूप से

नीति निर्माण की प्रक्रिया के प्रभावित करते है। यह सर्वविदित है कि दबाव समूह सूचना का एक महत्वपूर्ण स्रोत होते हैं और इसी सूचना का उपयोग वे नीति निर्माण की प्रक्रिया के दौरान सरकार के साथ नियमित रूप से परामर्श करके करते है।

5.अन्य माध्यम से प्रभावः

दबाव समूह अनेक तरीकों से राजनीतिक प्रणाली पर अपना प्रभाव स्थापित करते है। दबाव समूह के द्वारा अपनाए जाने वाले कुछ प्रमुख सामान्य चैनल नौकरशाही, संसद, राजनीतिक दल, जनता की राय, प्रत्यक्ष कार्रवाई, जन मीडिया और मंत्री और सिविल सेवक इत्यादि है।

दबाव समूह के प्रमुख गुणः

1. *लाकतंत्र में सहयोगी संगठन के रूप में कार्य करते है।*
2. *सार्वजनिक विषयों के संदर्भ में राजनीतिक चेतना का विस्तार करते है।*
3. *शासन प्रक्रिया को जनहितों पर ध्यान देने के लिए मजबूर करते है।*
4. *अनुसंधान व तथ्य संकलन के माध्यम से सरकार की सूचना उजागर करते है।*
5. *सता नियंत्रण के अलावा राजनीतिक दलों की तरह कार्य करते है।*

दबाव समूह के प्रमुख अवगुणः

1. *लोकतंत्र की मूल भावना के खिलाफ़ है।*
2. *निहित स्वार्थी हितों पर अधिक ध्यान देते है।*
3. *अलोकतांत्रिक, गैर संवैधानिक और हिंसा के साधनों का प्रयोग करते है।*
4. *राजनीतिक दलों को व्यापक रूप से प्रभावित करते है।*
5. *जनहितों के नाम पर दबाव की राजनीति का प्रयोग करते है।*

10
प्रतिनिधित्व के सिद्धांत

निर्वाचन किसी भी लोकतांत्रिक संगठन या शासन प्रणाली का मूल अधार होते है। चुनाव लोकतंत्र के महोत्सव के समान होते है। इसीलिए लॉर्ड एक्टन ने प्रतिनिधित्व को आधुनिक समय की खोज कहा है। लोकतंत्र के सामान्य प्रकार है- प्रत्यक्ष व अप्रत्यक्ष लोकतंत्र। प्रतिनिधि लोकतंत्र वह है जहाँ पर जनहित का निर्धारण करने वालों प्रतिनिधियों का निर्धारण लोकप्रिय प्रभुसता का निर्वहन करने वाला जन समुदाय निर्वाचन के माध्यम से करता है। जनता स्वयं अपने में से ही किसी जनहितैषी प्रतिनिधि का चुनाव करती है। दुनिया के विविध लोकतांत्रिक देशों में जनता द्वारा अनेक तरीकों से अपने जनप्रतिनिधियों का निर्वाचन किया जाता है। अतः निर्वाचन और लोकतंत्र एक दूसरे के अनुपूरक या अनिवार्य भाग होते है। राजनीतिक विश्व के लोकतांत्रिक देशों में विविध प्रकार की राजनीतिक निर्वाचन प्रणालियाँ विद्यमान है।

प्रतिनिधित्व के प्रमुख सिद्धांतः

अप्रत्यक्ष लोकतंत्र में आमजन के प्रतिनिधि ही जनता के विश्वास पर शासन की शक्तियों का प्रयोग करते है। प्रतिनिधि व जनता में क्या संबंध है? इसे प्रतिनिधित्व के कुछ आधारभूत सिद्धातां के द्वारा स्पष्ट किया गया है।

1.प्रतिनिधित्व का प्रतिक्रयावादी सिद्धांतः

इस सिद्धांत के मुख्य समर्थक थॉमस हॉब्स व हेमिल्टन को माना जाता है। यह व्यवस्था व सता की आवश्यकता पर बल देता है। इसके अनुसार विधायिका अपनी समझ से जनहित में कार्य करती है, उसे जनता के निर्देशन की आवश्यकता नहीं पड़ती है। विधायिका, कार्यपालिका उच्च ज्ञान और विवेक रखने वाले लोगों का समूह होता है जिन्हें जनमत को ध्यान में तो रखना चाहिए परंतु उससे बंधना नहीं चाहिए। इस सिद्धांत के अनुसार प्रतिनिधि प्रभावी होते है, जनता नहीं।

2.प्रतिनिधित्व का रूढ़िवादी सिद्धांतः

इस सिद्धांत के मुख्य समर्थक एडमण्ड बर्क एवं जेम्स मेडिसन को माना जाता है।

यह सार्वजनिक नियंत्रण में तो विश्वास रखता है परंतु शासन प्रक्रिया में आमजन को सहभागिता प्रदान नहीं करना चाहता है। जनता अपने प्रतिनिधियों को निर्देशित नहीं कर सकती है। जनता को विशिष्ट लोगों में से अपने प्रतिनिधि चुनने चाहिए ताकि निर्देश की आवश्यकता ही न पड़े। आमजन को केवल चुनाव के माध्यम से ही शासन बदलने का हक है, चुनने के बाद उसे निर्देश देने का नहीं।

3.प्रतिनिधित्व का उदारवादी सिद्धांतः

इस सिद्धांत के मुख्य प्रवर्तक जॉन लॉक् व टॉमस जैफर्सन है। यह सभी लोकतांत्रिक सिद्धांतों में श्रेष्ठ माना जाता है। इसके अनुसार जनता द्वारा निर्वाचित शासन जनता का संदेशवाहक होता है। अतः उसे केवल जनता के निर्दशानुसार ही शासन का कार्य संचालित करना होता है। सभी आमजन एक समान होते है। यह समता का सबसे बड़ा समर्थन करने वाला सिद्धांत है।

4.प्रतिनिधित्व का आमूलपरिवर्तनवादी सिद्धांतः

रूसों व नववामपंथी इस सिद्धांत के प्रमुख समर्थक है। इस सिद्धांत के अनुसार जनता स्वयं ही अपने हितों का प्रतिनिधित्व करती है। सामान्यतया प्रतिनिधित्व का यह सिद्धांत प्रत्यक्ष प्रजातंत्र के स्वरूप में विश्वास करता है।

प्रतिनिधित्व की प्रक्रिया या निर्वाचन प्रणाली के आधारभूत घटकः

किसी निर्वाचन व्यवस्था के मुख्य कारकों में वयस्क मताधिकार, प्रत्यक्ष व अप्रत्यक्ष मतदान, गुप्त व खुला मतदान, प्रादेशिक एवं व्यावसायिक प्रतिनिधित्व, गैरीमेण्डरींग, पार्क बैरल, निर्वाचन क्षेत्र परिमाण इत्यादि को शामिल किया जा सकता है।

सार्वभौमिक वयस्क मताधिकार प्रणाली- मताधिकार की ऐसी व्यवस्था जिसमें निर्धारित आयु प्राप्त करने वाले नागरिकों को बिना किसी जाति, लिंग, विश्वास या धर्म, सामाजिक प्रस्थितिगत भेदभाव के मतदान का अधिकार प्राप्त होता है यद्यपि इसके साथ राज्य अन्य नियमों की भी व्यवस्था कर सकता है जैसे कि मानसिक स्वास्थ्य, नागरिकता, निर्वाचन नामावली में पंजीकरण या अन्य उपबन्ध भी जोड़ा जा सकता है।

- **प्रत्यक्ष मतदान**- वह मतदान प्रणाली जिसमें मतदाता एवं प्रत्याशी के बीच सीधा या प्रत्यक्ष सम्पर्क रहता है जैसे कि अमेरिका , ब्रिटेन, भारत इत्यादि की केन्द्रीय विधायिकाओं के निम्न सदनों में मतदान की व्यवस्था प्रत्यक्ष मतदान का ही उदाहरण है।
- **अप्रत्यक्ष मतदान**- ऐसी मतदान व्यवस्था जिसमें मतदाता किसी अंतरिम या मध्यवर्ती या अस्थायी प्रत्याशी या समूह का निर्वाचन करता है जो कि आगे चलकर अन्तिम या वास्तविक प्रतिनिधि का चयन करते है। जैसे कि अमेरिका में राज्याध्यक्ष का निर्वाचन करने के लिए जनता के द्वारा अस्थायी निर्वाचकगण के लिए मतदान करना अथवा भारत में राज्य के अध्यक्ष या उपाध्यक्ष अथवा राज्य सभा के सदस्यों के निर्वाचन हेतु

जनता के द्वारा मतदान करना, दोनों ही अप्रत्यक्ष मतदान प्रणाली के उदाहरण है।

- **खुला मतदान**- वह मत प्रणाली जिसमें मतदाता का मत एक सार्वजनिक मत होता है और उसके मत के बारे में सबकों मालूम रहता है। यह व्यवस्था 1901 ई. तक डेनमार्क में तथा 1920 ई. तक जर्मनी में विद्यमान रही है। व्यक्तिवादी एवं उदारवादी विचारक जे. एस. मिल व मॉन्टेस्क्यू सार्वजनिक मत या खुला मतदान व्यवस्था के प्रबल समर्थक रहे है। उन्होंने मतदान को सार्वजनिक दायित्व के रूप में देखा है।
- **गुप्त मतदान**- इसे व्यक्तिगत या निजी मतदान कहा जाता है जिसमें केवल मतदाता को ही मालूम होता है कि उसने मत का प्रयोग किसके पक्ष में किया है। बेंथम व हैरिग्टन गुप्त मतदान प्रणाली के समर्थक रहे है। वर्तमान में अधिकांश लोकतांत्रिक देशों में यही मतदान प्रणाली पायी जाती है।
- **प्रादेशिक प्रतिनिधित्व व्यवस्था**- इसमें निर्वाचन क्षेत्रों का निर्धारण भौगोलिक आधार पर किया जाता है। ऐसे निर्वाचन क्षेत्र से निर्वाचित प्रत्याशी उस क्षेत्र के सभी लोगों के सामान्य हितों का प्रतिनिधित्व करता है। प्रायः ऐसा माना जाता है कि किसी एक ही क्षेत्र में रहने वाले लोगों के सामान्य हित लगभग समान ही होते है। ऐसे निर्वाचन क्षेत्रों को कनाड़ा में रिडिग अमेरिका में डिस्ट्रिक्ट, ब्रिटेन व भारत में निर्वाचन क्षेत्र के नाम से जाना जाता है।
- **व्यावसायिक प्रतिनिधित्व**-वह प्रतिनिधित्व प्रणाली जिसमें निर्वाचित होने वाला प्रतिनिधि किसी व्यवसाय विशेष के लोगों के हितों का प्रतिनिधित्व करता है। जे. डी. एच. कोल इस प्रणाली के प्रमुख पक्षधर रहे है।
- **गैरीमेण्डरींग**- यह लोकतांत्रिक प्रणाली का अवगुण है जिसमें सताधारी दल के द्वारा अपने चुनावी लाभ के लिए निर्वाचन क्षेत्रों की सीमाओं का निर्धारण या परिसीमन किया जाता है। यह शब्द सर्वप्रथम 1812 ई. में उस समय चर्चा में आया जब मेसाचुएटस के गवर्नर गेरी ने एक निर्वाचन क्षेत्र का निर्धारण बहुत ही दीर्घ, संकीर्ण व विचित्र स्वरूप में किया जो कि सैलामेण्डर के एक पर्यवेक्षक को इसकी याद दिलाता था।
- **पार्क बैरल**-किसी प्रत्याशी के द्वारा राष्ट्रीय हितों की अपेक्षा स्थानीय हितों के लिए चुनाव लड़ना।
- **निर्वाचन क्षेत्र परिमाण**- यह किसी निर्वाचन क्षेत्र से निर्वाचित होने वाले प्रतिनिधियों की संख्या को अभिव्यक्त करता है। निर्वाचन परिमाण के सामान्तया दो प्रकार होते है। प्रथम एकल सदसय निर्वाचन क्षेत्र जहॉ पर किसी निर्वाचन क्षेत्र से केवल एक ही प्रतिनिधि का चुनाव होता है। दूसरा बहुल सदस्य निर्वाचन क्षेत्र अर्थात् जहॉ पर किसी एक ही निर्वाचन क्षेत्र से दो या अधिक प्रतिनिधियों का चुनाव होता है। सामान्यतया बहुलमत या पूर्ण बहुमत के लिए एकल सदस्य निर्वाचन क्षेत्रों की और आनुपातिक प्रतिनिधित्व के लिए बहुसदस्य निर्वाचन क्षेत्रों की आवश्यकता होती है।

- **मतपत्र संरचना**- यह मतदान मतपत्र पर प्रस्तुत किये जाने वाले चुनावी विकल्प के स्वरूप को दर्शाती है। चुनावी सूत्र-यह अभिव्यक्त करता है कि मतों को सीटों में कैसे रूपान्तरित किया जाता है।

प्रतिनिधित्व की प्रणालियां और उनके विविध प्रकारः

जनता अपने प्रतिनिधियों का निर्वाचन कैसे या किस तरह से करे? इसका निर्धारण करना किसी भी लोकतांत्रिक प्रणाली के लिए बहुत महत्वपूर्ण होता है। यह कहना कि कौनसी मतदान प्रणाली श्रेष्ठ या सर्वाधिक उपयुक्त है, इतना आसान नहीं है क्योंकि प्रत्येक निर्वाचन प्रणाली के अपने-अपने गुण व अवगुण होते है और वह काफी हद तक इस बात पर भी निर्भर करता है कि वह देश या उस देश की जनता उस मत प्रणाली से क्या आशा रखते है। अल्पसंख्यकों का प्रतिनिधित्व देने के लिए आनुपातिक निर्वाचन प्रणाली की आवश्यकता होती है। एक स्थिर सरकार का गठन करने के लिए सामान्य बहुमत प्रणाली को अपनाना होता है अथवा इसका मिश्रित स्वरूप भी अपनाया जा सकता है। यद्यपि विश्व में नियोजित निर्वाचन प्रणालियों के प्रकारों में विविधता है तथापि अधिकांश राजनीतिक वैज्ञानिकों ने निर्वाचन सूत्र के आधार पर इन्हें तीन मुख्य प्रकारों में विभाजित किया है जो कि मतों को सींटो में रूपान्तरित करने का कार्य करती है।

1.बहुमत निर्वाचन प्रणाली।
2.आनुपातिक निर्वाचन प्रणाली।
3.मिश्रित निर्वाचन प्रणाली।

1.बहुमत प्रणाली:

यह एक गैर आनुपातिक निर्वाचन प्रणाली है। प्रतिनिधित्व की इस निर्वाचन प्रणाली का उपयोग सामान्यतया एकल सदस्य निर्वाचन क्षेत्रों में किया जाता है। इस प्रणाली के अन्तर्गत बहुमत के दो प्रकार होते है एक सामान्य बहुमत और दूसरा पूर्ण बहुमत। सामान्य बहुमत के अन्तर्गत एकल सदस्य सामान्य बहुल मत प्रणाली को शामिल किया गया है जबकि पूर्ण बहुमत प्रणाली के अन्तर्गत द्वितीय मतदान प्रणाली एवं वैकल्पिक मतदान प्रणाली को शामिल किया गया है।

एकल सदस्य सामान्य बहुलमत प्रणालीः

इसे एकल सदस्य और सामान्य बहुल मतदान प्रणाली के नाम से जाना जाता है। इस प्रणाली में उस प्रत्याशी या दल को विजय प्राप्त होती है जिसको अन्य प्रत्येक की तुलना में अधिक मत प्राप्त होते है परन्तु यहां विजेता बहुमत का प्रतिनिधित्व नहीं करता है जैसे कि कोई प्रत्याशी पूर्ण बहुमत प्रणाली में प्राप्त करता है। इसमें प्रत्याशी को प्रत्येक अन्य प्रत्याशी की अपेक्षा व्यक्तिगत रूप से अधिक मत प्राप्त करने होते है। अतः इसे सकारात्मक बहुमत या बहुलमत प्रणाली कहा जाता है। अन्य शब्दों में यह भी कहा जा सकता है कि सभी बहुमत निर्वाचन प्रणालियों में विजयी होने वाले प्रत्याशी को पूर्ण बहुमत की आवश्यकता नहीं

होती है। एकल सदस्य निर्वाचन क्षेत्रों में प्रयुक्त यह प्रणाली विश्व की प्राचीनतम निर्वाचन प्रणालियों में से एक है जो कि आज विद्यमान लोकतांत्रिक व्यवस्थाओं में सर्वाधिक प्रचलित है। यह प्रणाली सर्वप्रथम संयुक्त ब्रिटेन में और इसके पूर्ववर्ती उपनिवेशों- कनाड़ा, भारत, नाईजीरिया, टोबेगो, संयुक्त राज्य अमेरिका इत्यादि में आरंभ हुई। इसे फर्स्ट-पास्ट-दि-पोस्ट या 'जीत उसकी, जो सबसे आगे' के नाम से भी जाना जाता है। यह निर्वाचन प्रणाली एक घुड़ दौड़ के समान होती है। यद्यपि विजयी प्रत्याशी को निश्चित रूप से कोई पद मिलेगा ऐसा नहीं है अपितु यह केवल इतना निश्चित करती है कि जीतने के लिए प्रत्याशी को अन्य उम्मीदवार की अपेक्षा एक मत की अधिक आवश्यकता होती है। जैसे कि भारत राज्य के राजस्थान विधानमण्डल के 2008 निर्वाचन में भाजपा प्रत्याशी को वैध मतों में 62216 मत तथा कांग्रेस प्रत्याशी को 62215 मत प्राप्त हुए। अतः केवल एक वोट के अन्तर से भाजपा का उम्मीदवार विजयी हो गया।

गुण व अवगुणः

गुणः

1. *शायद, बहुलमत प्रणाली की सर्वाधिक लोकप्रियता का कारण इसकी सरलता है। इसका मतलब है कि यह मतदाताओं को समझाने व समझने में बहुत आसान है।*
2. *इस प्रणाली का प्रशासन भी आसान है और इसी कारण से इसके संचालन में भी लागत कम आती है।*
3. *इसका दूसरा सबसे प्रमुख गुण यह भी है कि किसी एक निर्वाचन क्षेत्र से एक ही प्रतिनिधि सबके हितों का सही प्रतिनिधित्व करता है। वह निर्वाचन क्षेत्र के सभी लोगों के लिए उतरदायी होता है। दूसरे शब्दों में मतदाताओं के लिए निर्वाचन क्षेत्र की नीतियां व कार्यों हेतु जिम्मेदार प्रतिनिधि की आसानी से पहचान रहती है जो कि उसे आगामी चुनावों में जनता के प्रति जिम्मेदार बनाती है।*
4. *यह मतदाताओं के द्वारा प्रतिनिधि को जवाबदेय बनाए रखने में प्रभावी भूमिका का निर्वहन करती है।*
5. *इसमें मतदाता एवं प्रतिनिधि के बीच सीधा या प्रत्यक्ष सम्पर्क बना रहता है। इसके लक्षणों से यह स्पष्ट होता है कि क्यों अधिकांश राजनीतिक चिंतक सामान्य बहुलमत प्रणाली को उच्च स्तरीय निर्वाचन क्षेत्र सेवा और प्रतिनिधित्व तथा लोगों के बीच घनिष्ठता से जोड़ते है।*
6. *कुछ शोधार्थियों की मान्यता है कि यह प्रणाली एक दलीय सरकार के गठन से जुडी हुई निर्वाचन व्यवस्था है जो कि राजनीतिक स्थायित्व की संभावना को बढ़ाती है।*

अवगुणः

इन गुणों के साथ-साथ बहुलमत प्रणाली के कुछ दोष भी है।

1. *सर्वप्रथम तो यह कि विजेता प्रत्याशी के पास मतदाताओं का बहुमत नहीं होता है।*
2. *मतों के अनुपात में सीटों का रूपान्तरण नहीं होता है।*
3. *इसमें स्थानीय व राष्ट्रीय स्तर पर अनेक बार गैर आनुपातिक व अप्रत्याशित परिणाम दिखाई देते है। उदाहरण के लिए 1983 में यू. के. के विधायिका निर्वाचन में सोशियल डेमोक्रेटिक पार्टी व लिबरल पार्टी के गठबन्धन को 25.40 फीसदी मत प्राप्त हुए परन्तु सींटे केवल 3.5 फीसदी ही प्राप्त हुई। दूसरी तरफ लेबर पार्टी को 42.40 फीसदी वोट प्राप्त हुए जबकि उसे विधायिका के अन्तर्गत 61.10 फीसदी सींटे प्राप्त हुई। भारत में भी हर बार वे दल सता का संचालन करते है जिनके पास आम मतदाताओं का केवल 30 से 40 फीसदी मत होता है जबकि 60 से 70 फीसदी मत प्राप्त करने वाले राजनीतिक दल सता से दूर रहते है। अतः यह उच्चतम गैर आनुपातिक परिणामों को उत्पन्न करती है।*
4. *इसी के साथ यह प्रणाली प्रजातीयता समूह व क्षेत्रियता पर आधारित दलों को आगे बढाती है। भारत में मनसे, अकाली दल, सपा, बसपा इत्यादि विशेष पहचान पर आधारित राजनीतिक दल है। मलावी व केन्या में भी प्रजाति समूह राजनीतिक दल है। इसी के समानान्तर अमेरिका के दक्षिणी क्षेत्र में डेमोक्रेटिक पार्टी का प्रभावी होना भी है।*

बहुलमत प्रणाली ब्रिटेन, अमेरिका, भारत, कनाडा, जमैका, बोलिविया, बांग्लादेश, मारिशिस, इटली;1994में स्वीकृत द्ध इत्यादि में प्रचलित है।

पूर्ण बहुमत निर्वाचन प्रणालीः

यह सामान्य बहुमत न होकर पूर्ण बहुमत होता है जहां विजयी होने वाले प्रत्याशी को 50 फीसदी प्लस 1;50ः01द्ध बहुमत की आवश्यकता होती है। इस प्रणाली के सामान्यतया दो प्रकार है- **द्वितीय मतदान प्रणाली और वैकल्पिक मतदान प्रणाली।**

द्वितीय मतदान प्रणालीः

इसे दोहरे चरण वाली या द्वितीय मतदान प्रणाली सैकण्ड बैलेट सिस्टम या दुबारा निर्वाचन प्रणाली या सैकण्ड राउण्ड सिस्टम के नाम से जाना जाता है क्योंकि यदि प्रथम निर्वाचन में किसी प्रत्याशी को पूर्ण बहुमत प्राप्त नहीं होता है तो दूसरी बार निर्वाचन सम्पन्न कराया जाता है। यदि दो से अधिक बार निर्वाचन कराये जाते है तो इसे बहु मतदान प्रणाली या मल्टीपल राउण्ड सिस्टम के नाम से जाना जाता है अर्थात् यिद कोई प्रत्याशी निर्वाचन के पहले दौर में ही पूर्ण बहुमत प्राप्त कर लेता है तो वह विजयी हो जाता है और निर्वाचन के दूसरे दौर की आवश्यकता नहीं पड़ती है परन्तु यदि कोई भी प्रत्याशी पहले दौर के चुनाव में पूर्ण बहुमत प्राप्त नहीं करता है तो दो या तीन सप्ताह के बाद दुबारा निर्वाचन कराए जाते है। निर्वाचन का यह दूसरा राउण्ड कैसे संचालित होता है, यह एक देश से अन्य देश में काफी विविधता और विभिन्नता रखता है तथापि दल या प्रत्याशी जो अधिकांश मत प्राप्त कर लेता है, विजय हो जाता है। द्वितीय मतदान व्यवस्था को दूसरे दौर के निर्वाचन की महता

के कारण द्वितीय या रन ऑफ या डबल बैलट प्रणाली के नाम से भी जाना जाता है। यद्यपि द्वितीय मतदान प्रणाली विविधता रखती है तथापि इसे दो मुख्य प्रकारों में विभाजित किया जा सकता है अर्थात् पूर्ण बहुमत वाली द्वितीय मत प्रणाली और बहुमत व बहुलमत या सामान्य बहुमत वाली मत प्रणाली।

पूर्ण बहुमत द्वितीय मत प्रणाली:

अधिकांश द्वितीय मतदान प्रणालियों में एकल सदस्य निर्वाचन क्षेत्र होते है जिसमें मतदाता को भी एक ही मत देने का अवसर मिलता है। प्रत्येक मतदाता अपनी सर्वाधिक पसंद का प्रत्याशी चुन सकता है। कोई भी प्रत्याशी जो कि पहले ही दौर में पूर्ण बहुमत को प्राप्त कर लेता है, स्वतः ही निर्वाचित हो जाता है। यदि किसी भी प्रत्याशी को पूर्ण बहुमत प्राप्त नहीं होता है तो सर्वाधिक मत प्राप्त करने वाले केवल दो प्रत्याशियों के बीच दो या तीन सप्ताह के बाद दूसरे दौर की निर्वाचन प्रतियोगिता का आयोजन होता है। इस बार के निर्वाचन में भी जो प्रत्याशी पूर्ण बहुमत प्राप्त करता है विजय हो जाता है। जैसा कि इस बार के निर्वाचन में केवल दो ही प्रतियोगी शामिल रहते है अतः निर्वाचित होने वाले प्रत्याशी को पूर्ण बहुमत मिलने की संभावना बढ जाती है। यदि स्पष्ट रूप से दोनों के पास बराबर मत नहीं आए हो अर्थात् टाई की स्थिति न हो, पूर्ण बहुमत वाली इस द्वितीय मतदान प्रणाली के माध्यम से फ्रांस, माली व लैटिन अमेरिकी देशों में राष्ट्रपति का निर्वाचन किया जाता है। वास्तव में द्वितीय मतदान प्रणाली आज विश्वभर में राष्ट्रपति के निर्वाचन की सामान्य पद्धति है। पूर्ण बहुमत वाली द्वितीय मतदान प्रणाली आज अनेक देशों में विधामण्डल के चुनावों में में भी प्रयुक्त हो रही है जैसे कि कोमोरोस, सेण्ट्रल अफ्रीकन रिपब्लिक, हैती, क्रिगिस्तान और यूक्रेन इत्यादि।

हालांकि यह बहुत ही असाधारण स्थिति है कि इसका प्रयोग बहुसदस्य निर्वाचन क्षेत्र में हो परन्तु कई बार माली में दल केन्द्रित पूर्ण बहुमत वाली इस पद्धति को अपनाया जाता है। मतदाता किसी पसंद की एक पार्टी को एक मत देता है और यदि कोई दल पूर्ण बहुमत प्राप्त कर ले तो निर्वाचन क्षेत्र की सभी सींटे उस दल को प्राप्त हो जाती है। यदि किसी भी दल को पूर्ण बहुमत नहीं मिले तो टॉप के दो दलों के बीच दूसरा निर्वाचन होता है और इस बार अधिकांश वोट प्राप्त करने वाले दल को विजय मिल जाती है।

बहुलमत द्वितीय मतदान प्रणाली:

- लगभग सभी बहुमत या बहुलमत द्वितीय मतदान प्रणालियों में प्रत्याशियों के लिए एकल सदस्य निर्वाचन क्षेत्र और मतदाताओं के लिए केवल एक मत देने की व्यवस्था होती है। यद्यपि पूर्ण बहुमत वाली निर्वाचन प्रणाली की तरह ही इसमें भी पहले दौर के चुनाव में पूर्ण बहुमत अर्जित करने वाला प्रत्याशी विजय हो जाता है। अब अन्तर यह है

कि यदि कोई प्रत्याशी पूर्ण बहुमत प्राप्त नहीं कर पाता है तो कुछ पूर्ववर्ती मतदान शर्तों को पूरी करने वाले सभी प्रत्याशी दूसरे दौर के निर्वाचन में भाग लेते है। इस बार जो भी प्रत्याशी अधिकांश मत प्राप्त करता है उसे विजय प्राप्त हो जाती है। उसके पास भले ही पूर्ण बहुमत हो अथवा नहीं अर्थात् इस बार विजय होने के लिए प्रत्याशी को पूर्ण बहुमत की आवश्यकता नहीं होती है। अतः निर्वाचन के दूसरे दौर में केवल सामान्य बहुमत या बहुलमत की ही अपरिहार्यता होती है, पूर्ण बहुमत की नहीं।

- इस निर्वाचन मतदान प्रणाली का सबसे अच्छा उदाहरण फ्रांस में विधानमण्डल के चुनाव। फ्रांस के विधानमण्डल के निर्वाचन में दूसरे दौर का आयोजन होने पर वे सभी प्रत्याशी निर्वाचन के इस चरण में भागीदार हो सकते है जिन्होंने प्रथम चरण के चुनाव में उस क्षेत्र की निर्वाचन सूची में पंजीकृत मतदाताओं ;डाले गए वैध मतों का नहीं, की संख्या का 12.5 फीसदी से अधिक मत प्राप्त किया हो ;वे लगभग 17 फीसदी मत प्राप्त करने पर निर्वाचन के दूसरे दौर में भाग ले सकते है । व्यावहारिक रूप से फ्रांस की विधायिका के निर्वाचन के दूसरे राउण्ड में दो ही प्रत्याशी भाग लेते है यद्यपि भागीदारी के लिए दो से अधिक प्रत्याशी योग्य होते है। इसका कारण यह होता है कि दक्षिणपंथी अथवा वामपंथी दल इस बात के लिए सहमत हो जाते है कि कम लोकप्रिय योग्य उम्मीदवार को प्रतियोगिता से बाहर कर लेते है तथा अपने श्रेष्ठ प्रत्याशी के समर्थन में लग जाते है ताकि मतदाताओं का समर्थन अनेक प्रत्याशियों में विभाजित न हो और उनके प्रत्याशी के जीत की संभावनाएं बढ जाए। 2007 के फ्रांसीसी विधानमण्डल के निर्वाचन के दूसरे राउण्ड में दो के अलावा किसी भी प्रत्याशी ने भाग नहीं लिया था।
- द पेसिफिक आइसलैण्ड ऑफ किरीबाती एकमात्र ऐसा देश है जहां पर बहुसदस्य निर्वाचन क्षेत्रों में इस निर्वाचन प्रणाली को अपनाया गया है। मतदाता को सीटों के अनुरूप एक से अधिक मत देने का अवसर मिलता है यद्यपि वे इस अधिकार का उपयोग अपनी इच्छा के अनुसार करते है। यदि कोई प्रत्याशी पहले ही दौर में पूर्ण बहुमत प्राप्त कर लेता है तो विजय हो जाता है परन्तु यदि ऐसा नहीं हो तो दूसरे राउण्ड के चुनाव में यदि तीन सदस्य क्षेत्र हो तो टॉप पांच के बीच अथवा दो सदस्य क्षेत्र रहा हो तो टॉप चार प्रत्याशियों के बीच में चुनावी प्रतियोगिता सम्पन्न होती है। इस तरह से द्वितीय मतदान प्रणाली में काफी विविधताएं पायी जाती है। अर्जेंटीना, कोस्टोरिका, सियरा लियोन, निकारागुआ इत्यादि देशों के राष्ट्रपति निर्वाचन के दूसरे दौर में प्रथम चरण के केवल दो श्रेष्ठ प्रत्याशियों के बीच ही निर्वाचन प्रतियोगिता का आयोजन होता है।

गुण व अवगुणः

इस तरह से द्वितीय मतदान प्रणाली की सामान्य बहुमत प्रणाली से तुलना करने पर अनेकानेक गुण व अवगुण सामने आते है।

1. प्रथम तो यहां मतदाता के पास चुनाव के दो दौर होने के कारण मतदान के अधिक अवसर मिलते हैं।
2. इसी के साथ प्रत्याशी सामान्यतया पूर्ण बहुमत का प्रतिनिधित्व करता है यद्‌यपि इसके दूसरे स्वरूप में सामान्य बहुमत की ही आवश्यकता होती है।

अवगुणः

1. इस प्रणाली में सबसे बडा अवगुण यह है कि दोहरे चुनाव के कारण निर्वाचन की लागत बढ जाती है जिसका बोझ अन्तिम रूप से जनता को ही वहन करना पडता है और
2. दूसरे राउण्ड में मतदान का निर्गत भी कम हो जाता है।
3. सामान्य निर्वाचन प्रणाली की तरह से यह भी गैर आनुपातिकता के अवगुण से दूर नहीं है।
4. इस व्यवस्था ने कुछ पश्चिमी देशों में तथ्यात्मक उदाहरणों में गैर आनुपातिक प्रतिनिधित्व को व्यक्त किया है।
5. यह प्रणाली अल्पसंख्यकों के प्रतिनिधित्व को भी नकारती है। इस सम्बन्ध में गिनियर ने तर्क दिया है कि संयुक्त राज्य अमेरिका में जब मताधिकार का विस्तार अफ्रीकी अमेरिकन लोगों तक ;अफ्रीकी मूल के अमेरिकी निवासीद्‌ध कर दिया गया तो उन्हें प्रतिनिधित्व से बाहर रखने के लिए अनेक दक्षिणी राज्यों में पूर्ण बहुमत वाली द्‌वितीय मतदान व्यवस्था को अपनाया गया।

वैकल्पिक मतदान प्रणालीः

- यह भी पूर्ण बहुमत वाली निर्वाचन प्रणाली है। एकल सदस्य निर्वाचन क्षेत्र के अन्तर्गत विजयी होने वाला प्रत्याशी पूर्ण बहुमत का प्रतिनिधित्व करता है। यद्‌यपि यहां मतदाता सामान्य बहुमत वाली प्रणाली की तरह से प्रत्याशी को केवल एक ही मत नहीं देता है अपितु निर्वाचन प्रक्रिया में शामिल प्रत्याशियों को अपनी पसंद के अनुसार वरीयता या प्राथमिकता प्रदान करता है। अतः इसे वरीयता या अधिमान निर्वाचन प्रणाली भी कहा जाता है। मतदाता मतपत्र पर प्रत्याशियों को अंकगणितीय मानक या अंको के रूप में रैंक प्रदान करता है यद्‌यपि उसकी एक प्राथमिकता ही अन्तिम रूप से गणना में शामिल होती है। यदि काई प्रत्याशी प्रथम वरीयता की गणना में पूर्ण बहुमत प्राप्त कर लेता है तो वह विजयी हो जाता है परन्तु यदि कोई भी प्रत्याशी पुर्ण बहुमत प्राप्त नहीं कर पाता है तो प्रथम वरीयता के सबसे कम मत प्राप्त प्रत्याशी को पराजित घोषित ;प्रत्याशी को प्रतियोगिता से बाहर कर दिया जाता है परन्तु उसकी दूसरी प्राथमिकताएं गणना में शामिल होती हैद्‌ध कर दिया जाता है और उसके मतपत्र पर दी गई दूसरी प्राथमिकता के

मतों की गणना कर उन्हें शेष प्रत्याशियों में इस दूसरी वरीयता के अनुरूप पुनः वितरित किया जाता है।

- गणना का यह क्रम तब तक चलता रहेगा जब तक किसी एक प्रत्याशी को पुर्ण बहुमत नहीं मिल जाता है। पूर्ण व ऐच्छिक प्राथमिकता दोनों में यह बहुमत वाली अति सामान्य प्रणाली है जो कि अधिमान या वरीयता मतदान को शामिल करती है अतः इसे वैकल्पिक मतदान या अलटरनेटिव वोटिंग वाली प्रणाली भी कहा जाता है। किसी एक प्रत्याशी को पूर्ण बहुमत नहीं मिलने पर प्रतियागिता से बाहर प्रत्याशी के मतों का अन्य प्रत्याशियों में हस्तानांतरण कर दिया जाता है अतः इसे एकल हस्तानान्तरणीय मतदान प्रणाली या सिंगल ट्रांसफरेबल वोटिंग सिस्टम भी कहा जाता है। वैकल्पिक मतदान प्रणाली एकल सदस्य निर्वाचन क्षेत्र में प्रयुक्त प्रत्याशी केन्द्रित व्यवस्था है जहां मतदाता के लिए कम से कम एक प्रत्याशी को वरीयता क्रम में रैंक देने की आवश्यकता होती है। मतदाता को प्रत्याशी के नाम कें आगे संख्या के रूप में अपनी ससंद अर्थात् एक, दो, तीन या अन्य क्रम के रूप में ऐसे ही आगे कोई प्राथमिकता अंकित करनी होती है। मतदाता के द्वारा दी जाने वाली वरीयता सीमित होगी या प्रत्याशियों की संख्या के बराबर यह वरीयता प्रणाली के दो स्वरूपों पर निर्भर करता है।
- ऐसी वैकल्पिक मत प्रणाली जिसमें मतदाता सभी प्रत्याशियो को वरीयता क्रम प्रदान करता है उसे पूर्ण प्राथमिकता की वरीयता प्रणाली कहा जाता है। वह प्रणाली जहां पर मतदाता को केवल कुछ प्रत्याशियों को ही वरीयता देने का अवसर मिलता है उसे ऐच्छिक वरीयता प्रणाली कहा जाता है। वैकल्पिक मतदान प्रणाली को कभी-कभी तात्कालिक प्रणाली या इंस्टांट रन ऑफ वोटिंग सिस्टम भी कहा जाता है क्योंकि यह रन ऑफ चुनावों की एक सीरिज आयोजित करने के समान है जिसके प्रत्येक राउण्ड में न्यूनतम प्रथम वरीयता प्राप्त प्रत्याशी को बाहर कर दिया जाता है जब तक कि किसी एक को पूर्ण बहुमत नहीं मिल जाता है।
- वैकल्पिक मत प्रणाली आस्ट्रेलिया में सर्वाधिक लोकप्रिय व प्रचलित है। यहां पर इसके अनेक स्वरूपों को अनाया गया है। इस मत प्रणाली को सर्वप्रथम आस्ट्रेलिया के क्वीन्सलैण्ड में 1893 ई. में अपनाया गया और यह शीघ्र ही 1901 ई. के बाद इसके अन्य उपनिवेशों में विस्तृत हो गयी। 1919 से यह आस्ट्रेलिया के विधानमण्डल के जनप्रतिनिधि सदन के निर्वाचन में प्रयुक्त हो रही है। इसके अलावा भी यह प्रणाली आयरलैण्ड, भारत, अमेरिका, पापुआ न्युगिनी इत्यादि देशों में राष्ट्राध्यक्षों के निर्वाचनों में अपनायी गई है। यद्यपि इन देशों में इस प्रणाली को अपने-अपने हितों के अनुसार स्वीकार किया गया है। जैसे कि पापुआ न्युगिनी में 2007 के बाद विधनमण्डल निर्वाचन में ऐच्छिक वरीयता वैकल्पिक मत पद्धति को अपनाया गया है जहां मतदाता को केवल तीन प्राथमिकताएं देने का अवसर प्रदान किया गया है।

- आयरलैण्ड के संविधान के अनुच्छेद 12-23 में उल्लेख किया गया है कि राष्ट्रपति का चुनाव एकल हस्तान्तरणीय प्रणाली से होता है परन्तु आयरिश लोग तकनीकी रूप सक गलत है क्योंकि एकल हस्तान्तरणीय प्रणाली का उपयोग सही स्वरूप में केवल बहुल सदस्य निर्वाचन क्षेत्रों में होता है जबकि एकल सदस्य निर्वाचन क्षेत्रों में प्रयुक्त वरीयता मतदान पद्धति वैकल्पिक मतदान प्रणाली कहलाती है। ऐसी ही स्थिति भारत में राष्ट्रपति, उपराष्ट्रपति के निर्वाचन में बनी हुई है।

गुण व अवगुणः

यह निर्वाचन प्रणाली एकल सदस्य बहुलमत प्रणाली के अनेक गुणों को बनाये रखती है।

1. *मतदाता व प्रतिनिधि के बीच दूरी नहीं रहती है। अतः मतदाता नीति निर्माण व जन उतरदायित्व हेतु जिम्मेदार व्यक्ति को आसानी से पहचानता है।*
2. *मतदाता के पास प्राथमिकता देने के अवसर होते है।*
3. *मतदाता के वाट व्यर्थ नहीं होते है और वे आसानी से अन्य पसंद वाले उम्मीदवार की ओर हस्तानान्तरित हो जाते है।*
4. *इस प्रणाली का गुण यह भी है कि यह प्रत्याशियों व दलों को जीतने के लिए प्रोत्साहित करती हैं क्योंकि उन्हें मूल समर्थकों के अलावा दूसरी या अन्य प्राथमिकताओं की भी आवश्यकता पड़ सकती है।*
5. *दूसरी वरीयता निर्वाचन के अन्तिम परिणाम में प्रभावी भूमिका का निर्वहन करती है। अतः दलों या प्रत्याशियों को संकीर्ण व उग्रपंथी विषयों की अपेक्षा व्यापक मुद्दों को केन्द्र में रखना होता है।*
6. *इसके कुछ साक्ष्य हमें आस्ट्रेलिया में दिखायी पड़ते है जहां पर बड़े दलों के द्वारा छोटे दलों के साथ सामंजस्य स्थापित किया जाता है इसे प्राथमिकता स्वैपिंग कहा जाता है। बड़े हितों या मुद्दों पर आधारित होने के कारण इस प्रणाली को विभाजित या विविधतापूर्ण समाजों में भी स्वीकार किया जा रहा है जैसे कि बोस्निया, फिजी, पापुआ न्यूगिनी, दक्षिणी अफ्रीका और हर्जगोबिना इत्यादि।*

अवगुणः

अन्य प्रणालियों की तरह इस प्रणाली की भी अपनी कमियां है।

1. *पहला अवगुण यह है कि पूर्ण बहुमत के लिए न्यूनतम प्रथम वरीयता वाले प्रत्याशी को प्रतियोगिता से बाहर कर दिया जाता है, इस कारण अन्तिम विजेता के पास वास्तविक समर्थन नहीं होता है।*
2. *यह प्रणाली भी वास्तविक स्वरूप में बहुमत का प्रतिनिधित्व नहीं करती है और अनेक बार अप्रत्याशित परिणामों को जन्म देती है।*

3. *इसके अलावा गणना के अनेक दौर निर्वाचन लागत में वृद्धि करते है तथा साथ ही यहां कुशल चुनावी प्रशासन की आवश्यकता होती है।*

2.आनुपातिक प्रतिनिधित्व निर्वाचन प्रणाली:

यह तार्किक रूप से अधिक आनुपातिक या आनुपातिक प्रतिनिधित्व की निर्वाचन प्रणाली प्रोपोर्शनल रिप्रंजटेटिव इलेक्टोरल सिस्टम, जो कि निस्सन्देह रूप से दलों के द्वारा मतों की प्राप्ति व सीटों की प्राप्ति के बीच के अन्तर को समाप्त करती हैं। इस निर्वाचन पद्धति का उपयोग बहुसदस्य निर्वाचन क्षेत्रों में होता है अर्थात् एक ही निर्वाचन क्षेत्र से दो या अधिक प्रत्याशियों का चुनाव होता है। इस कारण से इसे अल्पसंख्यकों को सुनिश्चित प्रतिनिधित्व देने वाली प्रणाली कहा जाता है। यह प्रणाली प्रो. जे.एस. मिल की इस अवधारणा का समर्थन करती है कि मतों की गणना करना नहीं अपितु उनका वजन करना बेहतर होता है। इसीलिए यहां सीटों का वजन करके उनकी पूर्ति की जाती है। इस निर्वाचन प्रणाली में निर्वाचन कोटे का निर्धारण किया जाता है जो कि सबसे निर्णायक भूमिका का निर्वहन करता है। इसमें पूर्ण बहुमत की आवश्यकता नहीं होती है अपितु निर्धारित निर्वाचन कोटे के बराबर मत प्राप्ति की जरूरत होती है। इस प्रणाली के अन्तर्गत निर्वाचन कोटे के निर्धारण में तीन विचारकों का महत्वपूर्ण योगदान रहा है।

1. *सर्वप्रथम डेनमार्क के प्रसिद्ध गणितज्ञ, राजनीतिज्ञ एवं मंत्री जॉर्ज एण्डूरे के द्वारा इसका प्रतिपादन किया गया। 1855 ई. के डेनिश चुनावों में आन्द्रे फार्मूले को अपनाया गया। आन्द्रे के अनुसार निर्वाचन कोटे का सूत्र है- डाले गए वैध मतों को रिक्त सीटों की संख्या से विभाजित करना।*
2. *इस दिशा में दूसरा प्रयास ब्रिटिश विचारक थॉमस हेयर के द्वारा 1859 ई. में किया गया। इसे हेयर पद्धति या हेयर फॉमूले के नाम से भी जाना जाता है। हेयर कोटे ;सर्वप्रथम अमेरिकी राज्यों में प्रयुक्त हुआद्ध के अन्तर्गत डाले गए कुल वैध मतों की संख्या को कुल रिक्त सीटों की संख्या से विभाजित किया जाता हैं।*
3. *तीसरा कदम ब्रिटिश वकील हेनरी रिचमण्ड ड्रूप के द्वारा किया गया है। उसने अल्पसंखकों को प्रतिनिधित्व देने के लिए एक सर्वमान्य सूत्र का प्रतिपादन किया है। यहां निर्वाचन सूत्र होगा- डाले गए वैध मतों की कुल संख्या को कुल रिक्त सीटों की संख्या में एक का योगफल करके विभाजित करना तथा शेषफल में भी एक को जोड़ना।*

यह निर्वाचन प्रणाली उन क्षेत्रों में अधिक उपयोगी होती है जहाँ सामाजिक एवं सांस्कृतिक विविधताएं ;जाति, धर्म, वर्ग, नस्ल, प्रजाति की भिन्नता वाले अनेक समुदाय जो कि एक ही भौगोलिक क्षेत्र में निवास करते होद्ध विद्यमान होती है। यह प्रणाली निश्चित रूप से सब समुदायों को प्रतिनिधित्व प्रदान करने में सफल होने की क्षमता रखती है अथवा यह कहा जा सकता है कि इसमें सबकों प्रतिनिधित्व मिलने की संभावना बढ

जाती है। अतः हम आनुपातिक प्रतिनिधित्व प्रणाली को निर्वाचन कोटे पर आधारित एवं बहुसदस्य निर्वाचन क्षेत्र में प्रयुक्त प्रणाली के रूप में परिभाषित कर सकते है। इस रूप में नहीं कि वह आनुपातिक निर्गत की सापेक्ष क्षमता या असमक्षता उत्पन्न करते है या नहीं। यद्यपि आनुपातिक प्रणाली में महत्वपूर्ण भिन्नताएं होती है परन्तु इसे दो मुख्य प्रकारों में विभाजित किया जा सकता हैं- **प्रथम सूची प्रणाली व दूसरी एकल हस्तानान्तरणीय प्रणाली।**

सूची प्रणाली या दलीय सूची आनुपातिक प्रतिनिधित्व निर्वाचन प्रणाली:

- जैसा कि इस निर्वाचन प्रणाली के नाम से ही अभिव्यक्त होता है कि इसमें राजनीतिक दल प्रत्याशियों की अपेक्षा अधिक प्रभावी भूमिका का निर्वहन करते है। प्रत्येक राजनीतिक दल अपने प्रत्याशियों की सूची जारी करता है। बहुसदस्य निर्वाचन क्षेत्रों में राजनीतिक दल जिस अनुपात में मतदान प्राप्त करते है उनको उसी अनुपात में विधानमण्डल में सीटें प्राप्त होती है। मतदाता के पास मतदान के अनेक विकल्प होते है। यद्यपि दलीय प्रणाली में अनेक प्रकार की विभिन्नताएं भी होती है जैसे कि- निर्वाचन कोटे का निर्धारण करना, बहुसदस्य निर्वाचन क्षेत्र, दलीय सूची का स्वरूप या वरीयता प्रारूप एवं चुनावी तकनीकों का उपयोग करना इत्यादी। यह प्रणाली सामान्य रूप से अर्जेटीना, बेल्जियम, चिली, कोस्टारिका,साईप्रस,डेनमार्क, लाटविया, एस्टोनिया, यूनान, इजरायल, पोलैण्ड, नार्वे, नीदरलैण्ड, स्पेन, स्वीट्जरलैण्ड,स्वीडन और साउथ अफ्रीका इत्यादी देशों में प्रचलित है।
- दलीय आनुपातिक प्रतिनिधित्व प्रणाली में निर्वाचन कोटे का विशेष महत्व होता है। निर्वाचन सूत्र यह निर्धारित करता है कि मतों का सीटों में रूपान्तरण कैसे होता है? इसके माध्यम से कोटे और विभाज्य का निर्धारण होता है। निर्वाचन कोटा किसी निर्वाचन क्षेत्र में मतों की उस संख्या को बताता है जो दल को एक सीट की प्रत्याभूति देता है। निर्वाचन सूत्र वह पद्धति है जो कि निर्वाचन कोटे का निर्धारण करती है। आधुनिक दूनिया में पांच प्रकार के निर्वाचन कोटे प्रचलित है जिनमें हेयर, हैग्बेथ, इम्पिरियल, रेन्सफोर्सड और ड्रूप कोटा प्रमुख है। यहां पर stv कुल रिक्त सीटों व tvvc डाले गए वैध मतों की कुल संख्या को अभिव्यक्त करता है।

सूची प्रणाली के प्रकार:

राजनीतिक दलों के द्वारा प्रत्येक निर्वाचन क्षेत्र में अपने प्रत्याशियों की सूचियों का प्रकाशन किया जाता है परन्तु निर्वाचन के बाद सूची के कौनसे प्रत्याशी को सीट मिलेगी? यह इस बात पर निर्भर करता है कि दलीय सूची का कौनस प्रारूप स्वीकार किया गया है। सामान्यतया दलीय सूची के तीन प्रकार होते है।

बन्द सूची प्रणालीः

इसे गैर वरीयता या ब्लॉक्ड लिस्ट के नाम से भी जाना जाता है। इसमें निर्वाचित होने वाले

प्रत्याशियों का क्रम स्वयं दल के द्वारा निर्धारित किया जाता है। मतदाता किसी विशेष प्रत्याशी के पक्ष में वरीयता नहीं दे सकते है। सभी राजनीतिक दलप्राप्त मतों के अनुपात में सीटे प्राप्त करते है। सबके लिए एक सूत्र अपनाया जाता है। दल के द्वारा प्रस्तुत सूची में दिये गए प्रत्याशी क्रमागत रूप ;दल के द्वारा प्रत्याशियों का नाम वरीयता के अनुसार निर्धारित कर दिया जाता है।द्ध से निर्वाचित होते है। यदि किसी निर्वाचन क्षेत्र में ए दल को चार सीटे प्राप्त होती है तो दलीय सूची के प्रथम चार प्रत्याशी निर्वाचित होंगे, अन्य प्रत्याशी नहीं। यद्यपि कुछ मामलों में राजनीतिक दलों के द्वारा दलीय मतपत्र पर ही व्यक्तिगत उम्मीदवार और उसकी वरीयता स्थिति को प्रकाशित कर दिया जाता है परन्तु अधिकांशतया मतपत्रों पर ऐसी जानकारी नहीं होती है। वास्तव में दलीय सूची के अन्तर्गत केवल सूचनाओं को शामिल किया जाता है जैसे कि प्रत्याशी का नाम, चुनाव चिह्न, और संभवतया दल के नेता की तस्वीर क्योंकि मत मतदाता के द्वारा दल को दिये जाते है किसी प्रत्याशी को नहीं।

गुणः

1. बन्द सूची प्रणाली का सबसे विशेष गुण यह है कि दलों के द्वारा आसानी से सांस्कृतिक, भाषायी विविधता रखने वाले समुहों व अल्पसंख्यकों, महिलाओं को अपनी सूची में शामिल कर लिया जाता है जो कि अन्यथा ऐसा संभव नहीं होता है।

अवगुणः

1. इसका अवगुण यह है कि मतदाता अपनी पसंद के प्रत्याशी का चयन नहीं कर सकते है और कई बार कम लोकप्रिय प्रत्याशी भी विजय हो जाते है।
2. इसके अलावा दल का प्रत्याशियों पर अधिक नियंत्रण होता है क्योंकि दल ही सूची में प्रत्याशियों की वरीयता का निर्धारण करता है।

खुली सूची प्रणालीः

- इसे वरीयता सूची प्रणाली अथवा अनब्लॉक्ड लिस्ट के नाम से भी जाना जाता है। इसमें मतदाता न केवल दल को प्राथमिकता दे सकते है बल्कि वे दल के भीतर प्रत्याशी के पक्ष में भी वरीयता दे सकते है। अधिकांश खुली सूची प्रणालियों में मतदाता न केवल अपनी पसंद के प्रत्याशी का चुनाव करते है वरन् दल की तरह ही वरीयता प्रदान करते है। यदि व्यक्ति सामान्यतया दल को ही वोट देते है और पसंदीदा प्रत्याशी को इंगित नहीं करते है तो मतपत्र के प्रत्याशी के पसंदगा विकल्प का स्पष्टतया थोडा असर पडता है। यदि हम स्वीडन और यहाँ की खुली मतपत्र प्रणाली का अवलोकन करते है तो मालूम होता है कि 25 फीसदी मतदाता नियमित रूप से पार्टी सूची में व्यक्तिगत प्रत्याशियों का चयन

करते है इनमें से कई प्रत्याशी निर्वाचित नहीं होते थे तो दलीय सूची बन्द सूची हो गई।

- यह इस तरह भी हो सकता है कि मतदाता दल या प्रत्याशी में से एक को प्राथ्मिकता दे सकता है और विजयी सीटों का निर्धारण दोनों अर्थात् दलीय वोट और वरीयता वोट के आधार पर समान रूप से किया जाएगा। डेनमार्क में 1994 के विधानमण्डलीय निर्वाचन इसी आधार पर सम्पन्न हुए। ब्राजील, फिनलैण्ड व नीदरलैण्ड में मतदाता दलीय प्रत्याशी के लिए वोट डालता है।
- यदि हम विचार करे तो मालूम होता है कि बन्द प्रणाली की अपेक्षा खुली प्रणाली में लीडर या दल नेता का नियंत्रण प्रत्याशियों पर कम हो जाता है और इस कारण से पार्टी में आन्तरिक संघर्ष बढ़ जाता है परन्तु इसमें मतदाता की स्वतंत्रता भी बढ़ जाती है। यहाँ पर प्रत्याशी दल की अपेक्षा बड़ा हो जाता हैं जो कि ठीक वैसे ही है जैसे कि अमेरिका की सामान्य बहुमत प्रणाली में पार्क बैरल की व्यवस्था में होता है। कुछ शोधार्थियों की यह भी मान्यता है कि खुली मतदान प्रणाली के माध्यम से अल्पसंख्यकों को बाहर किया जा सकता है जैसे कि श्रीलंका में सिंहलों दलों के द्वारा तमिलों को हाशिए पर दखेलना।

स्वतंत्र सूची प्रणालीः

- यह प्रणाली खुली सूची प्रणाली की अपेक्षा अधिक उदार व लचीली होती है। ऐसा इसलिए है क्योंकि मतदाता बहुल मतदान का अवसर रखता है और वे या तो प्रत्याशी को किसी एक दलीय सूची से अथवा भिन्न-भ्न्नि दलों की सूची से जैसा की उसे अच्छा लगे, वोट दे सकता है। यहाँ विभिन्न दलों की सूचियों से प्रत्याशियों को मतदान करने की क्षमता के कारण इस विभाजित मतदान की व्यवस्था को मिश्रण प्रणाली के नाम से भी जाना जाता है। लक्जमबर्ग में मतदाता या तो एक दल के लिए मत दे सकता है और या दल के वरीयता क्रमांक को स्वीकार कर सकता है या वह अनेक व्यक्तिगत प्रत्याशियों को मत दे सकता है जितनी की रिक्त सीटे उपलब्ध हो, भले ही वे एक पार्टी के प्रत्याशी हों
- स्वीट्जरलैण्ड में भी इसी प्रणाली को अपनाया गया है परन्तु यहाँ पर मतदाता के पास एक अतिरिक्त मत वरीयता देने का अधिकार होता है अर्थात् मतदाता एक ही प्रत्याशी को एक से ज्यादा मत दे सकता है। एक ही उच्चतम पसंद के प्रत्याशी को एक से ज्यादा वोट देने की क्षमता के कारण इसे संचयी या समुह मतदान प्रणाली के नाम से भी जाना जाता है। इस तरह से सवीस मतदाताओं के पास अनेक विकल्प होते है।

एकल हस्तान्तरणीय मतदान प्रणालीः

- बहुसदस्य निर्वाचन क्षेत्रों में सांस्कृतिक, प्रजातीय व भाषायी विविधता रखने वाले अल्पसंख्यकों को सुनिश्चित आनुपातिक प्रतिनिधित्व उपलब्ध कराने वाली दूसरी महत्वपूर्ण पद्धति का नाम है एकल संक्रमणीय मतदान प्रणाली। यह बहुसदस्य निर्वाचन क्षेत्रों में प्रयुक्त प्रणाली है जिसमें मतदाता प्रत्याशियों को वरीयता या पसंदगी कम से कम एक प्रत्याशी को तो अवश्य ही प्रदान करता है। मतदाता सामान्यतया प्रत्याशियों के नामों के आगे के रिम्त स्थान पर अपने विकल्प 1,2,3,4 या कोई अन्य अंक का उल्लेख करता है क्योंकि मतदाता द्वारा मतपत्र पर दर्शायी या दी गई वरीयताओं का क्रम प्रत्याशियों के बीच प्रतियोगिता तय करता है।
- एसटीवी प्रणाली वरीयता मतदान प्रणाली का ही एक अन्य स्वरूप या प्रकार है जैसे कि वैकल्पिक मतदान प्रणाली, अपुपूरक प्रणाली व बोरड़ा गणना- ऐसी निर्वाचन प्रणाली है जो प्रत्याशी पर केन्द्रित होती है और इसमें निर्वाचन मूल्य की गणना की जाती है। एकल या बहुल क्षेत्रों में प्रयुक्त हो सकती है तथा सर्वाधिक मूल्य प्राप्त करने वाला प्रत्याशी विजय होता है।द्ध पद्धति या प्रणाली। एसटीवी प्रणाली के अन्तर्गत प्रत्याशी को विजयी होने के लिए वरीयता मतों का एक निर्धारित कोटा या न्यूनतम मत प्राप्त करना अपरिहार्य होता है। सर्वप्रथम पहली वरीयता के मतों की गणना की जाती है। इस चरण में जो भी प्रत्याशी निर्धारित मानक के अनुरूप या उससे अधिक प्रथम वरीयता के मत प्राप्त कर लेते है, वे स्वतः ही विजयी हो जाते है। यदि इस चरण में सभी रिक्त सीटे पूर्ण हो जाती है तो निर्वाचन प्रक्रिया यही समाप्त हो जाती है परन्तु यदि सीटे शेष रह जाती है या निर्धारित सीटों के समान प्रत्याशी निर्वाचित नहीं होते है। तब पहली प्राथमिकता के सबसे कम मत प्राप्त करने वाले प्रत्याशी को निर्वाचन प्रतियोगिता से बाहर कर देते है तथा बाहर किये गए प्रत्याशी के मतों को और इसी तरह से प्रथम प्राथमिकता के मतों से निर्वाचित प्रत्याशी के निर्धारित कोटे से अधिशेष या अतिरिक्त मतों को, शेष प्रत्याशियों में, मतपत्रों में उनकों दी गई दूसरी प्राथमिकता या पसंदगी के अनुसार पुनर्वितरित कया जाता है।
- यह प्रक्रिया अनवरत रूप से तब तक चलती रहती है जब तक की सभी रिक्त सीटे पूर्ण नहीं हो जाती हैं। यद्यपि मतों के संक्रमण की यह प्रणाली भिन्न-भिन्न देशों में विविधता का स्वरूप रखती है। इस प्रणाली में निर्वाचन कोटे का निर्धारण करते समय हेयर अथवा ड्रूप सूत्र का प्रयोग किया जाता है। अधिकांश देशों में ड्रूप फार्मूले का ही उपयोग किया जाता है। यह वाछंनीय स्वरूप में वैकल्पिक मत पद्धति के समान ही है परन्तु आधारभूत अन्तर यह है कि इसका उपयोग बहुसदस्य निर्वाचन क्षेत्रों में होता है और इसमें कम से कम मत व्यर्थ होते है। इस निर्वाचन प्रणाली का सर्वाधिक प्रयोग आस्ट्रेलिया, एस्टोनिया व आयरलैण्ड में किया गया है।
- एसटीवी प्रणाली में सीटों की पूर्ति की जाती है। जो भी प्रत्याशी प्रथम चरण में ही निर्धारित मानक के मत प्राप्त कर लेता है, वह स्वतः ही निर्वाचित हो जाता है। यहाँ पर

सी प्रत्याशी के पास पहली वरीयता के 12 मत है अतः वह गणना के प्रथम चरण में ही विजयी घोषित हो जाता है।

- अब गणना का दूसरा दौर शरू होता है जिसमें सर्वप्रथम विजयी प्रत्याशी के अधिशेष मतों को शेष प्रत्याशियों में वितरित किया जाता है। दूसरे चरण में कोई भी प्रत्याशी निर्वाचन कोटे के समान मत प्राप्त नहीं कर पाता है अतः अब तीसरे चरण में सबसे कम प्रथम प्राथमिकता प्राप्त करने वाले प्रत्याशी बी को प्रतियोगिता से बाहर कर दिया जाता है और उसके मत दूसरी प्राथमिकता के हिसाब से ए प्रत्याशी को मिल जाते है। ए प्रत्याशी कोटे को पूर्ण कर लेता है अतः इस बार वह दूसरी सीट के लिए निर्वाचित हो जाता है।
- इसके बाद भी एक सीट रिक्त रहती है अतः गणना का अगला दौर शुरू होता है परन्तु इसमें किसी भी प्रत्याशी के पास निर्धारित मत नहीं होते है, अतः फिर से न्यूनतम प्राथमिकता वाले प्रत्याशी ई को निष्कासित कर दिया जाता है जिसके बाद कोई अन्य प्रत्याशी शेष नहीं रहता है इसलिए निर्वाचन कोटे के समकक्ष मत रखने वाले प्रत्याशी डी को विजयी घोषित कर दिया जाता है। गणना के दौरान मतपत्रों के अलग-अलग बण्डल बनाए जाते है।

गुण-अवगुण:

गुण:

इस निर्वाचन प्रणाली का सबसे प्रमुख गुण यह है कि

1. बहुसदस्य निर्वाचन क्षेत्रों में प्रयुक्त बहुमत प्रणाली की अपेक्षा इसके द्वारा आनुपातिक परिणामों को उत्पन्न किया जाता हैं। यह प्रत्याशियों को धार्मिक एंव प्रजातीय सौहार्द के लिए प्रोत्साहित करती है।
2. यह प्रतिनिधियों व निर्वाचन क्षेत्र के लोगों के बीच मजबूत सम्बन्धों को विकसित करती है।

अवगुण:

इन गुणों के साथ कुछ अवगुणों का भी विवेचन किया गया हैं।

1. इस प्रणाली को दलों की आन्तरिक एकता और कमजोर संसक्ति के कारण माना गया है।
2. इसे बड़े निर्वाचन क्षेत्रों में लागू करना कठिन होता है।
3. इसकी गणना प्रक्रिया एक जटिल प्रणाली है।

- आनुपातिक प्रतिनिधित्व प्रणाली के सम्बन्ध में कुछ शोधार्थियों की मान्यता है कि इस प्रणाली में बहुमत की अन्य प्रणालियों की अपेक्षा मतों को सीटों में रूपान्तरित करने

की सुनिश्चित क्षमताएं होती है। यदि अन्य शब्दों में कहे तो यह अधिक आनुपातिक परिणामों को उत्पन्न करती है। इसका मतलब है कि आनुपातिक प्रणाली उस संभावना को नकार देती है जिसमें दल बडी संख्या में मत तो प्राप्त करते है परन्तु उन्हें विधानमण्डल में बहुत कम सीटे मिलती है। यहाँ छोटे दलों को भी आनुपातिक प्रतिनिधित्व मिल जाता है।

- कुछ शोधार्थियों का विचार है कि यह प्रणाली सबके लिए उपयुक्त होती है परन्तु प्रजातियता व धार्मिकता पर आधारित समाजों के लिए वाछंनीय होती है। सरकार में सभी समूहों को भागीदारी मिल जाती है। यद्यपि कुछ शोधार्थियों का मानना है कि इस कारण से एकता व अखण्डता को खतरा उत्पन्न होता है। इसकी अपेक्षा वे वैकल्पिक प्रणाली को श्रेष्ठ मानते है क्योंकि वह विविधतापूर्ण सांस्कृतिक समूह को प्रोत्सहान दिये बिना सोहार्द स्थापित करने में सहयोग करती है। ऐसा आनुपातिक प्रणाली में भी संभव हैं यदि विजातीय समूह भौगोलिक रूप से एक जगह केन्द्रित नहीं हो और जहाँ दल किसी एक जातिय या धार्मिक समूह से अपील करके बहुमत प्राप्त कर सकें।
- इस प्रणाली की आलोचना करते हुए कहा जाता है कि यह गठबन्धन वाली सरकारों के निर्माण को प्रोत्सहान देती है। गठबन्धन में राजनीतिक दलों व प्रत्याशियों को जिम्मेदार ठहराना कठिन हो जाता है। इसके अलावा यह क्षेत्रीय दलों को बहुत अधिम भूमिका प्रदान करती है जो कि कभी-कभी बहुत बडी समस्याओं को जन्म देते है। जैसे कि वाईमर गणराज्य में नाजी दल ने लोकतंत्र के सामने ही चुनौती उत्पन्न कर दी थी। इसी के साथ बडे दलों को सदैव छोटे दलों के सहयोग पर निर्भर रहना पड़ता है।

3.मिश्रित निर्वाचन प्रणालीः

दो प्रकार की निर्वाचन प्रणालियों के मिले जुले स्वरूप को ही मिश्रित प्रणाली के नाम से जाना जाता है। इसमें एक ही समय पर मतदाताओं के द्वारा दो भिन्न-भिन्न तरीकों से अपने प्रतिनितियों का चुनाव किया जाता है। यह सामान्यतया पूर्ण बहुमत और आनुपातिक प्रतिनिधित्व प्रणाली का समन्वित स्वरूप है। इसमें दोनों ही प्रणालियों के सूत्रों का भी प्रयोग किया जाता है। अनेक मिश्रित प्रणालियों में दोहरे स्तर के निर्वाचन पर अर्थात् एक स्तर पर बहुमत प्रणाली व दूसरे स्तर पर आनुपातिक प्रतिनिधित्व प्रणाली का उपयोग किया जाता है। इसकी कोई एक सर्वमान्य विशेषता नहीं है जिसे की सर्वत्र लागू किया जा सकें। अतः इसका स्वरूप भी अनेक राज्यों में अलग-अलग पाया जाता है। इस प्रणाली के सामान्य रूप से दो प्रकार पाये जाते है। **एक स्वतंत्र मिश्रित प्रणाली व दूसरी पराश्रित मिश्रित प्रणाली।**

स्वतंत्र मिश्रित प्रणालीः

ऐसी प्रणाली जो कि बहुमत व आनुपातिक प्रणाली के घटकों या कारकों से निर्मित होती है। दोनों प्रणालियाँ एक दूसरे से स्वतंत्र होकर कार्य करती है। इस प्रकार की मिश्रित प्रणाली को

समानान्तर मिश्रित प्रणाली के नाम से भी जाना जाता है। इस प्रणाली का सर्वाधिक प्रचलित स्वरूप दो स्तर के चुनावों ;राष्ट्रीय व क्षेत्रीय स्तरद्ध में दिखायी पड़ता है। एक स्तर पर बहुमत एवं दूसरे स्तर पर आनुपातिक प्रतिनिधित्व बनाए रखने के लिए ऐसा किया जाता है। इसी कारण से इसे अद्र्ध-आनुपातिक प्रणाली या मिश्रित सदस्य बहुमत प्रणाली के नाम से भी जाना जाता है। उदाहरण के लिए यूक्रेन में 1998 से 2002 के निर्वाचन में क्षेत्रीय स्तर पर एकल सदस्य बहुमत प्रणाली व के द्वारा और राष्ट्रीय स्तर पर एकल क्षेत्र के रूप में आनुपातिक प्रणाली को अपनाया गया। बहुमत व आनुपातिक दोनों के लिए सीटों का स्पष्ट व संतुलित विभाजन सब देशों में एक जैसा नहीं होता है। यूक्रेन व अण्डोरा में इन सीटों को बराबर अनुपात 50+१ में विभाजित किया गया है। कुछ देशों में जैसे कि दक्षिणी कोरिया के अन्तर्गत मतदाता के पास एक ही वोट होता है परन्तु वह इसका उपयोग निर्वाचन प्रणाली के दोनों ;बहुमत व आनुपातिकद्ध प्रणालियों के लिए करता है। इसके अलावा कुछ अन्य देशों में जैसे कि जापान व लिथुआनिया में मतदाता के पास दो मत होते है जिनका उपयोग वह एक बहुमत के लिए व दूसरा आनुपातिक प्रणाली के लिए करता है। इसके अलावा रूस व थाईलैण्ड में भी इसी प्रकार की प्रणाली का उपयोग किया जाता है। स्वतंत्र निर्वाचन प्रणाली के अन्तर्गत मतों को सीटों में किस तरह से रूपान्तरित किया जाता है। मेडागास्कर में इसका दुर्लभ स्वरूप अपनाया गया है जहाँ एकल निर्वाचन क्षेत्र में ही दोनों सूत्र अपनाए गए है। टर्की में भी 1987 व 1994 के बीच के निर्वाचन में आकस्मिक जनादेश के रूप में सबसे बडी पार्टी को पहली सीट सामान्य बहुमत प्रणाली के अन्तर्गत बोनस के रूप में दी गई तथा शेष सीटों का आंवटन आनुपातिक सूची प्रणाली से किया गया।

निर्भर मिश्रित प्रणालीः

- यह प्रणाली भी दो भिन्न निर्वाचन प्रणालियों का मिश्रण है। इसमें भी आनुपातिक एवं सामान्य बहुमत प्रणाली का उपयोग किया जाता है परन्तु इनका प्रयोग एक दूसरे से स्वतंत्र अथवा अलग-अलग स्तरों पर किया जाता है। इस प्रणाली में प्रयुक्त आनुपातिक सूत्र सीटों के आवंटन पर निर्भर करता है अथवा यह कहा जा सकता है कि मतों का परिणाम बहुमत प्रणाली के सूत्र पर निर्भर करता है। यहाँ आनुपातिक घटक का उपयोग किया जाता है ताकि निर्वाचन में बहुमत सूत्र से उत्पन्न किसी भी प्रकार के गैर आनुपातिक परिणाम की क्षतिपूर्ति की जा सकें।
- इस प्रकार की मिश्रित प्रणाली को कभी-कभी मिश्रित सदस्य आनुपातिक प्रणाली के नाम से भी जाना जाता है। यह दो भिन्न स्तरों पर प्रयुक्त होती है जैसे कि मैक्सिको में विधानमण्डल की 300 सीटों पर एकल सदस्य बहुलमत प्रणाली के द्वारा क्षेत्रीय स्तर पर सम्पन्न होते है जबकि अन्य 200 सीटों पर निर्वाचन आनुपातिक प्रतिनिधित्व की सूची प्रणाली के द्वारा 45 क्षेत्रों में किये जाते है। मैक्सिको के अलावा अल्बानिया, जर्मनी व न्यूजीलैण्ड में भी इसी प्रणाली को अपनाया गया है। जर्मनी व न्यूजीलैण्ड में सबसे

प्रभावी निर्भर मिश्रित प्रणाली है जिसमें मतदाताओं के पास दो मत होते है। वे अपना पहला मत अपने क्षेत्रीय प्रतिनिधि को देते है जबकि अपना दूसरा मत उच्च निर्वाचन स्तर या राष्ट्रीय स्तर पर दलीय सूची के माध्यम से प्रदान करते है। व्यक्ति अपना एक मत किसी एक दल के क्षेत्र के प्रतिनिधि को देते है और दूसरा मत अन्य पार्टी को दे सकते है यदि वे ऐसी इच्छा रखते है। इसे विभाजित टिकट मतदान भी कहा जाता है। इस प्रणाली में जहाँ एक वोट देने का प्रावधान होता है उसे क्षेत्रीय व राष्ट्रीय दोनों स्तरों पर गिना जाता है। यह पद्धति इटली व वेनेजुएला में प्रचलित है।

- अब यदि स्वतंत्र व निर्भर प्रणालियों की तुलना करे तो समान मत प्राप्त होने की स्थिति में भी निर्भर प्रणाली अधिक आनुपातिक दिखायी पड़ती है क्योंकि यहाँ दलीय सूची के द्वारा क्षतिपूर्ति का प्रावधान रखा गया है। इसमें सामान्य बहुमत प्रणाली के द्वारा उत्पन्न गैर आनुपातिक परिणामों को कम करने हेतु आनुपातिक प्रतिनिधित्व की सूची प्रणाली का उपयोग क्षतिपूर्ति के रूप में किया जाता है। इन दोनों की तुलनात्मक दशा को निम्न दो तथ्यों के आधार पर समझा जा सकता है अर्थात् प्रथम तो यह कि यदि किसी प्रत्याशी का नाम निर्वाचन क्षेत्र के प्रतियोगी प्रत्याशी के रूप में हो अथवा वह विजयी प्रत्याशी भी हो परन्तु दलीय सूची में उसका नाम नहीं हो अथवा बाहर कर दिया गया हो तो क्या होगा? दूसरा तथ्य यह कि मान लो कुछ दल क्षेत्रीय निर्वाचन में बहुत अधिक सीटे प्राप्त कर ले जो कि दलीय सूची के मतों के लिए ठीक नहीं हो तो क्या होगा?

इस प्रकार से हम अध्याय के अन्त में कह सकते है कि राजनीतिक दुनिया में लोगों के द्वारा अपने प्रतिनिधियों के निर्वाचन की अनेक प्रणालियाँ विद्यमान रही है। 2004 के आंकडों के अनुसार 177 देशों में सर्वाधिक प्रचलित निर्वाचन प्रणालियों में- आनुपातिक प्रतिनिधित्व प्रणाली 65 देशों में, एकल सदस्य सामान्य बहुमत प्रणाली 41 देशों में, द्वितीय मतदान प्रणाली 21 देशों में, स्वतंत्र मिश्रित प्रणाली 22 देशों में, निर्भर मिश्रित प्रणाली 11 देशों में, एकल संक्रमणीय मतदान प्रणाली 02 देशों में, ब्लॉक मतदान प्रणाली 01 देश में, एकल अहस्तान्तरणीय प्रणाली 03 देशों में, वैकल्पिक मतदान प्रणाली 03 देशों में, पार्टी ब्लॉक मत 01 देश में, ब्लॉक मतदान प्रणाली 07 देशों में प्रचलित रही है। अधिकांश राजनीतिक शोधार्थियों ने इनका वर्गीकरण तीन स्वरूपों में किया है परन्तु अनेक देशों में इन निर्वाचन प्रणालियों की विविधता पायी जाती है।

11

शासन के अंग व उनके कार्य (विधायिका, कार्यपालिका और न्यायपालिका)

फ्रांसीसी दार्शनिक चिंतक मोण्टेस्क्यू ने राज्य से व्यक्ति की सुरक्षा के खतरे के बात करते हुए अपना चिंतन व्यक्त किया कि यदि ईश्वरीय शासन होता या पाश्विक कानूनों का शासन होता तो किसी प्रकार की चिंता न थी परंतु शासन व्यक्तियों के द्वारा व्यक्तियों के उपर किया जाता है। इसलिए यह आवश्यक है कि शक्ति पर शक्ति का नियंत्रण स्थापित किया जाए और इसी कड़ी में शासन के तीन अगां का उल्लेख किया गया है। इन तीन अंगों को विधायिका, कार्यपालिका और न्यायपालिका के नाम से जाना जाता है।

विधायिका या विधानमण्डल

लोकतांत्रिक राज्यों के लिए यह कहा जा सकता है कि पूरी दूनिया की ऐसी शासन प्रणिलयों में कानून निर्माण का कार्य करने वाली संस्था को विधायिका या विधानमण्डल के नाम जाना जाता है। हर देश ने अपने विधानमण्डल का विशेष नाम रखा है जैसे कि ब्रिटेन व भारत में संसद, अमेरिका में कांग्रेस, जापान में डायट, स्विटजरलैण्ड में संघीय सभा के नाम से जाना जाता है। सामान्य रूप से यह कहा जा सकता है कि शासन व्यवस्था में विधायी कार्य करने वाला अंग ही विधायिका के नाम से जाना जाता है। पार्लियामेंट शब्द का मौलिक रूप में अर्थ है-बातचीत करना। पार्लियामेंट अंग्रेजी भाषा का शब्द है जिसकी उत्पत्ति फ्रांसीसी भाषा के शब्द पार्लर से अर्थात् बोलना अथवा विचार विमर्श करना तथा लैटिन शब्द पार्लियामेंट् से हुई है। गार्डनर के शब्दों में अनेक अंगों में से जिसके माध्यम से राज्य की इच्छा अभिव्यक्त होती है तथा लागू की जाती है। उसे विधायिका कहते है। विधायिका का स्थान निर्विवाद रूप

से सर्वोच्च है। सभी राज्यों में आपूर्ति के साधनों, सार्वजनिक पदों के सर्जन और नई सेवाओं की स्थापना के बारे में सरकार की शक्ति पर यह व्यापक नियंत्रण का प्रयोग करती है। इसके महत्व को निम्न बिन्दुओं के आधार पर स्पष्ट किया जा सकता हैः

विधानमंडल के कार्यः

विधानमंडल के कार्यकाल, संरचना व संगठन, कार्यों एवं शक्तियों के बारे में राजनीति विज्ञानियों में मतैक्य नहीं है तथापि प्रत्येक विधानमण्डल के कुछ आधारभूत कार्य निम्नलिखित होते हैंः

1.विधान या कानून निर्माण का कार्यः

देश की शासन व्यवस्था के संचालन हेतु आवश्यक विधान बनाना विधायिका का सबसे प्राथमिक कार्य होता है। कानून निर्माण की प्रक्रिया के माध्यम से विधायिका में विधेयक प्रस्तुत किये जाते है, उस पर वाद-विवाद, मतदान होता है और अंततः वह बिल कानून का रूप धारण करता है।

2.प्रशासन पर नियंत्रण संबंधी कार्यः

लोकतांत्रिक प्रक्रिया में राजनीतिक कार्यपालिका के अधीन स्थाई कार्यपालिका को कार्य करना होता है परंतु सदन के भीतर राजनीतिक कार्यपालिका को ही जवाब देना पड़ता है। राजनीतिक कार्यपालिका ही जनता के प्रति उत्तरदाई होती है। इस उत्तरदायित्व का निर्वहन करने के लिए विधायिका के द्वारा कार्यपालिका अथवा स्थाई कार्यपालिका अथवा प्रशासन पर पूर्ण नियंत्रण रखा जाता है। राजनीतिक कार्यपालिका को मंत्रिपरिषद के नाम से जाना जाता है।

3.निर्वाचन का कार्यः

अनेक देशों में विधायिका के द्वारा निर्वाचन संबंधी कार्यों का निष्पादन भी किया जाता है। यह संसदीय और अध्यक्षात्मक दोनों ही प्रणाली वाली राजनीतिक व्यवस्थाओं में देखा जा सकता है। अमेरिका के राष्ट्रपति चुनाव में कोई प्रत्याशी पूर्ण बहुमत प्राप्त नहीं करता है तो अमेरिका के प्रतिनिधि सदन को राष्ट्रपति का निर्वाचन करने का अधिकार है। भारत में संसद राष्ट्रपति का चुनाव करती है। साम्यवादी चीन की जनप्रतिनिधियों की कांग्रेस अपने सदस्य में श्री राष्ट्रपति का चुनाव करते हैं तथा अमेरिका की सीनेट राष्ट्रपति द्वारा नियुक्त मंत्रियों की नियुक्ति की पुष्टि करती है। इसके अलावा कई देशों में विधायिका सदन के पीठासीन अधिकारियों का भी चुनाव करती है।

4.वित्तीय कार्यों का निष्पादनः

विधायिका के द्वारा विधान निर्माण के अलावा वित्त संबंधी कार्यों का निर्वहन भी किया जाता है। शासन की आय तथा व्यय का वार्षिक विवरण अर्थात् बजट वितमंत्री द्वारा ही तैयार किया जाता है परंतु इस बजट को पारित करने का कार्य विधायिका करती है। विधायिका के द्वारा पूरक बजट भी पारित किया जा सकता है।

5.न्यायिक संबंधी कार्यः

विधायक का कुछ न्याय कार्यों का भी निर्वहन करती है ब्रिटेन की संसद विशेषाधिकार के मामले पर चर्चा कर सकती है तथा उसके उपरांत उसी व्यक्ति अथवा व्यक्तियों को चेतावनी दे सकती है यहां तक कि कारावास का दंड भी दे सकती है ब्रिटेन तथा भारत की संसद तथा संयुक्त राज्य अमेरिका की कांग्रेस सदन के किसी सदस्य को किसी गंभीर आरोप के आधार पर सदस्यता के अयोग्य घोषित करने का निर्णय ले सकती है सदन अपनी कार्य प्रक्रिया का स्वामी है तथा इसका रानी है उस सदस्य के विरुद्ध कार्रवाई कर सकता है जितने सदस्य की मानहानि की हो विधायक का राष्ट्रपति अथवा राज्य के उच्च अधिकारियों के आयोजन संबंधी कार्य करती संस्था भी होती है।

इस प्रकार दुनियाभर में विधायकों के संदर्भ में अलग-अलग स्वरूप होते हैं फिर भी हम यह कह सकते हैं कि विधायक आनी संदेह है प्रत्येक राज्य में विधान संबंधी कार्यों का आधारभूत रूप से निर्वहन करती है यद्यपि उसकी कार्यों की संख्या प्रकृति उसके संगठन संरचना कार्यकाल इत्यादि में विभिन्न कथाएं अवश्य पाई जाती हैं जिसका मुख्य कारण उस देश की राजनीतिक प्रणाली की प्रकृति में निहित होता है।

एक सदनीय विधायिका व उसके गुण-अवगुणः

1. *कुछ देशों में जैसे कि चीन, में केवल एक सदनीय विधायिका होती है। एक सदनीय विधायिका के अपने गुण व अवगुण होते है।*
2. *एक सदनीय विधायिका के लिए कार्य करना सरल होता है।*
3. *दूसरा सदन के रूप में कोई बाधा नहीं होती है।*
4. *प्रशासनिक कुशलता को बढ़ावा मिलता है।*
5. *एकसदनीय विधायिका से वितीय मितव्ययता को प्रोत्सहान मिलता है।*
6. *एक सदनीय विधायिका विलंबन प्रक्रिया को दुरस्त करती है।*

अवगुणः

1. *यह लोकतांत्रिक प्रक्रिया के विरूद्ध होती है।*
2. *विधान निर्माण में पर्याप्त बहस का समय नहीं मिलता है।*
3. *यह एक दलीय प्रणाली को प्रात्सहान देती है।*
4. *सताधारी पक्ष पर दूसरे सदन के रूप में कोई नियंत्रण नहीं होता है।*

द्विसदनीय विधायिका व उसके गुण-अवगुणः

कुछ देशों में विधायिका के दो सदन होते है जिसे द्वि-सदनीय विधायिका के नाम से जाना जाता है। दो सदनो वाली विधायिका के भी अपने गुण-दोष होते है।

गुणः

1. *यह लोकतांत्रिक प्रक्रिया को प्रोत्साहित करती है।*
2. *विधान निर्माण के लिए पर्याप्त बहस का समय मिल जाता है।*
3. *यदि एक सदन से कोई त्रुटि हो तो दूसरा सदन परीक्षक की भूमिका निभाता है।*
4. *संघ या राष्ट्र की इकाईयों को भी राष्ट्रीय विधान में भाग लेने का अवसर मिल जाता है।*
5. *दूसरा सदन सताधारी के लिए सहयोग का कार्य करता है।*

अवगुणः

1. *दोनों सदनों के बीच गतिरोध उत्पन्न होता है।*
2. *विधान निर्माण में अनावश्यक विलंब होता है।*
3. *चर्चा और परिचर्चा के नाम पर दलीय बहस होती है।*
4. *विरोधी विचारधारा के प्रभाव के कारण विधायिका की बैठके बहुत कम बुलायी जाती है।*
5. *वित का अपव्यय होता है।*

विधायिका के पतन संबंधी विवादः

उपरोक्त विवेचन के पश्चात हमारे सामने अनेक सवाल उदित होते है कि क्या आधुनिक दुनिया में राज्य की बदलती हुई जटिल प्रकृति के बोझ के कारण विधायिका का महत्व क्षीण होता जा रहा है? क्या कार्यपालिका, विधायिका की तुलना में दिनों-दिन अधिक शक्तिशाली होती जा रही है? क्या अब विधानमंडल का दुनिया भर में पतन हो रहा है? इन सवालों के जवाब निम्न बिंदुओं के आधार पर खोजे जा सकते हैः

- मूल रूप से विधायिका की सत्ता के क्षेत्र को पूरी दुनिया भर में कार्यपालिका के द्वारा हड़प लिया गया है अथवा सीमित कर दिया गया है। जहां शासन का संसदीय स्वरूप होता है, उन देशों में विधायिका विधायी विषयों पर कम ध्यान दे रही है। विधायिका की बैठके नियमित रूप से कम होने लगी है। संसदीय प्रणाली वाले देशों में विधायिका आम बहस की तुलना में दूसरे रास्ते को अपनाने लगी है। संसद के सत्र बुलाने, सत्र का अंत करने, लोकप्रिय सदन को भंग करने, राजा अध्यक्ष द्वारा दिए जाने वाले उद्घाटन भाषण का प्रारूप लिखने, सदन की कार्य सूची तैयार करने, किसी प्रस्तुत विधेयक अथवा बजट को प्रस्तुत करने तथा अनुदान मांग प्रस्तुत करने आदि महत्वपूर्ण मामलों के बारे में मंत्रिमंडल ही निर्णायक निर्णय लेता है।
- राष्ट्रपति शासन प्रणाली वाले देशों में कार्यपालिका का अध्यक्ष जो कि खुद राष्ट्राध्यक्ष होता है विधायिका द्वारा पारित किसी विधेयक पर वीटो का प्रयोग कर सकता है तथा

ऐसा बहुत कम होता है कि विधेयक को विशेष बहुमत द्वारा पुनः पारित कर राष्ट्रपति की वीटो शक्ति को निरस्त कर दिया जाए। इसके अतिरिक्त विधायिका में राष्ट्रपति के मित्र होते हैं जिनकी सहायता से विधान के कार्य को प्रभावित कर सकता है। इस प्रकार हम कह सकते हैं कि विधायिका, कार्यपालिका के हाथों की कठपुतली बनकर रह गई है।

- विधायिका के पतन का दूसरा मुख्य कारण न्यायपालिका की बढती भूमिका है जिसने विधायिका की सत्ता को क्षीण कर दिया है। विशेष रूप से उन देशों में जहां न्यायिक समीक्षा की व्यवस्था होती है। जैसे कि भारत और अमेरिका। ऐसे देशों में विधायिका कि द्वारा पारित कानूनों और कार्यपालिका द्वारा दिए गए आदेशों को न्यायपालिका के द्वारा सविधान के विरुद्ध अवैध घोषित किया जा सकता है।
- विधायिका के पतन का तीसरा आधार यह है कि विधायिका की सत्ता को दुर्बल बनाने में राजनीति की प्रभावी भूमिका रही है। संसद के सदस्यों को सरकारी नीति का अनुकरण करना पड़ता है। सदस्यों को कठपुतलियों की तरह रखने के लिए सचेतक के नियंत्रण की व्यवस्था होती है। नेतागण राजनीतिक स्वामियों की तरह व्यवहार करते हैं तथा सदस्य को चाहे अनचाहे रूप में दल के नेताओं के आदेशों के सम्मुख समर्पण करना पड़ता है। दल के आदेश के विरुद्ध सदन में कुछ करने पर उस सदस्य के विरुद्ध अनुशासनिक कार्यवाही की जा सकती है। उसे दल से निलंबित तथा निष्कासित किया जा सकता है। अमेरिका में ऐसी अवस्था नहीं है परंतु वहां पर दबाव कार्य समूह के द्वारा विधायकों की स्वायत्तता को काफी सीमा तक कुचल दिया गया है। वे लॉबिंग के रूप में बहुत हद तक विधायिका को शक्तियों को सीमित कर देते हैं।

इन उपरोक्त आधारों पर यह कहा जा रहा है कि विधायिका का पतन हो गया है। विधायिका के अधिकांश कार्य कार्यपालिका के द्वारा ही किए जा रहे हैं। अतः क्यों नहीं विधायिका का अंत कर दिया जाए? यद्यपि विधायिका का अंत करना उचित और संभव नहीं है फिर भी यह कहा जा सकता है कि कार्यों की जटिल प्रकृति और राजनीतिक व्यवस्था के बदलते स्वरूप के कारण ही विधायिका के कार्यों में कमी आई है परंतु जहां तक सवाल संसदीय व्यवस्था वाले देशों का है तो इस बात से कोई विशेष फर्क नहीं पड़ता है कि विधायिका के द्वारा अथवा कार्यपालिका के द्वारा कार्य किए जा रहे हैं क्योंकि वहां कार्यपालिका का गठन विधायिका में से ही होता है।

कार्यपालिका

कार्यपालिका जैसा कि नाम से ही अभिव्यक्त होता है कि कार्य करने वाला निकाय। विधायिका के द्वारा निर्मित विधान या कानून को व्यावहारिक स्वरूप देने वाली इकाई को कार्यपालिका के नाम से जाना जाता है। यह शासन की क्षेत्रीय इकाई है जो कि कानून को लागू करने का कार्य प्रमुख रूप से करती है। यदि अतीत में कार्यपालिका के वर्चस्व में विश्वास था तो अब इसके नेतृत्व में आस्था हो गई है। इसका यही कारण है कि राजनीति प्रक्रिया जनता के दबाव तथा प्रभावशाली नेतृत्व की सूक्ष्म अंतःक्रिया बन गई है। राज्य की गतिविधि के प्रत्येक क्षेत्र में व्यापक विस्तार ने कार्यपालिका को सरकार का महत्वपूर्ण अंग बना दिया है। कार्यपालिका के व्यापक और संकुचित दो पक्ष होते हैं। व्यापक या समग्र दृष्टिकोण में कार्यपालिका समस्त शासकीय व्यवस्था को व्यक्त करती है जबकि प्रबंधकीय दृष्टिकोण से यह केवल निर्णय निर्माण प्रक्रिया में नियोजित व्यक्तियों को ही शामिल किया जाता है। इस कार्यपालिका का स्वरूप दूनियाभर की राजनीतिक प्रणालियों में निहित होता है। शासन का रूप भले ही राजतंत्र रहा हो या लोकतंत्र, उसमें सदैव कार्यपालिका का महत्व रहा है। यह सीधे रूप से स्थायी कार्यपालिका अर्थात् नौकरशाही को व्यक्त करती है।

कार्यपालिका की प्रमुख प्रकारः

सामान्य रूप से कार्यपालिका का अर्थ नौकरशाही से लिया जाता है लेकिन आधुनिक राज्यों के उदय के बाद से कार्यपालिका के अनेकानेक स्वरूप विद्यमान है। लोकतांत्रिक देशों में कार्यपालिका राजनीतिक व स्थायी स्वरूप वाली होती है। शासन के संदर्भ में जिस कार्यपालिका को सरकार के अभिन्न अंग के रूप में व्यक्त किया जाता है। उसके गठन व संरचना को लेकर राजनीतिक दूनिया में विविधता पायी जाती है। जैसे कि नाममात्र की कार्यपालिका, वास्तविक कार्यपालिका, एकल कार्यपालिका, सामुहिक या बहुल कार्यपालिका, वंशानुगत कार्यपालिका, निर्वाचित कार्यपालिका, मनोनीत कार्यपालिका, राजनीतिक कार्यपालिका और गैर राजनीतिक कार्यपालिका, प्रजातांत्रिक कार्यपालिका, सर्वाधिकारवादी कार्यपालिका इत्यादि।

नाममात्र की तथा वास्तविक कार्यपालिका में अंतर उसी अवस्था में पाया जाता है जहां शासन का संसदीय स्वरूप हो, राजा अथवा कोई निर्वाचित प्रमुख जैसे की राष्ट्रपति वैधानिक रूप में नाममात्र का प्रमुख होता है और उसकी तरफ से शक्तियों का वास्तविक प्रयोग करने वाली सता प्रधानमंत्री व उसकी मंत्रिपरिषद होती है। इसके अतिरिक्त नाममात्र की कार्यपालिका दो प्रकार की हो सकती है। यदि राज्य प्रमुख अपना पद वंशानुगत या उत्तराधिकार के नियम द्वारा प्राप्त करता है तो उसे वंशानुगत कार्यपालिका कहते हैं तथा निश्चित अवधि के लिए प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष निर्वाचन की प्रक्रिया के द्वारा प्राप्त करता है तो उसे निर्वाचित कार्यपालिका कहा जाता है। वास्तविक कार्यपालिका के भी दो प्रकार होते है, एकल कार्यपालिका और बहुल कार्यपालिका। एकल कार्यपालिका वह होती है जिसका अध्यक्ष एक नेता होता है और जिसकी शक्तियों में दूसरों का कोई भाग नहीं होता है। राष्ट्रपति और प्रधानमंत्री का नेतृत्व इसी कोटि से संबंधित है परंतु बहुल कार्यपालिका की

स्थिति इससे भिन्न है जहां मंत्रियों के समूह को निर्देश देने का अधिकार होता है। आधुनिक विश्व में इसका एकमात्र उदाहरण स्विजरलैंड में उपलब्ध है, जहां 7 राष्ट्रपतियों अथवा मंत्रियों को शासन की शक्तियां प्राप्त है जिनका चुनाव राष्ट्रीय संसद 4 वर्ष की निश्चित अवधि के लिए करती है किंतु कुछ औपचारिक कार्यों को करने के लिए इन मंत्रियों में से एक को औपचारिक रूप से 1 वर्ष के लिए महासंघ का राष्ट्रपति बना दिया जाता है यह पद संघीय परिषद के सातों अध्यक्षों को बारी-बारी से प्राप्त होता है। अतः सभी सातों अध्यक्ष बराबर शक्तियां रखते हैं, इसे बहुल कार्यपालिका कहा जाता है।

कार्यपालिका के कार्यः

कार्यपालिका के द्वारा कौन-कौन से कार्यों का निष्पादन किया जाता है। यह भी किसी देश की राजनीतिक प्रणाली की प्रकृति और स्वरूप निर्भर करता है तथापि कुछ आधारभूत कार्य जो सभी प्रकार की कार्यपालिकाओं द्वारा संपादित किए जाते हैं। इनका विवरण निम्न प्रकार से किया जा सकता हैः

1.आंतरिक प्रशासन के संचालन का कार्यः

किसी भी देश में कार्यपालिका कानून और व्यवस्था को बनाए रखने के उत्तरदायित्व का निर्वहन करती है। सेना, पुलिस, अर्धसैनिक बलों का विशाल एक निकाय होता है। ये सब कर्मचारीगण पूरे देश की शासन व्यवस्था का संचालन करते हैं। यह प्रशासन विधायिका, कार्यपालिका और न्यायपालिका के अधीन भी स्वयं का प्रशासन होता है जिसे विधायी प्रशासन, कार्यकारी प्रशासन और न्यायिक प्रशासन।

2.विदेश संबंधों तथा सुरक्षा संबंधी कार्यः

विश्व समुदाय से अलग रहकर कोई राज्य जीवित नहीं रह सकता है। राज्य को कभी भी युद्ध और आंतरिक संघर्ष का सामना करना पड़ सकता है। इसके लिए विदेश सेवा के कार्यकारी और सुरक्षा सेवा के कार्यकारी कानून एवं व्यवस्था को बनाए रखने का और देश के नागरिकों की सुरक्षा के दायित्व का निर्वहन करते है। यह काम करने के लिए कार्यपालिका के पास कूटनीतिज्ञों, राजदूतों, सैन्य कार्मिकों की विशाल सेना होती है। ये कार्मिक विदेशों में जाते हैं, विदेश संबंधों में संतुलन की स्थिति को बनाए रखते हैं। राज्य अध्यक्ष विदेशी कूटनीतिज्ञों के परिचय पत्र स्वीकार करता है। वह राष्ट्र हित की रक्षा और समाधान के लिए शांति, मैत्री, संधि प्रपत्रों पर हस्ताक्षर करता है। कार्यपालिका के अधिकारी राज्य की विदेश नीति का निर्धारण करते हैं तथा प्रशिक्षित विशेषज्ञ कूटनीति को क्रियान्वित करते है। राज्य के कार्यकारी विभागों के प्रमुख विदेशों में भाग लेने वाले अपने प्रतिनिधियों को उपदेश देते हैं। आपातकाल की स्थिति में कार्यपालिका निर्णायक भूमिका का निर्वहन करती है।

3.कानून लागू करने के साथ ही कानून निर्माण का कार्यः

कानून का निर्माण करना केवल विधायिका का ही कार्य नहीं होता है अपितु कार्यपालिका के द्वारा भी कानून निर्माण का कार्य किया जाता है। राज्य का अध्यक्ष अध्यादेश जारी

करता है जिसमें कानून की शक्ति होती है। विधायिका के विकल्प के रूप में कार्यपालिका कानून निर्माण के कार्य को अंजाम देती है। संसदीय प्रणाली में तो कार्यपालिका ही कानून निर्माणकारी निकाय बन गया है। इसके अतिरिक्त समय समय पर कार्यकारी विभाग पत्र परिपत्र अधिसूचना भी जारी करते हैं। कार्यपालिका के पास विधायिका से पारित अधिनियमां को स्वीकृति या पुनर्विचार या अस्वीकृति का प्राधिकार होता है। राज्य की संपूर्ण नौकरशाही मशीनरी का वह मुख्य कार्यपालक होता है। संसदीय प्रणाली में प्रधानमंत्री राजनीतिक कार्यपालिका के मुखिया के रूप मैं व राष्ट्रपति स्थायी कार्यपालिका के मुखिया के रूप में इस कार्य का निर्वहन करते है।

4.वित्त संबंधी कार्यः

कार्यपालिका राष्ट्र के कोष पर नियंत्रण रखती है। यह शासन के वार्षिक विवरण जिसे बजट कहा जाता है। उसे तैयार करती है। इसे कार्यपालिका के द्वारा ही विधायिका में प्रस्तुत किया जाता है और फिर उसे राजस्व तथा व्यय से संबंधित विधेयकों के रूप में पारित किया जाता। शासन की संसदीय प्रणाली वाले देश में विधायक सदस्य बजट के राजस्व के पक्ष में कोई वृद्धि नहीं कर सकते क्योंकि इस प्रकार का प्रस्ताव राज्य अध्यक्ष की पूर्व अनुमति से प्रस्तुत किया जा सकता है। सभी देशों में वित के संचालन की भूमिका कार्यपालिका निभाती है।

5.न्यायिक कार्यः

कार्यपालिका न्यायिक प्रक्रिया में किसी प्रकार की त्रुटि की संभावना को ध्यान में रखते हुए कई मामलों में अपराधी की सजा में कटौती अथवा क्षमादान की शक्तियों का प्रयोग करती है। इसके अलावा न्यायिक भूमिका वाले कार्यो को प्रशासनिक अधिकरण के रूप में देखा जा सकता है।

कार्यपालिका की शक्तियां में अभिवृद्धि या बढ़ता महत्वः

जहां एक तरफ विधायिका के पतन की बात कही गई है, ठीक उसी के समानांतर कार्यपालिका के महत्व में अभिवृद्धि की बात भी लागू होती है। आखिरकार कौन से कारण हैं जिन्होंने कार्यपालिका के महत्व को दिनों दिन और अधिक बढ़ा दिया है। इनमें प्रमुख निम्न हैः

1. *प्रतिनिधियों में जनभावना की कमी, समय नहीं देने, बहस से दूर रहने की वजह से कार्यपालिका के कार्य बढते जा रहे है।*
2. *विधायिका का अपने कार्यों के प्रति उदासीन व लापरवाह होना।*
3. *प्रजातांत्रिक शासन की तेजी से बढ़ती हुई समस्याएं और कार्यो ने वस्तुतः विधायिका की शक्तियों को कार्यपालिका की तरफ स्थानांतरित कर दिया है।*
4. *विधायिका की रूढ़िवादिता और सताधारी-गैरसताधारी दलों के बीच लंबे अंतराल के कारण समय पर कार्य करना संभव नहीं हो पाता है।*

5. *अमेरिका जैसे देशों में कार्यकारी या कार्यपालिका अप्रत्यक्ष होते हुए भी प्रत्यक्ष रूप से जनता के द्वारा निर्वाचित कार्यपालिका की स्थिति को प्राप्त कर लिया है।*
6. *सबसे बढ़कर युद्ध या राष्ट्रीय संकट के काल में कार्यपालिका ही प्रभावी होती है।*
7. *लोक कल्याणकारी राज्य की अवधारणा ने कार्यपालिका के कार्यों में वृद्धि कर दी है।*

न्यायपालिका

जिस तरह से व्यवस्थापिका और कार्यपालिका की आवश्यकता होती है ठीक उसी तरह से शासन के तीसरे अंग के रूप में हमें न्यायपालिका की आवश्यकता होती है। कानूनी स्वरूप में न्याय का कार्य करने वाला निकाय ही न्यायपालिका के नाम से जाना जाता है। न्यायपालिका राजनीतिक संगठन का तीसरा तथा एक पृथ्थक और स्वतंत्र अंग है। इसमें शासन के वे सभी कार्मिक समाहित हैं जिनका कार्य विद्यमान कानूनों को व्यक्तिगत मामलों पर लागू करना है। अन्य शब्दों में कहे तो न्यायपालिका सार्वजनिक अधिकारियों के ऐसा निकाय है जो राज्य के कानून की व्याख्या करते हैं तथा उसे परिवर्तित करते हैं। प्रत्येक राज्य में नागरिक शासन व्यवस्था से न्याय की आशा करते हैं जिन्हें देश में अच्छा शासन बनाए रखने का कार्य सौंपा जाता है। विधायिका की विधान निर्माध की प्रक्रिय और कार्यपालिका की विधान को लागू करने की प्रक्रिया में किसी कारणवश कोई कमी रह सकती है अथवा सता पक्ष अपने हित के अनुसार इसमें बदलाव कर सकता है। ऐसी स्थिति में नागरिकों और उनके शासकों के बीच विवाद उत्पन्न हो सकते हैं। इसके लिए आवश्यक है कि कानून के शासन की अवधारणा को निरंतर बनाए रखने के लिए शासन का एक पृथ्थक विभाग भी होना चाहिए जिसे न्यायपालिका के नाम से जाना जाता है। जॉन लॉक का यह कथन इस संदर्भ में बहुत ही उचित प्रतीत होता है कि जहां कानून समाप्त होता है वहीं से अत्याचार शुरू होता है। कानून की व्यवस्था को बनाए रखने के लिए न्यायपालिका की भूमिका महत्वपूर्ण होती है

न्यायाधीशों की भर्ती और कार्यप्रणाली:

न्यायाधीशों की भर्ती के अनेक तरीके हैं जिनमें प्रत्येक के अपने गुण- दोष होते हैं। इन्हें राज्य के अध्यक्ष द्वारा विवेक आधिकार के आधार पर मनोनीत किए जा सकता हैं अथवा कार्यपालिका के अध्यक्ष द्वारा किसी प्रतियोगी परीक्षा के परिणाम के आधार पर नियुक्त किया जा सकता हैं अथवा देश की विधायिका के द्वारा उनका निर्वाचन भी किया जा सकता है अथवा अन्य कोई माध्यम हो सकता है। विभिन्न देशों में भर्ती प्रणाली और कार्यप्रणाली

के भिन्न-भिन्न तरीके हैं।

न्यायपालिका के प्रमुख कार्यः

1.न्याय करनाः

जैसा कि न्यायपालिका के नामकरण से ही विदित है कि न्यायाधीशों का सर्वप्रथम तथा सर्वप्रमुख कार्य न्याय का परिचालन करना है। न्यायधिश विभिन्न पक्षों द्वारा दिए गए तर्क के आधार पर दीवानी, फौजदारी तथा संवैधानिक मामलों की सुनवाई करके उपलब्ध साक्ष्यों व गवहों के आधार पर निर्णय करते हैं। न्यायालय को लोगों के अधिकारों का रक्षक माना जाता है। लिखित संविधान वाले देशों में न्यायालयों को देश के मौलिक कानून की व्याख्या करने की शक्ति भी सौंपी जाती है। उन्हें देश के सर्वोच्च कानून के रूप में संविधान की रक्षा करने तथा संविधान के संरक्षक के रूप में कार्य करने का दायित्व सौंपा जाता है।

2.कानून का निर्माण का कार्यः

यद्यपि सामान्य रूप से कहा जाता है कि कानून निर्माण का कार्य विधायिका का होता है परंतु न्यायालय विभिन्न तरीके से कानून का निर्माण करते हैं। न्यायालयों के निर्णयों में से भिन्न प्रकार के कानूनों का सर्जन होता है, जिन्हें न्याय के कानून अथवा केस लॉ के नाम से जाना जाता है। अमेरिका के एक न्यायाधीश ह्यूज ने कहा है कि यह कोई वैधानिक कल्पना नहीं बल्कि यथार्थ है कि न्यायाधीश अवश्य ही कानून का निर्माण करते हैं, जहां कानून मूक रहता है अथवा संदेहास्पाद होता है अथवा वह देश के किसी अन्य कानून के साथ असंगत होता है, वहां न्यायालय ही निर्णय करते हैं कि कानून क्या है? इसे कैसे लागू होना चाहिए?

3.संविधान की रक्षा का कार्यः

जहां लिखित संविधान होता है, वहां न्यायपालिका को संविधान की संरक्षक की भूमिका प्रदान की जाती है। संघीय व्यवस्था में न्यायालय संविधान के संरक्षक तथा केंद्रीय और प्रांतीय शासन के बीच विवादों की स्थिति में निर्णायक के रूप में कार्य करते हैं। देश का सर्वोच्च न्यायालय इकाइयों की सरकारों के बीच अथवा इकाइयों व केंद्र की सरकारों के बीच सभी विवादों का समाधान करता है तथा इसका निर्णय अंतिम और बाध्यकारी माना जाता है।

4.परामर्श संबंधी कार्यः

न्यायपालिका के द्वारा संवैधानिक परामर्श भी प्रदान किया जाता है। न्यायालय का परामर्श संबंधी अधिकार क्षेत्र होता है। मुकदमों की सुनवाई तथा निपटान करने हेतु निर्णय देने केंद्रित न्यायालय को कानून के महत्वपूर्ण विषयों या मामलों पर परामर्श देने का प्राधिकार भी सौंपा गया है। अमेरिका के सर्वोच्च संघीय न्यायालय ने ऐसा क्षेत्राधिकार रखना पसंद नहीं किया है, इसीलिए वह संघीय कार्यपालिका को परामर्श नहीं देता है परंतु भारत के संविधान के अनुच्छेद 143 के अनुसार राष्ट्रपति विशेष सार्वजनिक महत्व के किसी विषय पर सर्वोच्च न्यायालय से परामर्श मांग सकता है। यद्यपि यह न्यायालय के लिए भी बाध्यकारी नहीं होता है।

5.न्यायिक समीक्षा संबंधी कार्यः

न्यायालय में विशेष रूप से उच्चतम और उच्च न्यायालयों का एक अन्य महत्वपूर्ण कार्य है किसी किसी भी प्रकार के आदेश एवं कार्यपालिका के निर्णय की इस आधार पर न्याययिक समीक्षा करना और वह जिस मात्रा तक संविधान के विरूद्ध हो, उसक मात्रा तक उसे अवैध घोषित किया जा सकता है। इसे न्यायालय की न्यायिक समीक्षा की शक्ति माना जाता है। इसका उदय संयुक्त राज्य अमेरिका में हुआ किंतु अभी अन्य देशों का भारत, ऑस्ट्रेलिया, स्विजरलैंड इत्यादि में भी विस्तृत हो चुका है।

6.विविधतापूर्ण कार्यः

न्यायालय कुछ अन्य कार्यों का निष्पादन भी करता जैसे अपने न्याययिक प्रशासन के कर्मचारियों पर नियंत्रण रखना, राज्य के अध्यक्ष के कहने पर जांच पड़ताल करना, विवाह और नागरिकता के प्रमाण पत्र जारी करना, न्यायालय मानहानि करने पर किसी व्यक्ति को दंडित कर सकता है। सार्वजनिक अधिकारियों द्वारा भ्रष्टाचार और सत्ता के दुरुपयोग के गंभीर मामलों की जांच पड़ताल करने के न्यायालय या उच्च न्यायालय के न्यायाधीशों के अधीन आयोग का गठन किया जा सकता है।

स्वतंत्र एवं निष्पक्ष न्यायपालिका की अवधारणा और उसकी आवश्यक शर्तेः

किसी देश में न्याय की उम्मीद तभी की जा सकती है जब न्यायपालिका को अन्य प्रकार के बंधनों से स्वतंत्र और भेदभाव से परे निष्पक्ष बनाया, स्वतंत्र और सशक्त बनाया जाए। न्यायपालिका के द्वारा ही न्याय का कार्य सही तरीके से किया जा सकता है। न्यायपालिका की स्वतंत्रता और निष्पक्षता को बनाए रखने के लिए कुछ महत्वपूर्ण शर्तें निम्नलिखित हैः

1.न्यायाधीशों की नियुक्ति का तरीका उचित होः

सर्वप्रथम हमें न्यायाधीशों की नियुक्ति के तरीके को तार्किक बनाना होगा। वे निर्वाचित नहीं होने चाहिए क्योंकि इससे वे राजनीतिक दबाव के अधीन आ जाते हैं। विधायिका के प्रति उनके उत्तरदाई होने से न्याय कार्य के मामले में उनकी स्वतंत्रता समाप्त हो जाती है। वह पक्षपात के बिना न्याय करने के बजाय अपने निर्वाचन की इच्छा पूर्ति करने लग जाते हैं। अतः यह कहा जा सकता है कि सर्वोत्तम विधि यह है कि किसी स्वतंत्र प्राधिकरण जैसे कि लोक सेवा आयोग द्वारा चयन के आधार पर न्यायाधीशों की भर्ती हो ताकि उच्च योग्यता और चारित्रिक दृढ़ता से संपन्न लोग न्यायधिश के पदों पर आसीन हो सके।

2.दीर्घ और सुरक्षित सेवाकालः

न्यायाधीशों का कार्यकाल लगभग आजीवन या दीर्घकाल तक होना चाहिए क्योंकि इससे लगातार अनुभव का लाभ होता है तथा उनके सेवाकाल में किसी प्रकार का आसानी से परिवर्तन नहीं होना चाहिए। ऐसा होने पर ही वे सुनिश्चित होकर न्याय के कार्य का निष्पादन कर सकते हैं।

3.अच्छा वेतन और भत्तों की व्यवस्थाः

न्यायाधीशों को बहुत अच्छा वेतन और भत्ते व सुविधाएं दी जानी चाहिए। उन्हें उपलब्ध अतिरिक्त सुविधाएं पर्याप्त रूप से आकर्षक नहीं होंगी तो लोगों को इस व्यवसाय के प्रति आकृष्ट नहीं किया जा सकेगा और दूसरा न्याय प्रक्रिया भी भ्रष्टाचारी हो जायेगी। इसलिए उन्हें पर्याप्त वेतन और भत्ते तथा तमाम तरह की सुविधाएं दी जानी चाहिए ताकि वह किसी प्रकार के लोभ और लालच में नहीं आए।

4.कार्यकारी व प्रशासनिक कार्यों नहीं:

न्यायाधीशों की कार्यकारी अथवा प्रशासनिक कार्य नहीं सौंपे जाने चाहिए। यदि प्रशासन तथा न्यायिक निर्णय का कार्य उन्हीं अधिकारियों के पास होगा तो लोगों की स्वतंत्रता खतरे में पड़ जाएगी। ब्रिटिश साम्राज्यवाद के दिनों में जिला मजिस्ट्रेट तथा उनके नियंत्रण के अधीन अन्य मजदूरों के मुकदमों की सुनवाई करने और निर्णय करने की शक्ति थी।

5.जनता से संपर्क पर प्रतिबंधः

यद्यपि न्यायाधीश असामाजिक नहीं होते हैं परंतु उनका सामान्य समाज से मेलजोल नहीं होना चाहिए क्योंकि वे न्याय का कार्य करते हैं। यदि सामाजिक बंधनों, दोस्ती, रिश्तेदारी, नातेदारी के चक्रव्यूह में फंस जाएंगे तो न्याय का कार्य नहीं कर पाएंगे। इसलिए न्यायाधीशों को जनसंपर्क से सामान्यतः दूर रहना चाहिए ताकि उनको जनता के दबाव से मुक्त रखा जा सकें, उनके निवास स्थान जनसाधारण के घरों से बहुत दूर होने चाहिए। ऐसे सुनिश्चित प्रतिबंध निर्धारित किए जाएं।

6.सेवानिवृत्ति के पश्चात नियुक्तियों पर प्रतिबंधः

जब एक व्यक्ति एक बार न्यायाधीश के पद पर नियुक्त हो जाता है और न्याय का कार्य करने में लग जाता है तो उसे सेवानिवृत्ति के पश्चात राजदूत, राज्यपाल, मंत्री तथा अन्य उच्च पदों पर कदापि पुरस्कार के रूप में नियुक्त प्रदान नहीं करनी चाहिए। यदि ऐसा होगा तो वे न्याय का कार्य सही तरीके से नहीं कर पायेंगें।

12

राजनीतिक व्यवस्था

परम्परागत दृष्टिकोण के सिद्धान्त प्रधानतः मानकात्मक, संरचनात्मक, संस्थात्मक, आदर्शात्मक, दार्शनिक, कानूनी और औपचारिक रहे है। अतः इसकी कमियों की प्रतिक्रियास्वरूप व्यवहारवादी आन्दोलन या आधुनिक दृष्टिकोण का उदय हुआ। आधुनिक उपागम के अनेक सिद्धान्तों में से एक है, व्यवस्थावादी सिद्धान्त। इस सिद्धान्त को समझने से पूर्व हमें सिस्टम शब्द को समझना होगा। अमेरिकी राजनीति विज्ञानी डेविड ईस्टन ने जिसका प्रतिपादन किया है वह शब्द '**राजनीतिक व्यवस्था**' है।

- व्यवस्था विश्लेषण का मूल विचार जीव विज्ञान से आया है जिसे बाद में समाज विज्ञानियों के द्वारा अपनाया है। अतः किसी भी पर्यावरण में जिस ढाँचे के अन्तर्गत कोई विशेष प्रक्रिया सम्पन्न होती है उसे व्यवस्था कहा जाता है।
- जर्मन जीव विज्ञानी एल. वी. बर्टनलफी ने 1920-1930 के दशक में 'सामान्य व्यवस्था सिद्धान्त' के रूप में इसका प्रथम बार प्रतिपादन किया। उन्होंने व्यवस्था को अन्तः क्रियाओं के तत्वों के समूह का अध्ययन बताया है।
- यह सिद्धान्त जीव विज्ञान से मानवशास्त्र, समाजशास्त्र और मनोविज्ञान में प्रचलित हुआ।
- समाजशास्त्री राबर्ट के मार्टन व टेल्काट पार्सन्स के विश्लेषण से प्रभावित होकर डेविड ईस्टन ने राजनीति विज्ञान में व्यवस्था सिद्धान्त की शुरूआत की जो कि आगे चलकर इस विषय की अन्य शाखाओं अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति व तुलनात्मक राजनीति में (आमण्ड व कौलमेन ने अपनाया) प्रसिद्ध हो गया।

डेविड ईस्टन का व्यवस्था सिद्धान्त :

कनाड़ा मूल के अमेरिकी राजनीतशास्त्री डेविड ईस्टन के नाम पर इसे ईस्टन सिद्धान्त कहा जाता है। ईस्टन ही वह प्रथम विचारक था जिसने सामान्य व्यवस्था सिद्धान्त को राजनीति विज्ञान में अपनाया। इस सन्दर्भ में उसकी चार रचनाएं सबसे महत्वपूर्ण है :-

प्रथम रचना में व्यवस्था सिद्धान्त का पारिभाषिक विवेचन किया गया है। दूसरी कृति आगत-निर्गत उपागम की रूपरेखा को अभिव्यक्त करती है। तीसरी रचना में प्रमुख प्रवर्गों का प्रतिस्थापित किया गया है जिनके आधार पर सामान्य व्यवस्था सिद्धान्त निर्मित किया गया था। यहाँ व्यवस्था को रेखाचित्र के माध्यम से समझाया गया है। ईस्टन की अन्तिम पुस्तक में उन चर या प्रत्यय ढ़ाचों या संरचनाओं को व्यवहार में लागू कर आनुभाविक विश्लेषण किया गया है।

- सामान्यतया राजनीतिक व्यवस्था का अर्थ उस प्रणाली में विद्यमान या अन्तर्निर्हित तत्वों या भागों या अंगों के बीच की सुव्यवस्था से है। इन अंगों के मध्य पारस्परिक सम्बन्धों की सुनिश्चित नियमतता होती है। ओ. आर. यूगं के अनुसार ''व्यवस्था उन प्रत्ययों का समूह है जो प्रत्यय परस्पर सम्बन्धित होते है और एक दूसरे पर निर्भर होते है।''
- इस आधार पर डेविड ईस्टन ने व्यवस्था के तीन लक्षणों का उल्लेख किया है अर्थात् इसके तीन भाग या अंग होते हैः-
- **अन्तः सम्बन्धित, अन्तः निर्भर और अन्तः क्रियाशील।**

अतः व्यवस्था से हमारा अभिप्रायः अन्तः क्रिया करने वाले अमूर्त तत्वों के समूह से है। यूंग ने इस विश्लेषण के तीन ध्येय बताएं है :-

1. **व्यवस्था के नमूनों या तत्वों के व्यवहार पर बल।**
2. **उनके पारस्परिक सम्बन्धों की व्याख्या करना।**
3. **व्यवस्था को अथवा उसकी निरतंरता को बनाए रखने वाले तत्वों की खोज करना।**

- *ईस्टन के शब्दों में, ''राजनीतिक व्यवस्था किसी सामाज या पर्यावरण में पारस्परिक क्रियाओं की ऐसी व्यवस्था है जो मूल्यों का प्राधिकृत आंवटन करती है और वे उस समाज के लिए बाध्यकारी होते है।''*
- *''राजनीतिक व्यवस्था स्वंय में परिपूर्ण सता है जो उस वातावरण या परिवेश, जिसमें वह निहित होती है या जिसके अन्तर्गत प्रचलित होती है, उससे से पृथ्थक् होती है।''*
- *''राजनीतिक व्यवस्था अन्तः क्रियाओं का वह समूह है जो नीतियों का निर्धारण करती है।''*
- *''यह नीतियों के माध्यम से मूल्यों का प्राधिकृत आंवटन करती है।''*
- *आमण्ड-पॉवेल के शब्दों में, ''राजनीतिक व्यवस्था से इसके अंगों की अन्तः निर्भरता, सर्वव्यापकता और इसके पर्यावरण में किसी न किसी प्रकार की सीमा का बोध होता है।''*
- *पॉवेल ने पारस्परिक निर्भरता या अन्तः निर्भरता का अर्थ बताया है कि किसी एक अंग या भाग में बदलाव आने पर सम्पूर्ण व्यवस्था प्रभावित होती है।*

राजनीतिक व्यवस्था के लक्षण या विशेषताएं:

राजनीतिक व्यवस्था या आगत-निर्गत उपागम व्यवस्था विश्लेषण का एक प्रत्यय या व्युत्पन्न है। ईस्टन के अनुसार राजनीतिक प्रणाली उन अन्तः क्रियाओं का स्वरूप है जिसके माध्यम से मूल्यों का प्राधिकृत आंवटन होता है और उन्हें समाज के लिए लागू किया जाता है। राजनीतिक प्रणाली के प्रमुख लक्षण निम्नलिखित हैः-

1. राजनीतिक प्रणाली अन्तः क्रियाओं के समूह की नियमित प्रणाली है जहाँ इसके तत्वों या भागों के बीच अन्तः निर्भरता, अन्तः क्रियाशीलता और अन्तः सम्बन्ध (लोगों व संस्थान के सम्बन्धों सहित)पाए जाते है।
2. यह किसी समाज के लिए मूल्यों का प्राधिकृत आवंटन करती है अर्थात् निर्णय बाध्यकारी होते है या इनका पालन नहीं करने पर वैधानिक अधिसता का प्रयोग किया जा सकता है।
3. राजनीतिक व्यवस्था की यह प्रक्रिया तीन चरणों में अर्थात् आगत रूपान्तरण और निर्गत के रूप में संचालित होती है। यह प्रक्रिया पुनः निवेश चक्र या प्रतिसम्भरण के माध्यम से गतिशील रहती है। अतः इसे सत्त चक्रीय प्रवाह भी कहा जाता है।
4. राजनीतिक व्यवस्था का प्रतिक्रिया तंत्र या प्रतिरक्षक तंत्र सबसे महत्वपूर्ण होता है क्योंकि व्यवस्था इसी के माध्यम से स्वंय को सुरक्षित बनाए रखती है या गतिशील रहती है। फिर भी इसका मूल स्वरूप बदल ;अनुकूलन-प्रतिकूलनद्ध सकता है। अतः यह एक रक्षक प्रणाली है जो पर्यावरणीय दबावों, तनावों, असंतुलनों से व्यवस्था की रक्षा करता है। आगत-निर्गत प्रक्रिया द्विपक्षीय ;पर्यावरण से व्यवस्था और व्यवस्था से पर्यावरणद्ध और निर्णय प्रक्रिया त्रिपक्षीय (आगत, रूपान्तरण व निर्गत) एवं रूपान्तरण प्रक्रिया एक पक्षीय (व्यवस्था के भीतर एक ही दिशा में) होती है।
5. राजनीतिक व्यवस्था एक प्राकृतिक प्रणाली के समान है जिसमें स्वंय में विनियमन की, अपनी प्रक्रियाओं एवं संरचनाओं को परिवर्तित करने, सही स्वरूप देने और समायोजित करने की स्वाभाविक क्षमता होती है।
6. जिस समाज या पर्यावरण में यह कार्य करती है वह दो प्रकार का होता है अर्थात् राष्ट्रीय (राजनीतिक, पारिस्थितिकीय व सामाजिक) व अन्तर्राष्ट्रीय समाज (पारदेशीय, राजनीतिक, पारिथितिकीय व सामाजिक)।
7. राजनीतिक प्रणाली, अन्य प्रणालियों से भिन्न होती है परन्तु भौतिक, जैविक, सामाजिक, आर्थिक व पारिस्थितिकीय पर्यावरण का इस पर प्रभाव पड़ता है और इनकी सबकी अपनी सीमाएं होती है।
8. आगत प्रणाली मांग व समर्थन के द्वारा तथा निर्गत प्रणाली नीतियों व निर्णयों व पुनः निवेश चक्र के माध्यम से संचालित होती है। राजनीतिक प्रणाल की प्रक्रिया को निम्न रेखाचित्र के माध्यम से समझाया गया है :-

आगत-निर्गत आरेखः

आगत-निर्गत की प्रक्रिया के माध्यम से व्यवस्था सिद्धान्त में संतुलन की स्थिति को स्थापित करने का प्रयास किया गया है। आगत निर्गत के रूप में राजनीतिक व्यवस्था और घरेलू एवं विदेशी घटकों की प्रभावशीलता को शामिल करता है। आगत- घरेलू समाज, राजनीतिक अभिजन, अन्तर्राष्ट्रीय पर्यावरण या अन्य किसी में से भी आ सकते है।

रेखाचित्र का स्पष्टीकरण :

सामान्यतः मांगों के दो स्वरुप होते हैं। पहले स्वरूप में एक व्यवस्था के भीतर से व दूसरी व्यवस्था के बाहर से उत्पन्न होने वाली मांग। दूसरे स्वरूप में राष्ट्रीय पर्यावरण से उत्पन्न होने वाली मांग व अंतरराष्ट्रीय पर्यावरण से उत्पन्न होने वाली मांग। इसी तरह से समर्थन के भी दो स्वरूप होते हैं। राजनीतिक व्यवस्था के भीतर से समर्थन तथा राजनीतिक प्रणाली के बाहर से मिलने वाला समर्थन। अंतर्राष्ट्रीय पर्यावरण से प्राप्त होने वाला समर्थन और राष्ट्रीय पर्यावरण से मिलने वाला समर्थन।

मांग व समर्थन के मध्य कार्य करने वाला एक नियामक तंत्र होता है। इस नियामकीय तंत्र में चार विनियमनकारी तत्व होते है। होते हैं। द्वारपाल अर्थात् राजनीतिक दल व दबाव समूह सामाजिक पर्यावरण से आने वाली मांगों को सीमित करते है और उन्हें सही स्वरूप प्रदान करते है।

सांस्कृतिक परिसंचरण तंत्र सामाजिक व सांस्कृतिक मानकों के माध्यम से मांग के उचित और अनुचित स्वरूप का निर्धारण करने में प्रभावी भूमिका का निर्वहन करता है। संप्रेषण चैनल संप्रेषण तंत्र मांग पहुँचाने वाली वाहीकाओं के रूप में कार्य करता है। अतः प्रत्येक माँग को इसी माध्यम से होकर गुजरना पड़ता है। इस कारण से मांगों की संख्या कम हो जाती है। रूपांतर प्रक्रिया कार्यकारी प्रशासनिक तंत्र, पर्यावरण-प्रक्रिया मांगों को सीमित व विनियमित करने में निर्णायक भूमिका निभाते है। सभी नियामकीय तत्व राजनीतिक प्रणाली को तनाव और दबाव से बचाने का कार्य करते हैं।

फीडबैक तंत्र व्यवस्था का परिरक्षण तंत्र होता है जो तनाव, दबाव और असंतुलन से व्यवस्था को संरक्षण प्रदान करता है।

आगतों व निर्गतों के प्रमख प्रकारः

राजनीतिक प्रणाली जिन आगतों व निर्गतों के माध्यम से संचालित होती है उनकों सामान्यतया चार भागों में विभाजित किया जा सकता है।

मांगों के प्रकारः आगत प्रक्रिया के रूप में पर्यावरण से आने वाली मांगे चार प्रकार की होती है।

1. **वस्तुओं और सेवाओं के आवंटन सम्बन्धी मांग।**
2. **व्यवहार के विनियमन सम्बन्धी मांग।**
3. **राजनीतिक जीवन में सहभागिता की मांग।**

4. **संचार व सूचना सम्बन्धी मांग।**

जिस तरह से पर्यावरण से उठने वाली मांगों को चार स्वरूपों में विवेचित किया गया है ठीक उसी तरह से मांगों को मिलने वाले समर्थन को भी चार प्रकारों में विभाजित किया गया है।

1. **माली या भौतिक समर्थन।**
2. **नियमों का समर्थन।**
3. **सहभागिता का समर्थन।**
4. **सार्वजनिक सूचना सम्बन्धी समर्थन।**

राजनीतिक व्यवस्था के कार्यः राजनीतिक प्रणाली सामान्यतया चार प्रकार के कार्यों का निर्वहन करती है।

1. **चयन व संयुक्तिकरण का कार्य।**
2. **रूपान्तरण का कार्य।**
3. **व्यवस्था अनुरक्षण का कार्य।**
4. **व्यवस्था अनुकूलन का कार्य।**

आगतों के समान निर्गतों को भी चार भागों में विभाजित किया गया है। निर्गत के अन्तर्गत राजनीतिक प्रणाली के निर्णयों, नीतियों, कार्यक्रमों को शामिल किया जाता है।

1. **दोहन का निर्णय।**
2. **व्यवहार विनियमन का निर्गत।**
3. **वस्तु, सेवा, पद व पुरस्कार निर्गत।**
4. **प्रतिकात्मक निर्गत।**

आलोचनाएंः

ईस्टन के व्यवस्था विश्लेषण सिद्धान्त ने राजनीति विज्ञान के आधुनिक उपागम को गति व निरन्तरता प्रदान की है। तुलनात्मक राजनीति में इसका आरम्भ करने वाला ईस्टन ही पहला विचारक है। ईस्टन के सिद्धान्त की कुछ कमियां रही है जिनक आधार पर शोधार्थियों ने आलोचनाएं की है। प्रो. एस. पी. वर्मा के विचार है कि ईस्टन आनुभाविक विश्लेषण की परम्परा को स्थापित करने में असफल रहा हैं। यूजेन मेहन के अनुसार ईस्टन का व्यवस्था उपागम वास्वत में सिद्धान्त पर कम और अवधारणा पर अधिक बल देता है। व्यवस्था विश्लेषण का यह प्रथम प्रत्यय राजनीतिक प्रणाली या व्यवस्था के संरक्षण

व देखरेख पर अधिक ध्यान देता है। इसी के साथ वह परिवर्तन के लिए अनुकूलन, तनाव के नियमन, राजनीतिक स्थिरता और संतुलन या साम्य अवस्था की वकालात करता है। ऐसा करके ईस्टन ने वस्तुतः यथास्थिति का ही समर्थन किया है न कि गतिशीलता का, अर्थात् यह उपागम गतिशील न होकर स्थिर होता है। ईस्टन के सिद्धान्त पर यह आरोप भी लगाया जाता है कि यह केवल व्यापकता या विस्तृत स्तर पर ही अध्ययन करता है। यह संकीर्ण दृष्टिकोण का समर्थन करता है जो कि केवल विकसित देशों तक विशेष रूप से अमेरिका और पश्चिमी दूनिया के क्षेत्र तक सीमित रहा है। आगत-निर्गत उपागम वास्तव में इतिहास का बहुत कम तथा वर्तमान का बहुत अधिक अध्ययन करता है और भविष्य के बारे में कोई दृष्टिकोण प्रस्तुत नहीं करता है। इसीलिए इसका पतन हो गया है।

महत्व :

उपर्युक्त आलोचनाओं या कमियों के बाद भी ईस्टन के सिद्धान्त का राजनीतिक विश्लेषण उपागम के अन्तर्गत विशेष महत्व है। यह तुलनात्मक विश्लेषण के लिए सर्वश्रेष्ठ तकनीक उपलब्ध कराता है। इसने तुलनात्मक अध्ययन को रचनात्मक और रूचिपूर्ण बनाने हेतु विषय सामग्री उपलब्ध कराने में प्रभावी भूमिका का निर्वहन किया है। उसने राजनीतिक विज्ञानियों के लिए समग्र व्यवस्थावादी दृष्टिकोण उपलब्ध कराया है। यूगेन जो की आलोचक भी है उनका यह कहना है कि ईस्टन ने सामान्य कार्यात्मक सिद्धान्त उपलब्ध कराया है।

संरचनात्मक-प्रकार्यात्मक उपागम

यह व्यवस्था विश्लेषण सिद्धांत या राजनीतिक विश्लेषण का दूसरा संप्रत्यय है जिसने ईस्टन सिद्धांत को आगे बढ़ाया है। यह प्रणाली या व्यवस्था सिद्धांत का ही अग्रिम चरण है। ईस्टन सिद्धांत केवल विकसित राज्यों विशेष रूप से अमेरिका एवं यूरोपियन राजनीतिक प्रणालियों पर केंद्रित रहा जिसके माध्यम से द्वितीय महायुद्ध के पश्चात् नवोदित एवं विकासशील देशों की राजनीतिक प्रणाली को समझना संभव नहीं हुआ। अतः विकासशील देशों में राजनीतिक बदलाव या अस्थिरता को समझने हेतु 1960 के दशक में संरचनात्मक प्रकार्यात्मक उपागम का उदय हुआ। विकासशील देशों की व्यवस्था प्रणालियों में अनेक क्रांतिकारी परिवर्तन, अस्थिरता, राज्य निर्माण और राष्ट्र-राज्य निर्माण, सहभागिता, वितरण जैसी इत्यादि समस्याएं दिखाई दे रही थी।

- *इस सिद्धांत का सर्वप्रथम प्रयोग मानवशास्त्र विषय में मानवशास्त्री मैलिनोवस्की और रेडक्लिफ ब्राउन के द्वारा आदिम समुदायों के विशेष कृत्यों तंत्र मंत्र धर्म-कर्म और विधि-*

विधान का अध्ययन करने के लिए किया गया।

- *इसे आगे चलकर समाजशास्त्री टेलकॉट पारसंस ने सभ्य समाजों का अध्ययन करने के लिए विकसित किया।*
- *इस सिद्धांत का विकास करने में मर्टन, लेवी, ऑर्थर और डेविड ट्रूमैन इत्यादि ने प्रभावी भूमिका का निर्वहन किया है।*
- *तुलनात्मक राजनीति में इसे सिद्धांत के रूप में विकसित करने का श्रेय अमेरिकी राजनीति विज्ञानी आमंड को जाता है। आमण्ड व कोलमैन की रचना 'दि पॉलिटिक्स ऑफ दि डवलपिंग एरियाज' के अंतर्गत इस सिद्धांत का परिचय दिया गया है।*
- *आमण्ड के अनुसार ईस्टन का सिद्धांत अधूरा है, जहाँ इनपुट-आउटपुट प्रक्रिया में संस्थाओं या सूचनाओं का विवेचन किया गया है तथापि उनके कृत्यों का उल्लेख नहीं किया गया है और वह केवल विकसित देशों की राजनीतिक प्रणालियों पर ही केंद्रित रहा है।*

प्रत्येक राष्ट्र में राजनीतिक प्रणालियाँ विद्यमान होती हैं यद्यपि उनमें विविधता एवं भिन्नता पाई जाती है। प्रत्येक राज्य में राजनीतिक व्यवस्था कुछ समान विशेष कार्यों का निष्पादन करती है और इन कार्यों को सम्पादित करने हेतु निर्धारित संरचनाएं होती है। राजनीतिक कार्यों को सम्पन्न करने वाली निर्धारित संरचनाएं बहुकार्यमुखी और मिश्रित स्वरूप वाली होती है। इसे संरचनात्मक-प्रकार्यात्मक उपागम या कृत्यात्मक-अपकृत्यात्मक या विकासात्मक उपागम के नाम से भी जाना जाता है। सात प्रकार की औपचारिक एवं अनौपचारिक संरचनाएं व उनके साथ जुडे हुए सात तरह औपचारिक एवं अनौपचारिक कार्य होते है। संरचनाएं जो राजनीतिक प्रणाली के स्थायित्व में सहायक हो अथवा बाधक हो विकासशील देशों को विकसित होने या आगे बढ़ने का आदर्श पथ या प्रतिमान प्रस्तुत करती हैं। प्रोफ़ेसर के अनुसार यह ईस्टन के आधारभूत सिद्धांत को ही विकसित करने वाला व्यवस्था विश्लेषण का अन्य परिष्कृत प्रत्यय है। इसका केंद्रीय विषय-संरचना क्या है? उसके आधारभूत कृत्य क्या हैं? और समाज की दशा क्या है? इन प्रश्नों से संबंधित है।

संरचनात्मक-प्रकार्यात्मक सिद्धांत की मुख्य विशेषताएंः

यह व्यवस्था विश्लेषण का अन्य प्रत्यय हैं जो राजनीतिक व्यवस्था के अनुरक्षण ;डंपदजमदंदबमद्ध एवं उसके नियमन पर केंद्रित है। इस सिद्धांत की मूल मान्यता है कि सभी राजनीतिक प्रणालियां अपनी संरचनाओं के माध्यम से कृत्यों का संपादन करती हैं। समाज या पर्यावरण एक अंतःनिर्भर प्रणाली है जिसका प्रत्येक घटक या तत्व या भाग किसी विशेष कृत्य का निष्पादन करता है और उसका मूल उद्देश्य संतुलन या साम्य अवस्था को बनाए रखना होता है। समाज एक समग्र या एकीकृत व्यवस्था है जिसके भाग या अंग आपस में अन्तः संबंधित होते हैं। सामाजिक प्रणाली की मूल प्रवृत्ति यह है कि व्यवस्था अनुरक्षण

एवं संतुलन की व्यवस्था उसके भीतर अंतर्निहित होती है और वह आंतरिक या बाहय तनाव और दबाव को दूर करने की क्षमता रखती है। व्यवस्था में होने वाले परिवर्तन स्वाभाविक होते हैं अर्थात् वे अचानक उदित होने वाले क्रांतिकारी परिवर्तन नहीं होते है। ऐसे परिवर्तन सदैव सामान्य व अनुकूलित या स्वीकार्य होते हैं। व्यवस्था के अपने लक्ष्य, सिद्धांत व कृत्य होते है और अपनी संरचनाएं होती हैं। सभी प्रणालियों में संरचनाओं व कृत्यों का वैधानिक प्रारूप होता है यद्यपि इनमें विविधता एवं विभेदीकरण भी पाया जाता है।

आमण्ड के अनुसार राजनीतिक प्रणाली के ध्येय और उसकी विशेषताएं :

राजनीतिक प्रणाली एक समाज में राजनीतिक गतिविधियों के संपूर्ण क्षेत्र को व्यक्त करती है। आमंड के अनुसार इस राजनीतिक प्रणाली के कुछ लक्षण होते हैं। आमण्ड के अनुसार इसकी तीन मुख्य और पाँच उप-मुख्य विशेषताएं होती है और चार लक्ष्य होते हैं। इनका विवरण जी. ए. आमण्ड व जी. बी. पॉवेल की पुस्तक 'कम्पेरेटिव पॉलिटिक्सः ए डवलपमेण्ट एप्रोच,1966 के अन्तर्गत किया है जो कि निम्नलिखित है-

1.सार्वभौमिकता या सर्वव्यापकता :

राजनीतिक व्यवस्था सामाजिक प्रणाली का उप-भाग है जो प्रत्येक समाज में पाई जाती है, भले ही वह पिछड़ा हो या विकासशील हो या विकसित अथवा औपचारिक या अनौपचारिक समाज। कैसा भी समाज हो अर्थात् रक्त समूह, भाषाई, प्रस्थिति, जाति समूह, धार्मिक या सांस्कृतिक या हिंसक या विद्रोही या अन्य समाज। आगत-निर्गत प्रणाली सब जगह कार्य करती है। राजतंत्र से लोकतंत्र तक, पूंजीवाद से समाजवाद तक या अन्य किसी वाद तक।

2.अंतः निर्भरताः

राजनीतिक प्रणाली या व्यवस्था के विभिन्न अंगों या भागों के बीच अंतःनिर्भरता पाई जाती है। एक उप समूह की अंतः क्रिया में परिवर्तन आने से अन्य सभी उप-समूहों में परिवर्तन आ जाता है अथवा पूरी व्यवस्था ही प्रभावित होती है क्योंकि सभी उप-समूहों के कार्य अंतःनिर्भर होते हैं। जैसे कि चुनाव प्रक्रिया में तकनीक अर्थात् इलेक्ट्रॉनिक वोटिंग मशीन का प्रयोग करने से राजनीतिक प्रणाली व राष्ट्रीय तथा पार राष्ट्रीय पर्यावरण में परिवर्तन आ जाता है। ठीक उसी तरह से जैसे कि कार में डीजल के जल जाने से अन्य पाट्र्स पर प्रभाव पड़ना।

3.सीमा रेखाएंः

प्रत्येक सामाजिक प्रणाली में अनेक उप-व्यवस्थाएं निहित होती है। कोई भी प्रणाली किसी न किसी एक बिन्दु से आरम्भ होती है और किसी न किसी एक अंतिम बिन्दु पर आकर रूक जाती है। अतः प्रत्येक राजनीतिक प्रणाली के द्वारा सामाजिक एवं राजनीतिक व्यवस्था के बीच अपनी अपनी सीमाओं का निर्धारण किया जाता है। एक राजनीतिक प्रणाली वहाँ से शुरू होती है जहाँ पर अन्य प्रणालियों का सीमा क्षेत्र समाप्त हो जाता है। आमण्ड के अनुसार ''जब हम अच्छी या बुरी प्रणाली की बात करते हैं तो हमें व्यवस्था के क्षेत्र की बात करनी चाहिए।'' जैसे कि मतदाता के द्वारा अपने खेत पर काम को छोड़कर मतदान केंद्र पर जाना आर्थिक सीमा से राजनीतिक सीमा में प्रवेश करना है।

राजनीतिक प्रणाली के उप-लक्षण :

राजनीतिक व्यवस्था की प्रथम एवं मुख्य विशेषता में ही अन्य पाँच विशेषताएँ निहित होती हैं।

1.राजनीतिक व्यवस्था की सर्वव्यापकता :

प्रत्येक समाज में अनेक प्रणालियाँ पाई जाती हैं जिनमें से एक प्रणाली है-राजनीतिक प्रणाली। समाज या पर्यावरण का स्वरूप कैसा भी हो अर्थात कबीलाई समाज या आधुनिक समाज, पिछड़ा या विकसित समाज, उदारवादी या समाजवादी समाज या साम्यवादी समाज, धार्मिक या सांस्कृतिक समाज या समाज का कोई अन्य रूप भी हो सकता है। अतः राजनीतिक प्रणाली प्रत्येक देश के समाज में अनिवार्य रूप से पाई जाती है।

2.राजनीतिक व्यवस्था के कृत्यों की सर्वव्यापकता :

राजनीतिक प्रणाली के द्वारा प्रत्येक समाज में अनेक कृत्यों का निष्पादन किया जाता है। प्रणाली औपचारिक या अनौपचारिक सभी प्रकार के कार्य करती है और इन कार्यों को निष्पादित करने की वैध शक्ति भी रखती है। सामान्यतः प्रणाली सात प्रकार के अनौपचारिक एवं औपचारिक कृत्यों को संपादित करती है।

3.राजनीतिक व्यवस्था की संरचनाओं की सर्वव्यापकता :

प्रत्येक प्रणाली समाज के आंतरिक रूप में कार्य करती है। प्रत्येक कार्य को संपन्न करने के लिए निश्चित संरचनाएं होती हैं। यदि निश्चित प्रकार्यों को निर्धारित संरचनाओं के द्वारा ही निष्पादित किया जाता है तो यह विकसित राजनीतिक प्रणाली का उदाहरण होता है और इसे कार्य विशेषीकरण के सिद्धांत के नाम से जाना जता है। विकासशील राजनीतिक प्रणालियों में एक प्रकार्य को अनेक संरचनाएं और एक संरचना के द्वारा अनेक प्रकार्य सम्पादित किये जा सकते है और यही उसके पिछडेपन का संकेत होता है। जैसे ही कोई राजनीतिक प्रणाली विकास उपागम के विशेषीकरण के सिद्धांत पर कार्य करने लगती है तो उसे विकसित श्रेणी में मान शामिल कर लिया जाता है। संरचना, संस्था की अपेक्षा अधिक व्यापक स्वरूप को व्यक्त करती है।

4.राजनीतिक व्यवस्था के कृत्यों-संरचनाओं की विविधता:

राजनीतिक प्रणाली के द्वारा विशेष कृत्यों को सम्पादित करने के लिए विशेष संरचनाएं होती हैं परंतु इन कृत्यों एवं संरचनाओं में विशेषीकरण के साथ-साथ बहुकार्यता का लक्षण भी पाया जाता है। अंतःनिर्भरता राजनीतिक प्रणाली का मूल लक्षण होता है। इसीलिए राजनीतिक प्रणाली के सभी कार्यों व संरचनाओं को विशेषीकरण के माध्यम से भी पूर्णतया पृथ्थक नहीं किया जा सकता है। इस प्रणाली में संरचनाओं के साथ-साथ प्रकार्यों के भी विविध स्वरूप पाए जाते है।

5.राजनीतिक व्यवस्था का मिश्रित सांस्कृतिक स्वरूप:

राज्य जिसे आधुनिक अमेरिकी राजनीति विज्ञानी डेविड ईस्टन ने राजनीतिक व्यवस्था का नाम दिया है उसका ऐतिहासिक विकास कबीला राज्य, प्राच्य राज्य, यूनानी राज्य, रोमन राज्य, सामंतवादी राज्य और राष्ट्र राज्य के क्रम में हुआ है। ब्रिटिश संसद, भारतीय न्यायपालिका, व्यवस्थापिका के सदस्यों द्वारा ली जाने वाली शपथ और कार्यवाही शुरू करने से पूर्व ब्रिटिश संसद में प्रार्थना करना तथा संसद को स्थगित करने से पूर्व पारम्परिक परम्परा के रूप में पीठासीन अधिकारी गदा को कंधे पर लेकर वेल में जाता है और इसके बाद सदन का स्थगन होता है, इत्यादि इसी के उदाहरण हैं।

आमण्ड ने ईस्टन की मान्यताओं को स्वीकार किया है। इसीलिए उसने अपने प्रतिमान में राजनीतिक व्यवस्था की त्रिमुखी प्रक्रिया को इनपुट-रूपांतरण-आउटपुट के रूप में समझाया है। इस पर्यावरण में राजनीतिक संरचना, राजनीतिक संस्कृति एवं राजनीतिक अभिजन निर्णायक भूमिका का निर्वहन करते हैं। इन्हें आमंड ने राजनीति व्यवस्था के तीन संरचनात्मक लक्षणों के रूप में व्यक्त किया है। ये लक्षण प्रणाली के भीतर अंतर्निहित होते है। आमण्ड ने समाजशास्त्री पारसंस, राजनीति विज्ञानी ईस्टन तथा समाजशास्त्री एवं दार्शनिक जर्मन विचारक मैक्स वेबर की संयुक्त विचारधारा को स्वीकार किया है अर्थात् राजनीतिक प्रणाली की परिभाषा सभी स्वतंत्र समाजों में अंतः क्रियाओं की ऐसी व्यवस्था है जो वैधानिक भौतिक शक्ति या उसके भय से एकीकरण व अनुकूलन का कार्य निष्पादन करती है।

राजनीतिक प्रणाली के मुख्य प्रकार्य :

प्रत्येक राजनीतिक प्रणाली मुख्यतः चार प्रकार के कार्यों अथवा लक्ष्यों को प्राप्त करने का प्रयत्न करती है। पारसंस ने किसी सामाजिक व्यवस्था के लिए इन कार्यों को अपरिहार्य बताया है। आमण्ड ने भी इन्हीं कार्यों का समर्थन किया है। राजनीतिक प्रणाली के ऐसे अनिवार्य कार्य निम्नलिखित हैं :-

1. *लक्ष्य सिद्धि का कार्य।*
2. *अनुकूलन का कार्य।*
3. *एकीकरण का कार्य।*
4. *प्रतिमान अनुरक्षण का कार्य।*

ईस्टन ने चयन व संयुक्तिकरण, रूपांतरण तथा अनुकूलन व अनुरक्षण से सम्बन्धित चार कार्यों का उल्लेख किया है। आमण्ड व पॉवेल मूलतः आगत कृत्यों और अनौपचारिक तत्वों पर विशेष बल देते हैं। यह रेखाचित्र आगत रूपांतरण और निर्गत की प्रक्रियाओं में संचालित होता है। आमंड के व्यवस्था विश्लेषण को निम्नलिखित रेखा चित्र के माध्यम से स्पष्ट किया जा सकता है :-

संरचनात्मक-प्रकार्यात्मक विश्लेषण सिद्धान्त स्पष्टीकरण तीन स्वरूपों आगत प्रक्रिया, रूपान्तरण प्रक्रिया और निर्गत प्रक्रिया के रूप में निम्न प्रकार से किया जा सकता है:-

1.आगत प्रक्रियाः

आमण्ड ने ईस्टन के द्वारा प्रस्तुत आगत प्रणाली के स्वरूप को अपनाया है अर्थात् मांग के रूप में आगत में वस्तुओं व सेवाओं के वितरण की मांग, व्यवहार विनियमन, राजनीतिक सहभागिता, संप्रेषण व सूचना संबंधी मांग शामिल है तथा समर्थन के रूप में भौतिक समर्थन, कानून व नियमों का पालन, सहभागिता समर्थन, सरकारी संप्रेषण के प्रति सजग, सार्वजनिक सत्ता का सम्मान इत्यादि शामिल है।

राष्ट्रीय व अंतरराष्ट्रीय परिवेश से उत्पन्न आगत को निर्गत में बदलना ही प्रणाली का लक्ष्य होता हैं और ये निर्गत हमें नीतियों व निर्णयों के रूप में दिखाई देते हैं। आगत प्रक्रिया के प्रकार भी निर्गत के प्रकारों से निकटतम संबंधित होते हैं। ईस्टन और पॉवेल दोनों ने अनूरक्षण व अनुकूलन को राजनीतिक प्रणाली का महत्वपूर्ण कार्य बताया है। आगतों के आकार-प्रकार की निर्णयकारी राजनीतिक संस्कृति होती है। आगत कृत्य व संरचना अनौपचारिक स्वरूप में संचालित होते हैं जबकि निर्गत कृत्य व संरचना औपचारिक या सरकारी होते हैं। पावेल ने अपने सिद्धान्त में संरचना की अपेक्षा कृत्यों पर और औपचारिक की अपेक्षा अनौपचारिक संरचना व कृत्यों पर अधिक ध्यान दिया है।

2.रूपान्तरण प्रक्रियाः

आमण्ड ने सात प्रकार के आगत-निर्गत प्रकार्यों व उनको निष्पादित करने वाली सात प्रकार की संरचनाओं का उल्लेख किया है :-

1.राजनीतिक समाजीकरण और राजनीतिक भर्तीः

राजनीतिक संस्कृति इनपुट के लिए निर्णायक भूमिका का निर्वहन करती है। राजनीतिक संस्कृति जिस प्रक्रिया से आगे बढ़ती है या एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी की ओर गमन अथवा प्रवाह करती है उसे ही राजनीतिक समाजीकरण के नाम से जाना जाता है। निवेशों की आधार भूमि तैयार करने में आमण्ड ने राजनीतिक समाजीकरण एवं भर्ती को निर्धारक तत्व माना है। मांगां व समर्थनों का स्वरूप और स्तर क्या है और कैसा होगा? यह संस्कृति के स्वरूप अर्थात संकीर्ण संस्कृति, अधीन संस्कृति और सहभागी संस्कृति अथवा नागरिक संस्कृति पर निर्भर करता है। राजनीतिक समाजीकरण के साधनों या माध्यमों के रूप में परिवार, शिक्षण संस्थान, पड़ौस या फिर सामाजिक पर्यावरण स्वयंसेवक समूह, नागरिक संगठन, जनसंपर्क के साधन, सरकार, दबाव या हित समूह और राजनीतिक दल इत्यादि होते हैं। इनसे एक नागरिक आजीवन संशोधित परिवर्तित एवं परिवद्र्धित राजनीतिक शिक्षा ग्रहण करता है। अतः मांगों के समर्थन का आगत निरूपण राजनीतिक समाजीकरण द्वारा राजनीतिक संस्कृति ही होता है। यद्यपि राजनीतिक समाजीकरण और भर्ती एक साथ नहीं चलते तथापि दोनों एक दूसरे से घनिष्ठ रूप में जुड़े होते हैं परंतु राजनीतिक

समाजीकरण की प्रक्रिया सबको समान रूप से प्रशिक्षित नहीं करती है। अतः जन सक्रियता की प्रक्रिया में सभी व्यक्ति समान भागीदारी का निर्वहन नहीं करते हैं। समाजीकरण की प्रक्रिया राजनीतिक भर्ती का प्रेरणा स्रोत होती है जो कि राजनीतिक प्रणाली में व्यक्ति की सक्रियता का नियमन करती है व्यक्ति का राजनीतिकरण और भागीदारी आगत अर्थात मांग और समर्थन का स्वरूप प्रत्येक पर्यावरण में भिन्न-भिन्न होता है अर्थात् तीव्रता, प्रकृति, उग्रता, समर्थकों की संख्या, गुणवत्ता इत्यादि अलग-अलग होते हैं इसे आमण्ड ने आगत प्रक्रिया का महत्वपूर्ण भाग माना है।

2.हित स्वरूपीकरण या संयुक्तिकरणः

आमण्ड ने प्रकार्यों को तुलना एवं विश्लेषण का आधार माना है। उसके अनुसार यह रूपांतरण प्रक्रिया का प्रथम प्रवर्ग है, आमण्ड ने कुल छह प्रकार के प्रवर्ग माने है। यह मांग के रूपांतरण का प्रथम चरण है अर्थात् राजनीतिक समाजीकरण वह भर्ती की पृष्ठभूमि पर उत्पन्न व्यक्ति या समूह की अपेक्षाओं, आवश्यकताओं को राजनीतिक प्रणाली तक पहुँचाने योग्य मांग का स्वरूप देना। हितस्वरूपीकरण, राजनीतिक व सामाजिक सीमा की विभाजन रेखा है। जहाँ मांग का स्वरूप, शर्तें, नियम, प्रवृत्ति इत्यादि निर्धारित होते हैं। यह कृत्य संपन्न करने हेतु विशिष्ट संरचनाएँ होती है जैसे कि हित समूह, दबाव समूह या अन्य संगठन होते हैं यद्यपि अन्य संरचनाएं भी इस कार्य में भाग लेती हैं अर्थात् यहाँ विविधीकरण का उद्देश्य आमण्ड ने राजनीतिक प्रणाली के एकीकरण बताया है। अतः हितस्वरूपीकरण मांग का प्रतिपादक है जो निवेश प्रक्रिया से मांग को रूपांतरण प्रक्रिया में भेज देता है। आमण्ड ने हित समूह के चार प्रकार बताएं है। ऐसे हित समुह में प्रथम-संस्थागत हित समुह-जो कि संस्थाओं के रूप में निजि या अन्य स्वरूप में हो सकते है, ऐसे समुह व्यापारिक निकायों के रूप में या उनके भीतर पाये जाते है। दुसरे-गैर साहचर्य हित समुह-जो कि रक्त संबंधों, परिवार, प्रजाति, जाति, धर्म, क्षेत्र इत्यादि के आधार पर बनते है और अपने अनौपचारिक और अस्थायी हितों के लिए कार्य करते है। तीसरे हिंसक हित समुह या आंशिक या अचानक उदित होने वाले समुह या अनोमिक-जो कि राजनीतिक प्रणाली में परिस्थितियोंवश उदित होते है और इनके साथ ही समाप्त हो जाते है। ये समाज के विद्रोह के रूप में राजनीतिक प्रणाली में दिखायी देते है। चौथे साहचर्य हित समुह-जो कि विशिष्ट संरचनाओं के साथ और संयुक्त हितों के साथ जुडे हुए औपचारिक समुह होते है।

3.हित समूहीकरणः

यह रूपांतरण प्रक्रिया का दूसरा चरण है जहाँ पर अनेक समूहों के द्वारा रखी गई बहुत सारी या असंख्य मांगों को समन्वित या एकीकृत अथवा संयुक्तीकरण का स्वरूप प्रदान किया जाता है। मांगों को कम करना या न्यूनतम स्तर पर लाना ही हित समूहीकरण का कार्य कहलाता है। यहां अनेक मांगों को पारस्परिक सहमति से निर्णय कर सामान्य मांग का स्वरूप दे दिया जाता है। इस अनौपचारिक कृत्य को संपन्न करने के लिए विशेष संरचना राजनीतिक दल होते हैं। इस प्रक्रिया में तीन तत्वों का महत्वपूर्ण योगदान होता है।

प्रथम हितसमूहीकरण की अभिक्रिया या माध्यम जो कि राजनीतिक अथवा अन्य संस्थाएँ और संगठन हैं। इनके अभाव में बिखरी हुई मांगों को सामान्य स्वरूप देना संभव नहीं हो सकता है। दूसरा हितसमूहीकरण की शैली या तरीका जिसमें सौदेबाजी, परम्परागत मूल्य आधारित या परंपरागत शैली जो की विकासशील देशों में प्रभावी होती है। तीसरे स्वरूप में हित स्पष्टीकरण का परिणाम शामिल किया गया है अर्थात् व्यवस्था पर क्या प्रभाव पड़ता है?

4.राजनीतिक सम्प्रेषणः

संपूर्ण राजनीतिक प्रणाली के भीतर और बाहर समाज में ;राष्ट्रीय और अंतर्राष्ट्रीय दोनोंद्ध राजनीतिक संचार सबसे महत्वपूर्ण रूपांतरण कृत्य हैं जिसके अभाव में व्यवस्था या संरचना कोई कार्य नहीं कर सकती है। संप्रेषण प्रत्येक प्रकार के संगठन का अपरिहार्य कारक होता है। समाज व अन्य व्यवस्थाएं संचार प्रक्रिया से ही आपस में कार्य कर पाती हैं। इस कृत्य की संरचना जन संचार के साधनों को माना गया है जो कि अनौपचारिक, प्रत्यक्ष या व्यक्तिगत संचार हो सकता है अथवा परंपरागत सामाजिक संरचना, परिवारिक संगठन, औपचारिक संरचना या राजनीतिक दल दबाव समूह, हित समूह अथवा जनसंचार, रेडियो, टेलीविजन, समाचार पत्र, सिनेमा, इंटरनेट अन्य रूपांतरण और निर्गत प्रक्रिया संचार से ही संचालित होती है। संचार प्रणाली का स्तर, चेतना ,तरीका, लक्ष्य पूरी प्रक्रिया को प्रभावित ;नकारात्मक या सकारात्मक रूप में करते हैं।

5.नियम-निर्माण का कृत्यः

इसे आधिकारिक या सत्तात्मक रूपांतरण कहा जाता है जो मुख्यतः औपचारिक संरचना द्वारा किया जाने वाला बाध्यकारी वैध नियम निर्माण है और व्यवस्थापिका या विधायिका इस औपचारिक कृत्य को संपन्न करने वाली औपचारिक संरचना होती है। यह औपचारिक रूपांतरण का प्रथम चरण है व्यवस्थापन के स्थान पर नियम निर्माण शब्द का प्रयोग उस आधुनिक जटिल संरचना के कारण किया गया है जहाँ तक यह कार्य अन्य संस्थाओं द्वारा भी किया जाता है अर्थात एकीकरण के लिए विभेदीकरण संरचनाओं का विभिन्नकरण और विशेषीकरण कार्यात्मक संदर्भ में होता है अर्थात् विशिष्ट कृत्य के लिए विशिष्ट संरचना होती है तथापि यह कभी भी अनेक संरचनाओं के द्वारा एक ही कार्य का प्रतिरोध नहीं है जैसे कि नियम निर्माण समाज, दल, समूह, संगठन, कार्यपालिका व न्यायपालिका भी करती है अथवा न्यायिक पुनरावलोकन, अध्यादेश सभी नियम निर्माण का कार्य करते है। अतः व्यवस्थापन कार्य भले ही व्यवस्थापिका करती हो परंतु नियम निर्माण का कृत्य केवल उसी के द्वारा किया जाने वाला अनन्य कार्य नहीं है। ये दोनों अलग-अलग होते हैं।

6.नियम अनुप्रयोगः

नियम निर्माण की तरह ही नियम प्रयुक्ति या अनुप्रयोग या क्रियान्वयन प्रकार्यात्मक संदर्भ है कोई कार्य नहीं है अपितु यह कृत्य है। अतः कार्यपालिका या कार्यपालक के कार्य के स्थान पर नियम अनुप्रयोग शब्द का प्रयोग किया गया है जो उससे अधिक व्यापक

और यथार्थवादी और संपूर्ण रूपांतरण प्रक्रिया में ही निहित होता है। आलमंड और पॉवेल ने औपचारिक नियम अनुप्रयोग, इकाई नौकरशाही के साथ-साथ अनौपचारिक नियम प्रयुक्ति, संरचना, राजनीतिक दल, दबाव समूह या नागरिक संगठनों को शामिल किया है। यह आधुनिक समाजों का लक्षण है जबकि विकासशील समाजों में नहीं, जहाँ अनौपचारिक संरचनाएँ विकसित या प्रभावी या निष्क्रिय होती हैं। अंततः नियम प्रयुक्ति, रूपांतरण प्रक्रिया केवल एक संरचना कार्यपालिका से ही संबंधित न होकर संपूर्ण राजनीतिक प्रणाली के अनेक भागों में निहित होती है।

7.नियम अधिनिर्णयः

'न्याय करना' या न्यायालय का कार्य, उसका कार्य हो सकता है परंतु नियम अधिनियम की एक सुनिश्चित एवं विशिष्ट संरचना केवल न्यायालय के द्वारा ही इसे निष्पादित किया जाता है यह सही नहीं है। अन्य संरचनाओं के द्वारा भी नियम अधिनिर्णय का कार्य किया जाता है। ऐसा कृत्य रूपांतरण प्रक्रिया की अन्य संरचनाएं भी करती हैं तथापि यदि न्याय पालन के कार्य को स्वतंत्र व विशेष स्वरूप दिया जाए तो श्रेष्ठ होगा जैसे कि फ्रांस के प्रशासनिक न्यायालय और ब्रिटिश लॉर्ड सभा या प्रिवी कौसिंल इसी के उदाहरण हैं।

निर्गत प्रणालीः

आमंड व पॉवेल ने निर्गत प्रक्रिया के अंतर्गत रूपांतरण को शामिल नहीं किया है। उसके अनुसार निर्गतों का संबंध भी निवेशकों की तरह ही राजनीतिक समाजीकरण और भर्ती से होता है। यह निर्गत, आगतों की मांगों व समर्थनों के समान ही होते हैं। निर्गतों के सामान्यतया चार प्रकार होते हैं अर्थात् दोहन निर्गत कर वसूली, व्यक्तिगत सहयोग, सेवाएं व योगदान इत्यादि दोहन निर्गत होते है। विनियामक निर्गत जैसे कि मानवीय व्यवहार पर नियंत्रण और उसका नियमन। वितरण निर्गत जैसे कि वस्तु सेवा, लाभ, सम्मान पद, पुरस्कार और अवसर का वितरण इत्यादि। प्रतीकात्मक निर्गत जैसे कि राजनीतिक प्रतीकों, राष्ट्रीय प्रतीकों, मानकों, आदर्शों का सम्मान करना प्रतिकात्मक निर्गत है।

संरचनात्मक-प्रकार्यात्मक उपागम की कमियाँ या आलोचनाएंः

इस उपागम की निम्न आधारों पर अनेक आलोचनाएँ की गई है-

1. *यह भी यथास्थिति का समर्थन करता है यद्यपि यह गतिशील है।*
2. *यह उपागम व्यवस्था के अनौपचारिक कृत्यों व संरचनाओं पर ध्यान देता है।*
3. *यह सिद्धान्त विभेदीकरण, विशेषीकरण एवं एकीकरण के अंतः निर्भर स्वरूप को स्पष्ट करने में भ्रांतिपूर्ण है।*
4. *यह संरचना व उसके कृत्यों को अत्यधिक जटिल बनाता है।*
5. *यह उपागम राजनीतिक व्यवस्था की स्वायत्तता पर अधिक बल देता है।*

आमण्ड व पॉवेल के सिद्धान्त की उपयोगिता :

1. *यह एक वैज्ञानिक, सुसंगत व समग्रवादी सिद्धांत प्रस्तुत करता है।*
2. *विकासात्मक उपागम के रूप में तुलनात्मक राजनीति को स्वतंत्र विषय के रूप में आगे बढ़ने का अवसर देता है।*
3. *सामाजिक एवं राजनीतिक प्रणालियों की अंतर क्रियाओं का सही स्पष्टीकरण करता है।*
4. *राष्ट्रीय व अंतरराष्ट्रीय दोनों प्रकार के परिवेश को महत्व देता है।*

राजनीतिक संप्रेषण सिद्धांत

यूनानी राजनीतिक चिंतन के पिता अरस्तु के द्वारा मनुष्य को सामाजिक और राजनीतिक प्राणी के रूप में अभिवयक्त गया है। बीसवीं शताब्दी के लोकतांत्रिक युग में मनुष्य का राजनीतिक समाजीकरण और राजनीतिकरण ;राजनीतिक सहभागिता के अर्थ मेंद्ध हो गया है। लोकतांत्रिक व्यवस्थाओं में राजतंत्र और निरंकुश शासन व्यवस्थाओं की अपेक्षा नागरिकों की सक्रियता बहुत अधिक बढ़ गई है। सहभागिता के माध्यम से वे अपने प्रतिनिधियों का निर्वाचन करते है तथा उन पर नियंत्रण रखने में समर्थ हो पाते हैं। विज्ञान और तकनीकी विकास ने इसे अधिक आसान बना दिया है। संचार के साधनों के माध्यम से राजनीतिक संचार की प्रक्रिया बहुत अधिक आसान हो गई है। यह राजनीतिक समाजीकरण के रूप में राज्य की समाज में अधिकाधिक बढ़ती भागीदारी का स्वरूप है। राजनीतिक सहभागिता और तुलनात्मक राजनीति के आधुनिक विकास के स्वरूप ने राजनीतिक संचार की नवीन अवधारणा को स्थापित किया है। वर्तमान राजनीतिक दुनिया में व्यापक स्तर पर राजनीतिक बदलाव आ रहे हैं। इन राजनीतिक परिवर्तनों का अध्ययन करने में तुलनात्मक राजनीति के उपागमों ने निर्णायक भूमिका का निर्वहन किया है। राजनीतिक व्यवस्था की प्रकृति, उसकी कार्यशैली, क्षमता, सामर्थ्य और विकास की गति का निर्धारण उस राजनीतिक व्यवस्था में विद्यमान जनसंपर्क और संचार के साधनों पर भी निर्भर करता है। अतः हम कह सकते हैं कि राजनीतिक संचार की संकल्पना राजनीतिक व्यवस्था की कार्यप्रणाली को समझने में महत्वपूर्ण सहायता करती है। तुलनात्मक राजनीति में राजनीतिक प्रणाली और पर्यावरण के संदर्भ में ज्ञान अर्जित करने के लिए और उनके बीच होने वाली अथवा निष्पादित अंतर क्रियाओं को समझने में नवीन राजनीतिक सिद्धांतों ने प्रभावी योगदान दिया है। समसामयिक राजनीति के इन सिद्धांतों में से एक सिद्धान्त है राजनीतिक संचार। यह परम्परागत एवं आधुनिक श्रेणी के बाद तीसरी श्रेणी का तुलनात्मक राजनीतिक सिद्धांत है। परम्परागत प्रतिमान औपचारिक प्रणालियों के बारे में, आधुनिक प्रतिमान इन औपचारिक प्रणालियों के अभिकर्ताओं के व्यवहार के बारे में और समसामयिक

सिद्धांत इन अभिकर्ताओं के व्यवहार को निर्धारित करने वाले कारकों या परिवेश के प्रतिमानों का व्यवहार पर पड़ने वाले प्रभाव का विश्लेषण करते है।

राजनीतिक संचार का अर्थ और परिभाषा :

राजनीतिक संचार शब्द दो शब्दों से मिलकर बना है अर्थात् राजनीतिक और संचार या संप्रेषण। राजनीतिक से हमारा अभिप्राय सार्वजनिक जीवन से है और संप्रेषण से हमारा अर्थ सूचना, विचार का एक पक्ष से दूसरे पक्ष की ओर आदान-प्रदान होने से है। इन दोनों को सामूहिक रूप से राजनीतिक संप्रेषण के नाम से जाना जाता है। आधुनिक समय में संचार की अवधारणा सर्वप्रथम अमेरिकी गणितज्ञ और दार्शनिक चिंतक नोरबर्ट वीनर के द्वारा प्रतिपादित की गई है। उनके द्वारा संचार संबंधी ज्ञान और अध्ययन प्रणाली को 'साइबरनेटिक्स' का नाम दिया गया है। विनर के विचारों में संप्रेषण का मतलब सूचना का एक पक्ष से दूसरे पक्ष तक पहुँचने और उस पर प्रभाव डालने से है। इसका मतलब केवल सूचना का आदान-प्रदान ही राजनीतिक संप्रेषण नहीं होता है अपितु राजनीतिक प्रणाली से संबंधित इन सूचनाओं के आदान-प्रदान का कार्यप्रणाली पर निर्णायक भी प्रभाव होना चाहिए।

- राबर्ट सी नॉर्थ के अनुसार " जीवन में पर्यावरण से सूचना को प्राप्त करना, कुछ सूचना का पर्यावरण के साथ समन्वय करने में प्रयोग करना और बाहरी पर्यावरण के साथ प्रभावी ढंग से स्थापित करने की प्रक्रिया ही संचार है।" सूचना का अर्थ केवल सूचना को संदेश भेजने वाले से संदेश प्राप्त करने वाले तक सूचना पहुँच ही नहीं है अपितु जिस अर्थ में प्रेषक ने सूचना भेजी हो, प्राप्तकर्ता के द्वारा सूचना को उसी अर्थ में समझा जाए, इससे होता है। यह अपरिहार्य होता है अन्यथा संप्रेषण प्रक्रिया में बाधा उत्पन्न हो जाती है।
- राजनीतिक प्रणाली का ताना-बाना, संप्रेषण प्रक्रिया, राजनीतिक व्यवस्था और पर्यावरण के बीच अनवरत रूप से गतिशील रहता है। राजनीतिक संचार प्रक्रिया गतिशीलता और सक्रियता के माध्यम से राजनीतिक प्रणाली के विभिन्न अंगों को क्रियाशील बनाए रखती है। राजनीतिक संप्रेषण राजनीतिक प्रणाली और सामाजिक प्रणाली के बीच अथवा राजनीतिक प्रणाली और पर्यावरण के बीच संचालित होने वाली सतत् प्रक्रिया है। राजनीतिक संप्रेषण प्रणाली वास्तविक अर्थ में राजनीतिक व्यवस्था के संबंध में सूचनाएं प्राप्त करती है निर्णय लेती है उन निर्णयों को लागू करने में सहायता करती है।
- कार्ल डॉयच के अनुसार ''राजनीतिक संप्रेषण प्रणाली राजनीतिक व्यवस्था की निर्णयन प्रक्रिया से संबंधित होती है।'' यह सूचनाओं का अनवरत प्रवाह है जो राजनीतिक प्रणाली के लिए निर्णय प्रक्रिया में प्रति संभरण या फीडबैक का कार्य करता है अर्थात् निर्णयन प्रक्रिया सूचनाओं पर आधारित होती है। इसीलिए राजनीतिक संचार, राजनीतिक

प्रणाली के लिए आगत-निर्गत प्रक्रिया को गति प्रदान करता है।

- राजनीतिक संप्रेषण प्रक्रिया को कॉल डायच, डेविड एप्टर, नॉरबिट विनर, लर्नर इत्यादि ने संचार सिद्धांत के रूप में प्रस्तुत किया है जबकि आमण्ड और पॉवेल ने अपने संरचनात्मक प्रकार्यात्मक विश्लेषण में राजनीतिक संप्रेषण को प्रक्रिया के रूप में शामिल किया है। उपर्युक्त विचारों के आधार पर निष्कर्ष के रूप में कहा जा सकता है कि राजनीतिक संचार राजनीतिक प्रणाली की आदान-प्रदान की व्यवस्था से संबंध रखता है। राजनीतिक संचार आगत-निर्गत के रूप में सूचनाओं को व्यवस्था के एक भाग से दूसरे भाग तक गत्यात्मक स्वरूप में संचालित करता है।

राजनीतिक संप्रेषण की प्रकृतिः

सामान्य स्वरूप में राजनीतिक संचार, संचार की व्यापक अवधारणा का केवल एक पक्ष है अर्थात् राजनीतिक पक्ष जिसे राजनीतिक संचार के नाम से जाना जाता है। राजनीतिक संचार को एक सिद्धांत के रूप में अभिव्यक्त करने के कारण विभिन्न राजनीतिक विद्वानों ने इसे अलग-अलग स्वरूप में प्रस्तुत किया है जैसे कि डॉयच ने इसे 'संचार प्रतिमान और निर्णय व्यवस्थाओं' के रूप में प्रतिपादित किया है। सी नॉर्थ ने विश्लेषणात्मक संभावनाओं के रूप में व्यक्त किया है। एडवर्ड सील्स ने इसे राजनीतिक अभिव्यक्ति के स्वरूप में समझाया है जबकि मौजे इसे राजनीतिक समाजीकरण से संबंधित मानता है। इनका मूल उद्देश्य राजनीतिक संचार को अमूर्तिकरण या प्राक्क्लपनाके स्वरूप में राजनीतिक प्रणाली अथवा उसके पक्षों के साथ संबंध स्थापित करने के रूप में अभिव्यक्त करना रहा है। यह ठीक वैसे ही है, जैसे कि राजनीति विज्ञान में व्यवहारवाद ने राजनीति विज्ञान को प्राकृतिक विज्ञानों के समकक्ष बनाने का प्रयास किया गया था।

वास्तविक स्वरूप में राजनीतिक संचार केवल राजनीतिक व्यवस्था से संबंधित सूचना प्रणाली का एक पक्ष है। इसकी प्रकृति को राजनीतिक प्रणाली के संदर्भ में ही स्पष्ट किया जा सकता है। यह राजनीतिक अभियंत्रण या अभियांत्रिकी से जुड़ी हुई अवधारणा है जो राजनीतिक प्रणाली को गत्यात्मकता या गतिशीलता प्रदान करती है। राजनीतिक प्रणाली एक मशीन की तरह है जिसको कार्य करने के लिए सूचनाओं की आवश्यकता होती है और ये सूचनाएँ राजनीतिक व्यवस्था तक राजनीतिक संप्रेषण की प्रक्रिया के द्वारा पर्यावरण से प्राप्त करके पहुँचाई जाती हैं। राजनीतिक संप्रेषण प्रक्रिया आगत के रूप में पर्यावरण से सूचनाओं को राजनीतिक प्रणाली तक और राजनीतिक प्रणाली की निर्णयन प्रक्रिया से सूचनाओं को पर्यावरण तक पहुँचाती है। ऐसी सूचनाएँ प्रति-संभरण या फीडबैक के माध्यम से पर्यावरण से होते हुए उन्हें राजनीतिक प्रणाली तक नवीन सूचना के रूप में पहुंचती हैं। इस तरह से राजनीतिक संचार राजनीतिक व्यवस्था में निर्णय प्रणाली के लिए एक सत्त चक्रीय प्रवाह की सामग्री का काम करता है। इसके माध्यम से राजनीतिक प्रणाली और

पर्यावरण एक दूसरे से और अनेक अंगों या भागों से संबंधित होकर कार्य करते रहते हैं। इसे ही राजनीतिक संचार के नाम से जाना जाता है। अतः राजनीतिक संप्रेषण की प्रकृति राजनीति विज्ञान अथवा तुलनात्मक राजनीति की प्रकृति से ही संबंधित है।

राजनीतिक संचार के माध्यम या संरचनाएँ अथवा वाहिकाएँः

संचार के माध्यम से हमारा अभिप्राय उन चैनल से है जिनसे होकर राजनीतिक संचार पर्यावरण से राजनीतिक व्यवस्था तक और राजनीतिक प्रणाली से पर्यावरण तक पहुँचता है अर्थात सूचना किस माध्यम से होकर एक पक्ष से दूसरे पक्ष की ओर गमन अथवा प्रवाह करती है जैसे कि जनसंचार के साधन अथवा अन्य संरचनाएं।

इन संरचनाओं की प्रकृति अथवा उनका स्वरूप किसी राजनीतिक प्रणाली के विकास के स्तर का प्रतीक भी होता है अर्थात् वह राजनीतिक दृष्टि से विकसित है या अविकसित अथवा विकासशील। आमण्ड और पॉवेल ने राजनीतिक संचार की संरचनाओं को सामान्यतया 5 स्वरूपों में विभाजित किया है :-

1. **अनौपचारिक, प्रत्यक्ष व्यक्तिगत संरचनाएं**
2. **परंपरागत सामाजिक संस्थाएं**
3. **राजनीतिक निर्गतों की संरचनाएँ**
4. **राजनीतिक आगतों या निवेशकों की संरचनाएं**
5. **जनसंचार की संरचनाएं**

अनौपचारिक, प्रत्यक्ष व्यक्तिगत संपर्क संचार का ऐसा माध्यम है जो संप्रेषण की अन्य संस्थाओं और व्यवस्थाओं से स्वतंत्र होता है अर्थात इन पर किसी का नियंत्रण नहीं होता है जैसे कि जनसंचार के साधन, रेडियो, टेलीविजन, समाचार पत्र, इंटरनेट, सोशल मीडिया, फेसबुक, ट्विटर, व्हाट्सएप, इंस्टाग्राम इत्यादि। ये सभी संचार के प्रभावी साधन हैं। इनकी अपेक्षा व्यक्तिगत संपर्क का अधिक प्रभाव पड़ता है। राजनीतिक समाज में सामाजिक प्राणी के रूप में व्यक्ति अनेक राजनीतिक गतिविधियों का संचालन करता है। ऐसा व्यक्ति जो समाज में अधिक संपर्क रखता है । वह अपने मित्रों, साथियों, समाज के लोगों के माध्यम से राजनीतिक संचार को विस्तृत स्वरूप में प्रचारित करता है जैसे कि राजनीतिक प्रतिनिधि, समाज का मुखिया, इन पर विश्वास करना आसान होता है। यह आमने-सामने का संचार साधन है।

राजनीतिक सम्प्रेषण सिद्धान्तः

यह व्यवस्था विश्लेषण सिद्धांत का तीसरा संप्रत्यय है। ईस्टन व आमंड के पश्चात् कार्ल डॉयश तीसरे राजनीतिक चिंतक है जो कि राजनीतिक व्यवस्था की कार्यप्रणाली को इंजीनियरिंग या मशीनी प्रणाली के आधार पर स्पष्ट करते है। इसे नियंत्रण और संप्रेषण का विज्ञान भी कहा जाता है। प्रत्येक संगठन भले ही किसी भी प्रकार का हो संप्रेषण प्रक्रिया के

बिना उसका संचालन तथा विभागों में समन्वय और विचारों का आदान-प्रदान संभव नहीं हो सकता है। अतः इस सिद्धांत का मूल उद्देश्य है राज्य रूपी संगठन या राजनीतिक व्यवस्था में नियंत्रण व संचार प्रणाली का विश्लेषण करना।

कार्ल डॉयश के अनुसार प्रत्येक संगठन निश्चित आधारभूत लक्षण रखता है और वह संप्रेषण प्रक्रिया के माध्यम से आगे बढ़ता है। सरकार भी एक संगठन है जो कि सूचना और संप्रेषण प्रणाली द्वारा अथवा आगत निर्गत प्रक्रिया के माध्यम से कार्यो का निष्पादन करता है। डॉयच ने राजनीतिक संप्रेषण व नियंत्रण प्रतिमान का विश्लेषण किया है। इस उपागम को इनफार्मेशन कम्युनिकेशन एंड चैनल्स के रूप में समझा जा सकता है। सूचना संगठन के संचालन का प्राथमिक घटक है जो इनपुट के रूप में फीडबैक द्वारा पुनः सर्जित होकर गतिमान रहता है।

राजनीतिक सम्प्रेषण सिद्धान्त की मुख्य विशेषताएं :

1. पुनः निवेश चक्र इस उपागम का केंद्रीय बिंदु होता है।
2. डायश के अनुसार ''फीडबैक एक संप्रेषण परिसंचरण तंत्र है जो अनुक्रिया शीलता से आदतन सूचना को प्रयोग यूज करता है अतः इसे सर्वोमैकेनिज्म भी कहा जाता है।''
3. राजनीतिक प्रणाली सहित सभी प्रणालियों में फीडबैक मेकैनिज्म गतिशीलता उत्पन्न करता है अन्यथा संगठन स्थित रिक्तता को प्राप्त कर लेता है।
4. उपागम में फीडबैक, इंफॉर्मेशन, चैनल्स, कंट्रोल, लोड, लॉग इन एंड लीड इत्यादि महत्वपूर्ण शब्दावलियाँ आयी हैं।

इस प्रकार व्यवस्था सिद्धांत की तीनों ही प्रतियों का मूल उद्देश्य प्रणाली को बनाए रखने अनुकूलित करने एवं संरक्षित करना है यह उपागम राजनीतिक प्रणाली को वैज्ञानिक व तकनीकी स्वरूप प्रदान करता है अतः यह मूलतः एक अभियांत्रिकी उपागम या इंजरिंग एप्रोच है जो मानव व संस्थाओं में संबंध स्थापित करता है।

13

राजनीतिक आधुनिकीकरण एवं राजनीतिक विकास

राजनीतिक आधुनिकीकरणः

आधुनिकीकरण का सिद्धान्त मूलतः प्रथम दुनिया के शोधार्थियों द्वारा तीसरी दुनिया के समाजों की वास्तविकता को स्पष्ट करने का प्रयास है। आधुनिकीकरण पश्चिमी अवधारणा है। यह परम्परागत एवं आधुनिक समाजों के बीच का विभाजन या प्रथक्करण है। यह अन्तराल टेल्काट पार्सस से मैक्सवेबर के विचारों तक स्पष्टतः दिखायी देता है। परम्परागत समाज का आधुनिक समाज में रूपांतरण ही राजनीतिक आधुनिकीकरण होता है। आधुनिक समाज अर्थात् ऐसा समाज जिसमें व्यक्ति का अभिज्ञान, राजनीतिक व्यवस्था और उसके विभिन्न पक्षों से होने लगता है, यह औद्योगीकरण, लौकिकीकरण, शहरीकरण, लोकतांत्रिकरण, सहभागिता से आगे तक की प्रक्रिया है। राजनीतिक आधुनिकीकरण उपागम, राजनीतिक विकास के उपागम के साथ निकटता से जुड़ा हुआ है। आधुनिकीकरण सामान्य रूप से विकास की एक क्रिया या प्रक्रिया है। यह एक बहुमुखी या बहुपक्षीय प्रक्रिया है तथापि राजनीतिक आधुनिकीकरण केवल आगे की ओर बढ़ने वाली या प्रगतिशील प्रणाली है, उसके साथ पतन या क्षय की स्थिति जुड़ी हुई नहीं होती है। यह सामान्यतया सामाजिक व भौतिक परिवेश में सांस्कृतिक रूपान्तरण की प्रक्रिया होती है। दूसरे शब्दों में यह सामाजिक-आर्थिक घटकों के साथ आन्तरिक रूप से जुड़ी होती है। हण्टिग्टन ने इसे ''मानवीय चिंतन और गतिविधियों से सम्बन्धित सभी क्षेत्रों में परिवर्तन लाने वाली बहुमुखी प्रक्रिया के रूप में अभिव्यक्त किया है।''

राजनीतिक विकास में राजनीतिक संरचनाओं पर अधिक ध्यान केन्द्रित किया गया इसलिए विद्वानों ने ऐसे उपागम की आवश्यकता महसूस की जिसमें राजनीतिक प्रणाली का एक समग्र दृष्टिकोण से अध्ययन किया जा सके। राजनीतिक संस्कृति और राजनीतिक संस्थाओं में होने वाला परिवर्तन आधुनिकीकरण का ही परिणाम होता है। आधुनिक राजनीतिक प्रणाली में लोग राजनीति में निकटता से जुडे होते है; वे नियमित रूप से अपने

विचारों व मांगों का सम्प्रेषण करते है; वे शासकीय नीतियों पर अपनी सहमति व्यक्त करते है; और इस वैधता को महसूस करती है तथा लोगों का समर्थन व सहयोग करती है। परम्परागत समाज इसकी अपेक्षा प्रतिरोधी होता है जहाँ पर केवल कर संग्रहण, कानून, व्यवस्था और रक्षा का कार्य करने पर ही ध्यान दिया जाता हैं। यहाँ लोग राजनीति में भाग नहीं लेते है और सरकार के द्वारा ही शक्ति अनुप्रयोग किया जाता है। यह सामाजिक (बौद्धिक एवं मनोवैज्ञानिक सहित) आर्थिक व राजनीतिक स्तर पर सकारात्मक बदलाव की प्रणाली है। कार्ल डाय्श ने अपने लेख के अन्तर्गत इसे पुरानी सामाजिक, आर्थिक एवं मनोवैज्ञानिक प्रतिबद्धताओं का खण्डन करने या समाप्त करने वाली प्रक्रिया बताया है जिससे कि लोग समाजीकरण एवं व्यवहार की शैलियों को अपना सकें।

राजनीतिक आधुनिकीकरण का अर्थ एवं परिभाषा :

राजनीतिक आधुनिकीकरण के सिद्धान्त का उदय 1950-1960 के दशक में अर्थशास्त्र, राजनीतिक विज्ञान व समाजशास्त्र के शोधार्थियों के समूह के निर्देशन में हुआ। आधुनिकता की संक्लपना, साधारणतया समानता, क्षमता, विभेदीकरण, विशेषीकरण, संस्कृति के निरपेक्षीकरण, सामाजिक संचारण, जनसहभागिता इत्यादि की अपरिहार्यता रखती है। अतः अनेक विचारकों ने इस मान्यता को स्थापित किया कि राजनीतिक आधुनिकीकरण ही वह प्रक्रिया है जिसके माध्यम से राजनीतिक विकास के लक्ष्य की प्राप्ति होती है। राजनीतिक आधुनिकीकरण की प्रक्रिया अनवरत चलती है उसे अवरूद्ध तो किया जा सकता है परन्तु रोका नहीं जा सकता है जैसे कि राजनीतिक विकास को रोक दिया जाता है। प्रत्येक समाज में आधुनिकीकृत बनने की प्रवृत्ति स्वतः ही स्फूर्त होने लगती है। अतः हर समाज आधुनिकता की चाह रखता है अर्थात् राजनीतिक आधुनिकीकरण समाज की आधुनिकीकरण की प्रक्रिया से प्रेरित, प्रभावित और निरूपित होता है। राजनीतिक आधुनिकीकरण, आधुनिकीकरण की सामान्य अवधारणा का ही एक प्रकार है तथापि इसके अर्थ व परिभाषाओं को लेकर अनेक विचारकों में मतभेद बना हुआ है। राजनीतिक आधुनिकीकरण का अर्थ अनेक सन्दर्भों में अभिव्यक्त किया गया है।

- *कौलमेन के शब्दों में, "यह सक्रान्तिकालीन समाजों की राजनीतिक व्यवस्था में होने वाला संरचनात्मक एवं सांस्कृतिक परिवर्तनों का समूह है। इसका सम्बन्ध राजनीतिक प्रणाली से सम्बन्धित पहलुओं (आर्थिक, सामाजिक, राजनीतिक) को लेकर मानवीय दृष्टिकोण में बदलाव से है। यह राजनीतिक व्यवस्था, उसकी संस्थाओं, संरचनाओं, प्रक्रियाओं एवं व्यवहार के प्रतिमानों से सम्बन्धित धारणा है।" उसके अनुसार राजनीतिक आधुनिकीकरण ऐसे संस्थागत ढांचे का विकास है जो पर्याप्त लचीला हो और इतना शक्तिशाली हो कि उसमें उठने वाली मांगों का मुकाबला कर सके अर्थात् राजनीतिक व्यवस्था का विकास ही राजनीतिक आधुनिकीकरण होता है।*
- *प्रो. एस.पी.वर्मा - "राजनीतिक विकास की तरह ही इसे परिभाषित करना कठिन है।"*

- *वेल्च के अनुसार "आधुनिकीकरण वह प्रक्रिया है जो साधनों के विवेकपूर्ण उपयोग पर आधारित होती है और आधुनिक समाज की स्थापना के उद्देश्य से युक्त होती है।"*
- *लर्नर ने अपनी पुस्तक दि पासिंग ऑफ ट्रेडिशनल सोसायटीजः मॉडर्नाइजिंग दि मिडल ईस्ट,1958 में लिखा है कि "आधुनिकीकरण विवेकपूर्ण परिवर्तन की प्रक्रिया है।"*
- *हण्टिग्टन के शब्दों में, "यह एक बहुपक्षीय प्रक्रिया है जिससे मानव की गतिविधियों एवं विचारों के सभी क्षेत्रों में परिवर्तन आ जाता है।"*
- *राबर्ट ई वार्ड के अनुसार "यह आधुनिक समाज की ओर ले जाने वाली प्रवृत्ति है जो वातावरण की भौतिक व सामाजिक दशाओं पर नियंत्रण रखती है और वांछनीय परिणामों के प्रति आशांन्वित रहती है।"*

राजनीतिक आधुनिकीकरण की विशेषताएँः

सामाजिक संचारण आर्थिक विकास और राजनीतिक परिवर्तन ही समाज में राजनीतिक आधुनिकीकरण का आह्वान करते हैं। इसकी प्रमुख विशेषताएं निम्न स्वरूपों में परिलक्षित होती हैं-

1. राजनीतिक व्यवस्था में निर्णायक शक्ति का संकेन्द्रकरण होना।

2. राजनीतिक व्यवस्था का समाज में अधिकाधिक प्रवेश।

3. राजनीतिक एवं सामाजिक प्रणाली में बढ़ती हुई अंतःक्रिया।

4. राजनीतिक संस्थाओं का विभिन्नीकरण एवं विशेषीकरण।

5. राजनीतिक व्यवस्था में जनसाधारण की बढ़ती सक्रिय सहभागिता

6. लोगों के राजनीतिक प्रणाली के प्रति अभिज्ञान

7. बृहत्तर एवं व्यापक आधार वाली नौकरीशाही।

राबर्ट ई. वार्ड, रोस्टोव, पार्सन्स, एडवर्ड शील्स, एप्टर इत्यादि के विचारों से निम्नलिखित विशेषताएं अभिव्यक्त होती है-

1.आधुनिकीकरण एक क्रान्तिकारी प्रक्रिया हैः

यह प्रत्यक्ष रूप से परम्परागत एवं आधुनिक समाज के बीच विभेद है। एक मौलिक रूप से दूसरे से विभिन्न होता है। परम्परागत से आधुनिक समाज में होने वाला परिवर्तन मानवीय जीवन के प्रतिमान में समग्र व पूर्णत बदलाव लाता है। परम्परागत से आधुनिकता की ओर विवर्तन कहते हैं कि यह परिवर्तन आदिम समाज से सभ्य समाज की ओर तथा आदि मानव से मानवीय अस्तित्व की ओर तुलनीय होता है।

2.आधुनिकीकरण एक जटिल प्रक्रिया है :

यह किसी एक पक्ष या आयाम के रूप इतनी आसान नहीं हो सकती है। यह मानवीय व्यवहार एवं चिंतन के क्षेत्र में व्यापक बदलाव को शामिल करता है। इसके मुख्य तत्वों में एक न्यूनतम स्तर पर औद्योगीकरण, नगरीकरण, सामाजिक संचारण, विभेदीकरण, तर्कोन्मुखीकरण, जनसंचार का विस्तार, शिक्षा में वृद्धि और राजनीतिक सहभागिता का

विस्तार इत्यादि शामिल है।

3.आधुनिकीकरण एक व्यवस्थित प्रक्रिया है :

यदि एक घटक में परिवर्तन होता है तो वह सम्बन्धित अन्य तत्वों में परिवर्तन को भी प्रभावित करता है। आधुनिकीकरण जैसा कि डेनियल लर्नर ने अभिव्यक्त किया है कि इसकी कुछ अपनी अन्तर्निहित गुणवत्ता होती है जो कि यह स्पष्ट करेगी कि सब लोग यह महसूस करते हैं। अपने नियमों के अनुसार कि वे क्यों एक साथ रहेंगे। आधुनिकीकरण में विविध घटक उच्च स्तरीय सह संगठन की तरह होते हैं क्योंकि कुछ ऐतिहासिक समझ के रूप में साथ-साथ चले थे।

4.आधुनिकीकरण एक वैश्विक प्रक्रिया है :

आधुनिकीकरण की धारणा 15-16वीं शताब्दी में यूरोप में उदित हुई लेकिन अब यह एक वैश्विक परिदृश्य बन गई है। यह मुख्यतया यूरोपीय केन्द्र से आधुनिक विचारों एवं तकनीकों के प्रसार के माध्यम से लाया गया तथापि या फिर भी गैर पश्चिमी समाजों के अंतहीन विकास के माध्यम से भी आया है। एक घटनाक्रम के रूप में सभी समाज एक समय पारम्परिक थे, सभी समाज अब या तो आधुनिक है या आधुनिक बनने की प्रक्रिया में है।

5.आधुनिकीकरण एक लम्बी प्रक्रिया है :

आधुनिकीकरण में होने वाले बदलावों की समग्रता केवल समय के माध्यम से ही हो सकती है। आधुनिकीकरण परम्परागत समाज की सीमाओं में बदालावों के लिए क्रान्तिकारी है जबकि यह बदलावों को लाने में समय अनुसार विकासवादी है। समाजों को आधुनिकीकृत होने के लिए नई शताब्दियों की आवश्यकता होती है।

6. आधुनिकीकरण एक चरणबद्ध प्रक्रिया है :

उन सभी चरणों या स्तरों को अलग करना असंभव है जिनके माध्यम से सभी समाज आगे बढ़े हैं। समाज स्पष्ट रूप से परम्परागत स्तर से शुरू होते है और आधुनिक स्टेज पर समाप्त होते हैं। मध्य अवस्था एक संक्रान्तिकालीन चरण है जबकि प्रक्रिया में नेतृत्व और आधुनिकता विस्तृत प्रतिमान एक समाज से दूसरे समाज में भिन्न होंगे, पर सभी समाज अनिवार्य रूप से एक ही चरण में आगे बढ़ेगें।

7.आधुनिकीकरण एक समावेशी या समग्र प्रक्रिया है :

वास्तव में पम्परागत समाज कुछ तर्क देते हैं जो आधुनिकता की कमी के अलावा बहुत कम सामान्य है। दूसरी तरफ आधुनिक समाज आधारभूत समानताओं को साझा करते हैं। यह आधुनिकता समाजों में अभिसरण की प्रवृत्तियो को जन्म देता है। आधुनिकीकारण में वह आन्दोलन शामिल है जो राजनीतिक दृष्टि से संगठित समाजों की अन्तःनिर्भरता और अन्ततः समाजों की समग्रता या एकीकरण की और अग्रसर होता है।

8.आधुनिकीकरण एक अपरिवर्तनीय प्रक्रिया है :

यह एक अचल प्रक्रिया है, हालांकि आधुनिकीकरण की प्रक्रिया के तत्वों या घटकों में अस्थायी विखण्डन व उतार-चढ़ाव हो सकता है। सामुहिक स्वरूप में आधुनिकीकरण एक

अनिवार्य पंथनिरपेक्ष प्रवृत्ति है। एक समाज जो कि एक दशक में नगरीकरण, औद्योगीकरण एवं शिक्षा के निश्चित स्तर तक पहुँच जाता है वह अगले दशक में बहुत निम्न स्तर तक नहीं गिरेगा। एक समाज से दूसरे समाज में परिवर्तन की दर भिन्न होगी परन्तु परिवर्तन की दिशा नहीं।

9.आधुनिकीकरण एक प्रगतिशील प्रक्रिया है:

आधुनिकीकरण की प्रगतिशील प्रक्रिया में आधुनिकता के आघात अनेक हैं और गहरे भी है परन्तु दीर्घकाल में ये अनिवार्य ही नहीं अपितु ये वांछनीय भी हैं। संक्रमण की अवधि में लागत एवं पीडा, विशेष रूप से इसके आरंभिक चरणों में परन्तु आधुनिक राजनीतिक, सामाजिक और आर्थिक व्यवस्था की महान उपलब्धियों की तुलना में कम हैं।

अतः उपर्युक्त विशेषताओं से मालूम होता है कि इसके लक्षणों की पूर्ण सूची बनाना आसान नहीं है। आज सम्पूर्ण मानवीय जीवन का ही राजनीतिकरण हो गया है। यदि इन्हें संक्षिप्त स्वरूप में देखें तो तीन महत्वपूर्ण लक्षण हो सकते हैं- (क) तार्किक सत्ता/बुद्धिसंगत सत्ता (ख) विभिन्नवृत या विभेदित राजनीतिक संस्थाएं (ग) राजनीतिक सहभागिता।

राजनीतिक आधुनिकीकरण को प्रभावित करने वाले तत्त्वः

राजनीतिक आधुनिकीकरण के अनेक नियामक होते हैं। उस पर विविध प्रकार के घटकों का प्रभाव पड़ता है जो कि सामाजिक, आर्थिक, सांस्कृतिक, धार्मिक व ऐतिहासिक इत्यादि पक्षों से सम्बन्धित होते है। प्रत्येक देश में इसके स्तर, दशाएँ व मात्राओं में भिन्नता होती है। इसके प्रमुख परिवर्त्य निम्नलिखित हैंः

1.परम्परावादी राजनीतिक संरचनाएं एवं संस्कृति :

किसी देश में विद्यमान राजनीतिक संरचना का परम्परागत स्वरूप एवं संस्कृति का स्वरूप राजनीतिक आधुनिकीकरण को बहुत अधिक प्रभावित करता है। जैसे कि नेपाल, भूटान या मध्यपूर्व/एशिया के देश। इन देशों के लिए हण्टिग्टन ने परम्परावाद से मुक्ति को ही राजनीतिक विकास/आधुनिकीकरण के रूप में व्यक्त किया है।

2.आधुनिकीकरण की ओर धकेलने वाली काल नियति :

किसी देश के ऐतिहासिक स्वरूप और उसकी नियति का भी राजनीतिक आधुनिकीकरण की प्रक्रिया पर व्यापक प्रभाव पड़ता है जैसे कि ब्रिटेन भारत या नेपाल। यह अपने आप में किसी राष्ट्र की नियति का परिणाम होता है।

3.राजनीतिक नेतृत्व की प्रक्रति एवं अभिमुखीकरण :

किसी राष्ट्र के नेतृत्वकत्ताओं और वहाँ की जनता के राजनीतिक अभिविन्यास का स्तर राजनीतिक आधुनिकीकरण को गति प्रदान करने में महत्वपूर्ण घटक की भूमिका का निर्वहन करता है। जैसे कि बांग्लादेश में शेख मुजीबुर्रहमान, भारत में इन्दिरा गाँधी के नेतृत्व की प्रकृति ने राजनीतिक आधुनिकीकरण की ओर अभिमुख किया है।

4.विद्यमान सामाजिक व्यवस्था या प्रणाली का स्वरूप :

राजनीतिक आधुनिकीकरण मूलतः सामाजिक संचारण का ही परिणाम होती है। अतः

समाज का चरित्र, समाजीकरण के स्वरूप एवं विकास को प्रभावित करता है। यदि परम्परागत प्रकृति वाला समाज होगा तो आधुनिकीकरण की गति बहुत मन्द होगी जैसे कि आज का अफगानिस्तानी समाज। परन्तु यदि समाज आधुनिक प्रकृति का हो तो आधुनिकीकरण की प्रक्रिया में तेजी आ जाती है।

5.राजनीतिक आधुनिकीकरण के प्रतिमानः

सामान्यतया यह निर्धारित करना कठिन है कि कोई राजनीतिक प्रणाली किसी एक सर्वमान्य प्रतिमान पर आधारित है और अन्य प्रणालियाँ भी उसका अनुगमन करके राजनीतिक आधुनिकीकरण के स्तर को प्राप्त कर लेती है। इस सम्बन्ध में दो तथ्यों पर ध्यान देना होगा प्रथम तो यह कि राजनीतिक आधुनिकीकरण का कोई सर्वव्यापी प्रतिमान नहीं होता है और दूसरा यह कि राजनीतिक आधुनिकीकरण का कोई अनुक्रमी या क्रमागत प्रतिमान नहीं होता है। प्रथम तो राजनीतिक आधुनिकीकरण का सर्वव्यापी प्रतिमान इसलिए नहीं हो सकता क्योंकि सभी सामाजिक व्यवस्थाओं में पर्याप्त भिन्नता एवं विविधता होती है। राजनीतिक प्रणाली में पहले तार्किकता और बाद में सहभागिता आ सकती है। जबकि कुछ प्रणालियों में पहले सहभागिता और बाद में तार्किकता आ सकती है। इसी तरह से कुछ प्रणालियों में केन्द्रीयकरण पहले एवं संरचनात्मक विभेदीकरण बाद में आता है। दूसरे पक्ष के रूप में राजनीतिक आधुनिकीकरण का कोई निश्चित प्रतिमान भी नहीं हो सकता है। राजनीतिक आधुनिकीकरण के परिवृत्यों में अनेकता पायी जाती है। यही कारण है कि पश्चिमी उदारवादी देशों में भी राजनीतिक आधुनिकीकरण का कोई निश्चित अनुक्रम नहीं रहा है। दो पड़ौसी राज्यों में भी आधुनिकीकरण का एक समान प्रतिमान नहीं होता है।

इन दोनों बातों के होते हुए भी एडवर्ड शील्स और डेविड एप्टर के दृष्टिकोण पर विचार करना उचित होगा।

1.एडवर्ड शील्स के अनुसार :

शिकागो विश्वविद्यालय में समाजवाद के आचार्य शील्स ने अपनी पुस्तक पॉलिटिकल डवलपमेण्ट इन न्यू स्टेटस,1962 और आलेख पॉलिटिकल मॉडर्नाइजेशन के अन्तर्गत राजनीतिक आधुनिकीकरण की प्रक्रिया का विवेचन करते हुए सम्पूर्ण विश्व की राजनीतिक प्रणालियां को 5 भागों में वर्गीकृत किया है जो कि पाँच प्रकार के भिन्न-भिन्न प्रतिमानों या प्रारूपों का भी प्रतिनिधित्व करती है।

1.राजनीतिक लोकतंत्रर:

यह राजनीतिक आधुनिकीकरण के उच्च स्तर तक पहुँचने का संकेतक है। राजनीतिक दृष्टि से लोकतांत्रिक व्यवस्था उसी प्रणाली को कहा जा सकता है जिसमें राजनीतिक आधुनिकीकरण के सभी लक्षण कम या अधिक मात्रा में पाये जाते हैं। शील्स के स्वयं के शब्दों में ‘‘राजनीतिक लोकतंत्र प्रतिनिधिक संस्थाओं और सार्वजनिक स्वतंत्रताओं के माध्यम से जनता द्वारा शासित शासन व्यवस्था है।’’ राजनीतिक लोकतंत्र का सही अर्थ

होगा जहाँ पर नियतकालिक निर्वाचन, वयस्क मताधिकार, सशक्त विपक्ष, स्वतंत्र एवं निष्पक्ष न्यायपालिका की व्यवस्था, विधि का शासन, सक्रिय जनसहभागिता, प्रतियोगी दलीय व्यवस्था, जनता, दल एवं सरकार में आत्मसंयम, इत्यादि की व्यवस्था है। अतः राजनीतिक खेल, खेल की भावना व नियमों के अनुरूप खेला जाए तो उसे ही राजनीतिक लोकतंत्र की व्यवस्था कहा जायेगा। इस श्रेणी में शील्स ने पश्चिमी राज्यों व जापान की राजनीतिक प्रणाली को शामिल किया है। उसके अनुसार पिछड़े या विकासशील देशों में राजनीतिक लोकतंत्र की संरचनात्मक व्याख्याएं तो पायी जाती हैं परन्तु लोकतंत्र के सामाजिक एवं संस्कृति सम्बन्धी पक्षों का अभाव रहता है। यद्यपि आंशिक रूप से भारत, श्रीलंका को इसमें रखा जा सकता है। परन्तु वास्तव में केवल इतनी व्यवस्था ही राजनीतिक लोकतंत्र के सर्वोत्कृष्ट स्वरूप के लिए पर्याप्त नहीं है।

2.अभिभाविकी लोकतंत्र:

राजनीतिक लोकतंत्र की संरचनाओं का व्यवहार में लागू नहीं होना ही अभिभाविकी लोकतंत्र का प्रतीक है। शील्स के अनुसार राजनीतिक लोकतंत्र तभी व्यवहारिक स्वरूप प्राप्त कर पाता है जब इसके अनुकूल परिस्थितियाँ हो लोकतंत्र के मानकों एवं मूल्यों के प्रति जनता में सामान्य प्रतिबद्धता, परिष्कृत राजनीतिक व्यवहार एवं दृष्टिकोण, आर्थिक एवं भौतिक दृष्टि से सुरक्षित जीवन, तथा औद्योगिकीकृत एवं आधुनिक समाज हो। अभिभाविकी लोकतंत्र में कुछ लोग लोकतंत्र के संरक्षक बन जाते हैं। ये लोग विधानमण्डल एवं राजनीतिक दलों की शक्ति को सीमित रखकर कार्यपालिका में शक्तियों का केन्द्रण कर लेते है जिससे कि देश में राजनीतिक लोकतंत्र की दशाओं को उत्पन्न किया जा सके। यद्यपि इसमें राजनीतिक लोकतंत्र की संरचनाओं का स्वरूप बना रहता है तथापि व्यवहार में सम्पूर्ण शक्ति अभिभावक नेताओं में बनी रहती है। यह व्यवस्था को राजनीतिक आधुनिकीकरण की ओर धकेलने वाली प्रक्रिया है। लोकतांत्रिक सिद्धान्तां में निष्ठा रखने वाले अभिजन अग्रणी भूमिका का निर्वहन करता है।

3.आधुनिकीकरणशील गुटतंत्र:

राजनीतिक अस्थिरता की स्थिति या विकासशील समाजों में लोकतंत्र का भविष्य ही अस्थिर हो जाता है। आम जनता लोकतांत्रिक अधिकारों का उपयोग करने लगे तो आर्थिक क्षेत्र को प्रभावी भूमिका मिलती है। इस दशा में राजनीतिक आधुनिकीकरण का मार्ग अवरूद्ध होने लगता है। जैसे 1946-58 तक 24 प्रधानमंत्रियों ने फ्रांस को हिलाकर रख दिया। चार्ल्स डि गाल इतने लोकप्रिय हुए कि उन्हांने संविधान ही अपने अनुरूप बनवा दिया अर्थात् फ्रांस की तरह ऐसे गुट लोकतंत्र का सामना करने वाली प्रणालियों में शासन निर्माता के रूप में कार्य करते हैं। ऐसे गुट नागरिक समूह अथवा सैनिक गुट के रूप में स्थापित होते हैं। यहाँ पर राजनीतिक आधुनिकीकरण की अपेक्षा सामाजिक एवं आर्थिक आधुनिकीकरण पर बल दिया जाता है। पाकिस्तान, लैटिन अमेरिकी एवं पूर्वी अफ्रीका व मध्यपूर्व ऐसे ही उदाहरणों वाले राष्ट्र हैं।

4.सर्वाधिकारी गुटतंत्र:

ऐसी शासन प्रणाली जहाँ कोई दल या समूह किसी विशेष राजनीतिक विचारधारा पर केन्द्रित होता है। लोग व संस्थाएं सब उसी का अनुगमन करती है। राजनीतिक सक्रियता का केन्द्र केवल राजनीतिक दल या राजनीतिक नेता होते है। प्रतियोगी राजनीति का पूर्णतः अभाव होता है। अतः एक भिन्न स्वरूप वाले राजनीतिक आधुनिकीकरण का प्रतिमान स्थापित हो जाता है। पिछडे समाज इसके आकर्षण का प्रमुख केन्द्र बन रहे हैं यद्यपि यह अनिवार्य रूप से जुड़ी हुई दशा नहीं है।

5. परम्परागत गुटतंत्र:

राजनीतिक व्यवस्था का यह वर्गीकृत स्वरूप राजनीतिक आधुनिकीकरण का प्रतिरोधी होता है। परम्परागतता एवं आधुनिकता का सहअस्तित्व मुश्किल होता है। परम्परागत से दूरी धीरे-धीरे ही क्रमागत रूप से संभव होती है। जैसे कि भारत में आजादी के तीन दशकों तक राजतंत्र (पेंशन व्यवस्था या प्रिविपर्स) विद्यमान था। यह औपचारिक स्तर की अपेक्षा अनौपचारिक स्तर पर अधिक पायी जाती है। ब्रिटेन जैसे आधुनिक राष्ट्र में आज भी औपचारिक स्तर पर भी परम्परागतता को देखा जा सकता है।

इस प्रकार से शील्स ने विश्व की राजनीतिक प्रणालियां को पाँच प्रतिमानों पर केन्द्रित मानकर वर्गीकृत किया है। यद्यपि सभी प्रकार की राजनीतिक प्रणालियां राजनीतिक आधुनिकीकरण के ध्येय को प्राप्त करने को अग्रसर होती है परन्तु उनकी अपनी एक अलग दिशा व दशा या गति भिन्न स्वरूप में होती है तथापि राजनीतिक आधुनिकीकरण के पथ पर सभी देश अग्रसर हैं।

डेविड ई एप्टर के अनुसार :

डेविड प्रथम अमेरिकी शोधार्थी हैं जिसने राजनीतिक आधुनिकीरण को शब्दार्थ प्रदान किया है। इन्होंने अपनी अन्य पुस्तक इण्ट्रोडक्शन टु दि पॉलिटिकल एनालाइसिस,1977 में आधुनिकीकरण की चार अवस्थाओं पर प्रकाश डाला है। एप्टर ने राजनीतिक आधुनिकीकरण का विवेचन चार अवस्थाओं के आधार पर किया है।

1.सम्पर्क एवं नियंत्रण:

17-19 वीं शताब्दी के दौरान ब्रिटेन, फ्रांस, जर्मनी, पुर्तगाल इत्यादि देशों का अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार के माध्यम से दुनिया के अन्य देशों के सम्पर्क हुआ। यूरोप में व्यक्तिवाद, व्यापारवाद एवं वणिकवाद की नीति तेज गति से शुरू हुई। यह राजनीतिक आधुनिकीकण का पहला स्तर माना जा सकता है। इसी दौरान साम्राज्यवाद इसी समय की देन है।

2.प्रतिक्रिया व काउण्टर प्रतिक्रिया:

यह पश्चिमी दुनिया में परंपरावाद के चिन्तन में बदलाव का चरण होता है। व्यापार, शिक्षा, सभ्यता या लगातार विस्तार होता जाता है।

3.संघर्षपूर्ण व प्रतिक्रिया:

विद्यमान व्यवस्था के भीतर ही अन्तर्विरोध के गुण विद्यमान होते हैं। धीरे-धीरे तीसरी दुनिया की स्वाधीनता की मांग उठने लगती है। 1776 अमेरिकी क्रान्ति, 1789 की फ्रैंच क्रान्ति ने अन्य राष्ट्रों को भी प्रेरणा प्रदान की।

4.सामान्यीकरण समाधान की खोज:

उत्पादनकारी व्यवस्था की खोज सामाजिक, आर्थिक एवं तकनीकी अनुसंधान, द्वितीय महायुद्धरूपी क्रांति राजनीतिक स्वाधीनता के पश्चात सामुदायिक विकास।

एप्टर ने दि पॉलिटिक्स ऑफ मॉडर्नाइजेशन,1965 के अंतर्गत बताया कि राजनीतिक आधुनिकीकरण को परिभाषित करने में सराहनीय भूमिका का प्रतिनिधित्व करती है। डेविड एप्टर ने राजनीतिक आधुनिकीकरण के बदलते हुए रूचिपूर्ण प्रतिमानों का वर्गीकरण करने एवं समझाने का एक सफल प्रयास किया है। यह रचना आदर्श की चरम सीमा के दौर में अनेक प्रारूपों या प्रतिमानों को प्रस्तुत करती है जो कि विद्यमान राजनीतिक प्रणालियों के बहुत अधिक पास में है। उदाहरण के लिए पाँच प्रकार की सामाजिक प्रणालियों के स्वरूप को स्पष्ट किया है जैसे कि संचारण प्रणाली, सुलह प्रणाली, आधुनिकीकरण गुटप्रणाली, सैन्य निरंकुशता, नव व्यावसायिक प्रणाली।

राजनीतिक आधुनिकीकरण के प्रमुख अभिकरण :

वे माध्यम या साधन जिनके द्वारा राजनीतिक आधुनिकीकरण की प्रक्रिया गतिशील होती है उन्हें राजनीतिक आधुनिकीकरण के प्रमुख अभिकरण माना जाता है।

1.अभिजनों एवं बुद्धिजीवी वर्ग की भूमिका:

राजनीतिक आधुनिकीकरण की प्रक्रिया में अभिजन (विशेषतया राजनीतिक वर्ग) और स्थायी कार्यपालिका के रूप में कार्यरत नौकरशाही का महत्वपूर्ण योगदान होता है। राजनीतिक प्रणालियों की संरचनात्मक प्रकृति के निर्धारण में इनकी सराहनीय भूमिका रहती है। विकसित एवं विकासशील दोनों ही देशों में क्रांति को लेकर संविधान निर्माण तक और शासन संचालन से लेकर व्यवहार में कल्याणकारी राज्य तक इनकी भूमिका का विकल्प नहीं होता है।

2.विचारधाराओं की भूमिका:

सामान्यतः राजनीतिक दल राजनीतिक आधुनिकीकरण के प्रमुख साधन होते है। ये दल जब विचारधारा केन्द्रित होते हैं तो विचारधारा की भूमिका राजनीतिक आधुनिकीकरण में अधिक महत्वपूर्ण हो जाती है। सर्वाधिकारवादी शासन प्रणाली में एकाधिकारवादी दल या साम्यवादी व्यवस्था में दल विचारधारा का ही वाहक होता है। डेविड एप्टर के शब्दों में विचारधारा नाज़ुक क्षणों में व्यक्तियों को अपने साथियों से एकता व मजबूती का अभिज्ञान कराती है।

3.सरकार की भूमिका:

सरकार सम्पूर्ण व्यवस्था के संचालन की इकाई है अतः इसकी भूमिका तो निःसंदेह ही

सर्वश्रेष्ठ होती है। कल्याणकारी राज्य ने सरकारों की भूमिका को और अधिक प्रभावी बना दिया है। सरकारों के द्वारा ही इसकी पहल, प्रसार, नियंत्रण एवं स्थापित करने का कार्य किया जाता है। सरकारें बाध्यकारी शक्ति का प्रयोग करके आधारभूत एवं आमूलचूल परिवर्तन लाने की क्षमता रखती हैं। वे व्यापक एवं क्रान्तिकारी परिवर्तन ला सकती है। सरकारें राजनीतिक, आर्थिक, सामाजिक एवं संस्कृतिक क्षेत्र में बहुमुखी प्रगति को स्थापित कर सकती हैं।

इस प्रकार निष्कर्ष के रूप में हम कह सकते है कि राजनीतिक आधुनिकीकरण की प्रक्रिया मूलतः प्रत्येक राज्य का परम लक्ष्य है। आधुनिकीकरण एक बहुमुखी प्रक्रिया है। राजनीतिक आधुनिकीकरण की अवधारणा में एडवर्ड शील्स, डेविड एप्टर, वेल्स का महत्वपूर्ण योगदान रहा है। राजनीतिक विकास जो कि प्रत्येक राष्ट्र का मूल राजनीतिक ध्येय होता है। वह आधुनिकीकरण से भिन्न नहीं है अपितु उसी से जुड़ी हुई अवधारणा है। राजनीतिक आधुनिकीकरण ही वह प्रक्रिया है जिसके माध्यम से कोई देश राजनीतिक विकास के ध्येय को अर्जित कर सकता है।

राजनीतिक विकास

तुलनात्मक राजनीति के परम्परागत, आधुनिक एवं सांस्कृतिक सिद्धान्तों की सहायता से पर्यावरण (सामाजिक प्रणाली) एवं राजनीतिक व्यवस्था तथा इनके पारस्परिक व्यवहार और इनकी उपादेयता को बनाये रखने वाले तत्त्वों के साथ-साथ सांस्कृतिक स्वरूप को भी समझने में सहायता मिली है। विभिन्न देशों में राजनीतिक संस्कृति और उसके निर्माणकारी व संचरण के स्वरूप के बारे में ज्ञान मिला फिर भी यह अध्ययन पूर्ण नहीं हुआ क्योंकि राजनीतिक प्रणाली पर उसके समाज (पर्यावरण) का क्या व कैसा प्रभाव पड़ता है और इस प्रभाव को किस तरह से सकारात्मक स्वरूप प्रदान करके विकास के लक्ष्य को अर्जित किया जाए? जिसमें वह कार्य करती है। द्वितीय महायुद्ध के पश्चात् अनेक नवोदित देशों की उदय हुआ। इन देशों की राजनीतिक प्रणालियाँ पश्चिमी राजनीतिक प्रणालियों से बहुत हद तक भिन्न थी। पश्चिमी प्रतिमानों विशेषकर व्यवस्था विश्लेषण सिद्धान्त के माध्यम से इनका अध्ययन संभव न हो सका। अतः एक अलग ऐतिहासिक विरासत, सामाजिक, आर्थिक, सांस्कृतिक, धार्मिक विविधता एवं अस्थिर राजनीतिक प्रणाली को धारण करने वाले विकासशील समाजों के बारे में अध्ययन की प्रक्रिया अधुरी रही जिसे पूर्ण करने हेतु इसी समय एक नवीन अवधारणा का सहारा लिया गया जिसे विकास की धारणा कहा जाता है। विकास की यह अवधारणा तीसरी दुनिया नवोदित एवं नव स्वतंत्र देशों से सम्बन्धित रही। तीसरी दूनिया, इस शब्द का उपयोग 1952 में फ्रैंच अर्थशास्त्री अल्फ्रेड सोवी के द्वारा उस सन्दर्भ में किया गया जहाँ फ्रांस में तीन सत्ताएं/शक्तियाँ - पुरोहित, कुलीन एवं जनसाधारण

कार्य करती थी। तीसरी दूनिया में वे देश शामिल है जिन्होंने हाल ही में अर्थात् द्वितीय महायुद्ध के पश्चात् राजनीतिक स्वतंत्रता प्राप्त की है।

आमण्ड व कॉलमेन ने अपनी पुस्तक 'दि पॉलिटिक्स ऑफ दी डवलपिंग एरियाज, 1960 के अन्तर्गत पहली बार विकासशील देशों की समस्या को शामिल किया जिसके परिणामस्वरूप राजनीतिक चिंतकों का ध्यान इन पिछडे देशों की राजनीति विकास की ओर गया। अनेक विचारकों ने अपने लेखन कार्य में 1960-1970 के दशक में तीसरी दूनिया के देशों की राजनीतिक प्रणालियों की समस्याओं का शामिल किया जाने लगा। इस दिशा में अनेक प्रभावी लेखन शुरू हुआ जिनमें आमण्ड, रॉबर्ट ई वॉर्ड और डी. रोस्टोव, जोसेफ ला पालम्बरा, ल्यूसन पाई और सिडनी वर्बा, ए. एफ. आर्गेन्सकी, लासवैल, एस. पी. हण्टिग्टन ने क्षेत्रीय अनुसंधान के रूप में महत्वपूर्ण लेखन कार्य किया। इसी दिशा में सर्वप्रथम अमेरिकी विश्वविद्यलयों में अन्तः अनुशासनात्मक ढाँचे के भीतर कुछ चयनित वैश्विक क्षेत्रों को समझने के लिए क्षेत्रीय अध्ययन की शुरूआत की गई। विकासशील देशों की राजनीतिक प्रणालियों व उसकी प्रकृति पर पडने वाले पर्यावरणीय एवं सांस्कृतिक प्रभावों को गहराई से समझने के लिए क्षेत्रीय अध्ययन करने में अनेक बाहरी राजनीतिक शोधार्थियों ने विस्मरणीय भूमिका का निर्वहन किया है। में के रूप में भारत में वीनर ने, पाकिस्तान में विन्डर ने, श्रीलंका में रिगिन्स ने, बर्मा में पाई ने, इण्डोनेशिया में फीथ ने, मिस्त्र में समीर अमीन ने, घाना में डेविड एप्टर ने, नाईजीरिया में कौलमेन ने, लैटिन अमेरिकी देशों में ए.जे. फ्रैंक व अन्य साथियों तथा ने यूनान व छह मध्य पूर्व के देशों में सराहनीय व मौलिक कार्य किया।

राजनीतिक विकास का अर्थ एवं परिभाषाः

राजनीतिक विकास शब्द दो शब्दों से मिलकर बना है अर्थात् राजनीतिक और विकास। राजनीतिक से हमारा अर्थ सार्वजनिक जीवन से सम्बन्धित घटनाक्रम से है जहाँ जनहित या सामान्य हित की भावना निहित होती है। जिसमें एक पक्ष राज्य व दूसरा पक्ष जनहित होता है। जैसे कि हैदराबाद केन्द्रीय विश्वविद्यालय शोधार्थियों द्वारा प्रधानमंत्री से नरेगा में भ्रष्टाचार कम करने या निर्गत को शामिल करने की मांग से करना।

दूसरा शब्द है 'विकास' यहाँ विकास क्या होता है और यह कैसे होता है अथवा इसके कौनसे मार्ग हो सकते हैं? इत्यादि प्रश्न उत्पन्न होते हैं। सामान्यतः इसका अर्थ : प्रगति/उन्नति से लिया जाता है परन्तु केवल आगे की ओर बढ़ना, विकास है या वृद्धि/संवृद्धि। यह एक चिंतनीय प्रश्न है। विकास की अवधारणा को कुछ विचारक एकपक्षीय या एकमार्गी मानते हैं परन्तु वास्तव में 'विकास' एक बहुमुखी एवं बहुआयामी प्रक्रिया है। विकास की धारणा में आर्थिक, सामाजिक, सांस्कृतिक, पर्यावरण, तकनीक, समावेशी, सुस्थिर/संपोषणीय तकनीक एवं विज्ञान इत्यादि के स्वरूप को शामिल किया जा सकता है। इसी के साथ कुछ देश विकसित, विकासशील या पिछड़े कहलाते हैं। अतः विकास की अवस्थाएँ क्या होती हैं अथवा केवल विकास ही पूर्ण है या पतन भी होता है। फिर विकास व आधुनिकीकरण में क्या

सम्बन्ध है, इस प्रकार से अनेक समस्याएँ इसके साथ जुड़ी हुई हैं।

'राजनीतिक विकास' शब्द के अर्थ को लेकर विचारकों में मतभेद है। वे सब इसका भिन्न अर्थ लेते हैं जैसे कि-

- *समाजशास्त्री दृष्टिकोण के रूप में फ्रांसीसी विचार आगस्ट काम्टे के अनुसार- राजनीतिक विकास का मतलब है ज्ञान-विज्ञान के सहारे सैन्य समाज से औद्योगिक समाज की ओर आगे बढ़ना ही राजनीतिक विकास है।*
- *ब्रिटिश परम्परावादी सर हेनरी मेन के अनुसार समाज में स्थिर सामाजिक सम्बन्धों से अनुबन्ध की ओर बढ़ना ही राजनीतिक विकास है।*
- *जर्मन दार्शनिक समाजशास्त्री मैकसवेबर के अनुसार राजनीतिक विकास का मतलब है परम्परागत सत्ता से कानूनी-तर्कसंगत सत्ता की ओर बढ़ना अर्थात् 'प्रशासनिक एवं कानूनी विकास' ही राजनीतिक विकास होता है।*
- *गुन्नार मिडील, लरनर व डेविड एप्टर के अनुसार राजनीतिक आधुनिकीकरण एवं विकास एक दूसरे से पर्याय हैं।*
- *आमण्ड व कॉलमेन के अनुसार राजनीतिक विकास का आशय है लोकतांत्रिक मूल्यों की प्रगति के माध्यम से लोकतंत्र का निर्माण करना अर्थात् राजनीतिक विकास व लोकतंत्र पर्याय है।*
- *पाई के शब्दों में राष्ट्र राज्य का विकास ही राजनीतिक विकास है। अर्थशास्त्री रोस्टोव ने इसे औद्योगिक समाजों की विशेष राजनीति माना है तो एमर्सन, लिपसेट व कॉलमन भी इसे आर्थिक विकास की पूर्व शर्त मानते हैं।*

उपर्युक्त परिभाषाओं से स्पष्ट है कि समाजशास्त्रियों, अर्थशास्त्रियों या राजनीति विज्ञानिकों ने इसका अलग-अलग अर्थ लिया है जो सभी व्यापकता व बहुमुखी स्वरूप व चिंतकों के पृथक दृष्टिकोण का प्रतीक है।

ल्यूसन पाई के अनुसार राजनीतिक विकास की अवधारणा :

पाई ने राजनीतिक विकास को अत्यन्त स्पष्ट व अनिश्चित अवधारणा बताया है। पाई ने अपनी पुस्तक 'आस्पेक्टस ऑफ पॉलिटिकल डवलपमेण्ट,1966 में राजनीतिक विकास की अवधारणा को विस्तार से समझाया है।

- *राजनीतिक विकास, सामान्य विकास की आधुनिक धारणा का अभिन्न हिस्सा है जो अन्य पहलुओं से प्रभावित होता है।*
- *यह राज्य के द्वारा सम्पूर्ण समाज का राजनीतिक क्षेत्र में (गुणात्मक+मात्रात्मक दोनों) किया जाने वाला विकास है।*
- *इस धारणा का उदय 1960 के दशक में अमेरिकी/शिकागो स्कूल के नेतृत्व में नवोदित एवं विकासशील देशों की राजनीतिक प्रणालियों में 'अस्थिर स्वरूप' को समझने के लिए*

हुआ है।

- *मार्क्सवादी इसे पश्चिमी राज्यों द्वारा पिछड़े देशों को विकास के जाल में गुमराह कर उनका शोषण करने की प्रक्रिया मानते हैं।*
- *यह राजनीतिक आधुनिकीकरण से सम्बन्धित है क्योंकि इस प्रक्रिया के द्वारा ही राजनीतिक विकास संचरण करता है।*
- *उदारवादी सिद्धान्त के अनुसार यह राजनीतिक संस्थाओं का विकास या संघटित या संस्थायीकरण या लोकतंत्र का निर्माण है। जिसे विकास का उदार प्रतिमान/पश्चिमी मॉडल कहा जाता है। जिसके प्रमुख समर्थक, आमण्ड, पावेल, पाई, कॉलमेन, हण्टिग्टन, शिल्स, रिंग्स इत्यादि हैं।*
- *अमेरिकी शोधार्थी एपीडी के शब्दों में-शासन सत्ता में स्थायी परिवर्तन राजनीतिक विकास है।*

राजनीतिक विकास के लक्षण/विशेषताएँ :

राजनीतिक विकास एवं बहुआयामी एवं बहुमुखी धारणा है जिस पर देश में विद्यमान सामाजिक, सांस्कृतिक, आर्थिक वातावरण का भी प्रभाव पड़ता है। उसने 'राजनीतिक विकास' से सम्बन्धित 10 परिभाषाओं का विश्लेषण किया तथा संक्षेप में परन्तु गहन अर्थ में इसके तीन महत्त्वपूर्ण आयाम बताये हैं जिनका नाम समानता, क्षमता एवं विभेदीकरण है। कोलमेन ने इसे विकास संलक्षण के स्वरूप में देखा है।

1.आर्थिक विकास की पूर्व शर्त के रूप में राजनीतिक विकास:

मार्टिन लिपसेट कौलमैन व कटराइट, स्पर्ट एमर्सन इत्यादि ने इसका समर्थन किया है। राजनीतिक विकास तभी संभव है जबकि देश का आर्थिक विकास हो गया हो। आर्थिक विकास की पृष्ठभूमि पर ही राजनीतिक विकास होता है। आर्थिक विकास व राजनीतिक विकास पर्याय होते हैं। परन्तु यह सही नहीं है क्योंकि आर्थिक विकास भले ही राजनीतिक विकास की प्रक्रिया को प्रभावित करता हो फिर भी राजनीतिक विकास इससे स्वायत्त होता है।

2.औद्योगिक समाजों की विशेष राजनीति के रूप में राजनीतिक विकास:

रोस्टोव जैसे अर्थशास्त्रियों की मान्यता है कि राजनीतिक विकास औद्योगिक समाजों की परिघटना है। औद्योगिक जीवन एक विशिष्ट प्रकार के राजनीतिक जीवन को उपलब्ध कराता है जिसे प्रत्येक समाज प्राप्त करना चाहता है। 1760 की ब्रिटिश औद्योगिक क्रान्ति के पश्चात् ही इस धारणा का उदय हुआ है जिसने द्वितीय महायुद्ध के बाद अन्य पिछड़े समाजों को आकर्षित किया है।

3.राजनीतिक आधुनिकीकरण के रूप में राजनीतिक विकास:

राजनीतिक आधुनिकीकरण वह प्रक्रिया है जिसके माध्यम से ही राजनीतिक विकास आगे की ओर संचरण करता है। अतः मूलतः विकास व आधुनिकीकरण एक दूसरे के पर्याय होते

हैं। यदि कोई समाज राजनीतिक दृष्टि से विकसित हो अर्थात् बुद्धि संगतता, संस्थाओं का विभिन्नीकरण एवं विशेषीकरण, जनसहभागिता इत्यादि का विद्यमान होना परन्तु केवल आधुनिकीकरण ही राजनीतिक विकास नहीं होता है। गुन्नार मिर्डाल, लरनर व डेविड एप्टर इसके समर्थक हैं।

4.राष्ट्रीय राज्य के प्रचालक के रूप में राजनीतिक विकास:

कुछ विचारकों ने 'राष्ट्र-राज्य' की स्थापना को ही राजनीतिक विकास के सन्दर्भ में देखा है। राष्ट्रीयता की भावना, राष्ट्र के निर्माण, एकता, संगठन व समन्वित स्परूप में विश्वास ही राजनीतिक विकास है। विकासशील देशों में राज्य और राष्ट्र निर्माण की समस्या आज भी विद्यमान है। परन्तु विकसित देशों में राष्ट्र-राज्य विकसित स्वरूप में पहुँच गए हैं। रजनी कोठारी ने भी इस समस्या का उल्लेख किया है।

5.प्रशासकीय और विधिक विकास के रूप में राजनीतिक विकास:

मैकसवेबर, रिग्स जैसे विचारकों की मान्यता है कि राजनीतिक विकास के लिए विधि के शासन, कानून की सर्वव्यापकता एवं विधि सम्मत अधिसत्ता अर्थात् नौकरशाही का विकसित स्वरूप में होना आवश्यक है। राजनीतिक विकास की प्रक्रिया में संरचनाओं के विशेषीकरण एवं विभिन्नीकरण के व्यावहारिक परिणति के लिए कार्मिकों की आवश्यकता होती है। परन्तु नौकरशाही की कार्यप्रणाली, प्रतिबद्धता या वेबरवादी आदर्श नौकरशाही होने पर ही ऐसा संभव है।

6.जन संचारण एवं जन सहभागिता के रूप में राजनीतिक विकास:

किसी देश की राजनीतिक प्रणाली कितनी विकसित है इसकी खोज इस आधार पर हो सकती है कि वहाँ की निर्णयन प्रक्रिया में जनसहभागिता का क्या स्तर है तथा जनता किस स्तर सक्रिय होती है। परन्तु केवल मतदान प्रतिशत इसका मापन नहीं हो सकता (रूस-100 प्रतिशत, जर्मनी-93 प्रतिशत, यूएसए-70 प्रतिशत मतदान का प्रतिनिधित्व करते हैं) है।

7.लोकतंत्र के निर्माण के रूप में राजनीतिक विकास:

लोकतंत्र निर्माण को राजनीतिक विकास के बहुत समीप माना जा सकता है। लोकतांत्रिक मूल्यों, आदर्शों, मानको को स्थापित करना, राजनीतिक प्रक्रियाओं एवं संरचनाओं को स्वतंत्र, पारदर्शी, प्रतियोगी, निष्पक्ष, जनसहभागी, जनहितकारी, विशेषीकरण, समानता, लौकिकीकरण के रूप में संचालित करना इसे राजनीतिक विकास की ओर ले जाते हैं।

8.स्थायित्व एवं व्यवस्थित परिवर्तन के रूप में राजनीतिक विकास:

राजनीतिक प्रणाली को प्रभावित करने वाले पक्षों - सामाजिक, आर्थिक, सांस्कृतिक, राजनीतिक इत्यादि में व्यापक उथल-पुथल नहीं होना अथवा स्थिरता बने रहना और व्यवस्थित परिवर्तन होता है तो इसे ही राजनीतिक विकास माना जाएगा।

9.शक्ति संचारक के रूप में राजनीतिक विकास:

राजनीतिक प्रणाली राजनीतिक व्यवहार के दौरान समाज में किस स्तर तक शक्ति का प्रयोग करती है। यदि जन शक्ति राज्य में प्रभावी हो अर्थात् लोकतंत्र/जनता का राज्य पर

नियंत्रण न कि पुलिस का जनता पर नियंत्रण, तो राजनीतिक विकास माना जाएगा।

10.सामाजिक बदलाव की बहु-दिशायुक्त प्रक्रिया के रूप में राजनीतिक विकासः
राजनीतिक विकास के परिणामस्वरूप सामाजिक क्षेत्र में भी व्यापक बदलाव दिखायी देता है परन्तु यह किसी एक पक्ष से ही सम्बन्धित नहीं होता है अपितु सम्पूर्ण सामाजिक संरचना, वैश्विक संस्कृति, सामाजिक सम्बन्धों को भी प्रभावित करने वाला पहलू होता है। अतः विकसित सामाजिक संरचना इसका आधार है।

इन परिभाषाओं के आधार पर इसके राजनीतिक विकास के सम्बन्ध में विद्यमान मतैक्य दिखायी देता है। सबने इसे अनेक व अलग-अलग स्वरूपों में देखा है। इन सबको संक्षिप्त स्वरूप देकर पाई ने अपनी तरफ से एक परिभाषा का सर्जन किया- ''राजनीतिक विकास, संस्कृति का विसरण और जीवन के पुराने प्रतिमानों को नवीन मांगों के अनुकूल बनाने, उन्हें उनके साथ मिलाने या उनके साथ सामंजस्य बैठाना है।''

राजनीतिक विकास के सिद्धान्तः
राजनीतिक विकास क्या है और कैसे हो सकता है अथवा इसके क्या लक्षण है इन सब आधारों के सम्बन्ध में दो प्रकार के सिद्धान्तों का प्रतिपादन किया गया है। जिनमें एक विकसित देशों के मॉडल को ही राजनीतिक विकास का मानक मानता है तो दूसरा सिद्धान्त इसे शोषण का नया अनुसंधान मानता है कि किस तरह आज भी पिछड़े देशों को विकास के जाल में फंसाया जा रहा है। यद्यपि आलोचनावादी सिद्धान्त के पास विकास करने का कोई वैकल्पिक मार्ग उपलब्ध नहीं है।

1.उदारवादी सिद्धान्तः

2.मार्क्सवादी-लेनिनवादी सिद्धान्तः

उदारवादी सिद्धान्त-इन सिद्धान्तों को समझने हेतु अनेक विचारकों का दृष्टिकोण समझना अपरिहार्य होगा-

रोस्टोव प्रतिमानः
अर्थशास्त्रीय दृष्टिकोण के रूप में रोस्टोव प्रतिमान अल्पविकास से विकास की ओर संचरण की बात करता है। उसके अनुसार परम्परागत समाज अविकसित होते हैं क्योंकि यहाँ आधुनिक विज्ञान और तकनीक की पहुँच या प्राप्ति और उस तक प्रसारित होने की कमी भी होती है। अतः आर्थिक वृद्धि की उच्च अवस्था से राजनीतिक विकास के लक्ष्य को प्राप्त किया जा सकता है। आधुनिकीकरण की प्रक्रिया के द्वारा उच्च आर्थिक वृद्धि की अवस्था को प्राप्त किया जा सकता है। विकास को आधुनिकीकरण के रूप में व्यक्त किया गया है। रोस्टोव ने अपनी रचना 'दि स्टेजेज ऑफ इकोनोमिक ग्रोथः ए नॉन कम्यूनिस्ट मेनिफेस्टो,1960 में बताया है कि सभी समाजों को विकास की पाँच अवस्थाओं से होकर गुजरना पड़ता है।

1. **परम्परागत अवस्था**

2. **संक्रान्तिकालीन/पूर्व उत्कृष्ट अवस्था**
3. **उत्कृष्ट अवस्था**
4. **प्रौढ़ता की ओर प्रेरक अवस्था**
5. **उच्च जनपूंज उपभोग अवस्था**

आर्थिक विकास की इन अवस्थाओं के साथ-साथ सामाजिक संरचना में भी लगातार परिवर्तन हो जाता है। तीसरी दुनिया के देश प्रथम अवस्था में हैं जिन्हें दूसरी अवस्था की ओर बढ़ने की आवश्यकता है। दूसरी अवस्था में व्यापार का विकास, तार्किकता की शुरुआत, वैज्ञानिक मूल्य और अभिजन का उदय होने लगता है। इस तरह धीरे-धीरे पश्चिमी निवेश एवं विचारों को प्रोत्साहन मिलने लगता है। औद्योगीकरण पश्चिमी समाज के व्यैक्तिक मूल्यों, व्यक्तिवाद के स्वरूप, अवसरों की समानता को प्रोत्साहित करता है जिसके परिणामस्वरूप वर्ग संघर्ष और सामाजिक अशांति कम हो जाती है। इस तरह प्रत्येक अवस्था अपनी पूर्व अवस्था से बेहतर या अधिक महत्त्वपूर्ण होती है।

आर्गेसंकी का प्रतिमानः

रोस्टोव की तरह आर्गेसंकी ने भी राजनीतिक विकास को अवस्थाओं में व्यक्त किया है। उसने अपनी पुस्तक 'दि स्टेजज ऑफ पॉलिटिकल डवलपमेण्ट,1965 में आर्थिक सन्दर्भ या परिप्रेक्ष्य में राजनीतिक विकास की चार अवस्थाएँ बतायी हैं :

1. **राजनीति एकीकरण**
2. **औद्योगिकीकरण**
3. **सहभागिता/एकीकरण/राष्ट्रीय कल्याण**
4. **वितरण**

- *उसने तुलनात्मक राजनीति का सामान्य भाषा में छात्रों को अधिगम कराने में महत्वपूर्ण योगदान दिया है। उसने राजनीतिक विकास की प्रक्रिया को चार भागों में विभाजित किया है जिसकी परिधि में नवोदित एवं भविष्य के कल्याणकारी राज्य शामिल हैं परन्तु इन अवस्थाओं के विभाजन में कठोरता नहीं है।*
- *प्रथम अवस्था की मुख्य समस्या संसाधनों के संचरण तथा सहअस्तित्व वाले नेतृत्व (पुराने व नवीन दोनों शब्दों में) की होती है। यहाँ राज्य शक्तियों का केन्द्रीयकरण कर लेता है।*
- *दूसरे स्तर में आधुनिकीकरण की राजनीति है, जिसमें औद्योगीकरण एवं जनपूंज प्रबन्धन का परिदृश्य या आर्थिक विकास दिखायी देता है।*
- *तीसरी अवस्था या स्तर राष्ट्रीय कल्याण की राजनीति से सम्बन्धित है जहाँ सरकार की भूमिका संरक्षणवाद से व्यावसायिक राष्ट्र निर्माण की ओर (तीव्र औद्योगीकरण के माध्यम से) परिवर्तित हो जाती है। राज्य की राजनीतिक व आर्थिक शक्तियों*

का प्रतिफल प्राप्त होता है। सामान्यतया दूसरी व तीसरी अवस्था संसाधनों के प्राथमिकतापूर्ण वितरण और सहभागिता के स्वरूपों में आधारभूत परिवर्तनों का प्रतिनिधित्व करती है।

- *चौथी अवस्था प्रचूरता या बहुलता की राजनीति है जो कि पर्याप्त संसाधनों और राजनीतिक अभिव्यक्तिकरण के उच्च स्तरीय संस्थायीकृत स्वरूप की विशेषताओं को बताती है। आर्गेन्सकी के शब्दों में ''राष्ट्रीय लक्ष्यों की प्राप्ति हेतु राष्ट्र के मानवीय एवं प्राकृतिक संसाधनों का कुशलपूर्ण उपयोग ही राजनीतिक विकास है। आर्गेन्सकी के शब्दों में ''राष्ट्रीय लक्ष्यों की प्राप्ति हेतु राष्ट्र के मानवीय एवं प्राकृतिक संसाधनों का कुशलपूर्ण उपयोग ही राजनीतिक विकास है।*

पाई का प्रतिमानः

पाई ने सिडनी वर्बा के साथ सम्पादित पुस्तक 'पॉलिटिकल कल्चर एण्ड पॉलिटिकल डवलपमेण्ट,1965 व आस्पेक्टस ऑफ पॉलिटिकल डवलपमेण्ट,1966 के अन्तर्गत राजनीति विकास की धारणा के सन्दर्भ में व्यापक अध्ययन एवं विश्लेषण किया है। पाई प्रथम राजनीतिक विचारक हैं जिन्होंने इसे स्पष्ट एवं सही स्वरूप में परिभाषित किया है।

- *पाई के अनुसार राजनीतिक विकास का मतलब है, ''संस्कृति का लौकिकीकरण या विसरण और जीवन के पुराने प्रतिमानों को नई मांगों के अनुकूल बनाने, उन्हें उनके साथ मिलाने या उनके साथ सामंजस्य बैठाना।''*
- *पाई ने दक्षिणी-पूर्वी एशियाई देशों (विशेषतः म्यांमार) में क्षेत्रीय अध्ययन किया है।*
- *अन्य शब्दों में राजनीतिक विकास, राजनीतिक संरचनाओं का विभिन्नीकरण एवं विशेषीकरण तथा राजनीतिक संस्कृति का ऐसा बढ़ता हुआ लौकिकीकरण है जिससे जनता में समानता और राजनीतिक व्यवस्था में कार्यक्षमता व उसकी उपव्यवस्थाओं की स्वायत्तता बढ़ जाए।*
- *आधुनिकीकरण की प्रक्रिया परम्परागत समाजों को आधुनिक समाज में रूपांतरित करती है। परम्परागत समाज जहाँ श्रम प्रधानता, कर संग्रहण, कानून, व्यवस्था, पुलिस, प्रतिरक्षा, जनसामान्य की राजनीति से दूरी, जनसहभागिता, संकीर्ण राजनीतिक संस्कृति, निरंकुश अधिसत्ता, कानून के शासन, शक्तियों के पृथक्करण व विभाजन का अभाव इत्यादि लक्षण पाये जाते हैं।*
- *वही आधुनिक समाज मशीनी प्रधान, नागरिक जीवन स्तर उन्नत करने में सक्रिय सहयोग, सक्रिय जन सहभागिता, सहभागी राजनीतिक संस्कृति, जनता की स्वाभाविक सहमति (वैधता) कानून का शासन, शक्ति विभाजन, विशेषीकरण, न्यायिक निष्पक्षता व स्वतंत्रता इत्यादि लक्षण विकसित हो जाते हैं।*

राजनीतिक विकास की विशेषताएँ व राजनीतिक संलक्षण :

पाई ने राजनीतिक विकास से सम्बन्ध प्रमुख 10 आयामों/परिभाषाओं का विश्लेषण किया तथा उन्हें संक्षिप्त व गहन अर्थ में बदल दिया। पाई ने राजनीतिक विकास की दिशा में पहला कदम राष्ट्र-राज्य की स्थापना बताया है जिसे सभी दिशाओं में क्रमिक विस्तार की आधारभूत धारणा के रूप में हम वैश्विक संस्कृति कह सकते हैं। पाई के अनुसार राजनीतिक विकास के लक्षणों को तीन भिन्न स्तरों पर खोजा जा सकता है।

1. समग्र जनसंख्या के स्तर परः पर्यावरण या समाज (राष्ट्रीय-अन्तर्राष्ट्रीय)
2. शासकीय व सामान्य प्रणालीगत निष्पादन के स्तर परः राजनीतिक व्यवस्था की कार्यक्षमता का स्तर (राष्ट्रीय-अन्तर्राष्ट्रीय)
3. राजनीतिक प्रणाली के संगठन के स्तर परः औपचारिक/अनौपचारिक संगठनों में संस्थाओं, संरचनाओं के कार्यों व शक्तियों का विशेषीकरण, विभेदीकरण समग्रता।

पाई ने आधुनिकीकरण या विकास उपागम की तीन विशेषताएँ बताई हैं-

1. समानता/समता
2. क्षमता
3. विभेदीकरण या विभिन्नीकरण

1.समानता/समता :

राजनीतिक प्रणाली में समानता का मतलब विद्यमान राजनीतिक व्यवस्था की समानता की धारणा के प्रति लोगों में 'सामान्य भावना' के निहित होने से है। पाई ने समानता का संकीर्ण अर्थ नहीं लिया वरन् इसे विस्तृत स्वरूप में व्यक्त किया है। उसने समानता का अर्थ चार संदर्भों में लिया है जैसे कि :

- कानून की समानता एवं नियमों की सार्वभौमिक प्रकृति की समानता;
- शासन प्रणाली में राजनीतिक निर्णय प्रक्रियाओं एवं राजनीतिक गतिविधियों में भाग लेने की समानता अर्थात् जनसहभागिता, लोकप्रिय भागीदारी;
- जन सक्रियता या संचरण भले ही लोकतंत्र हो या तानाशाही शासन;
- राजनीतिक कार्यालयों एवं अभिकरणों, में योग्यता एवं निष्पादन या उपलब्धि आधारित प्रतियोगिता के माध्यम से भर्ती प्रणाली की समानता।

यह कहा जा सकता है कि पाई ने केवल सैद्धान्तिक नहीं अपितु व्यावहारिक समानता को राजनीतिक विकास के मौलिक लक्षण के रूप में अभिव्यक्त किया है।

2.क्षमताः

राजनीतिक विकास की दूसरी विशेषता है- राजनीतिक व्यवस्था की क्षमता। जहाँ पर समानता का सम्बन्ध सम्पूर्ण जन समुदाय से है वहाँ क्षमता का सम्बन्ध राजनीतिक व्यवस्था की कार्य प्रणाली एवं जनता पर इसके प्रभाव से है। किसी राजनीतिक प्रणाली के निर्गत सामाजिक एवं आर्थिक क्षेत्र तक विस्तृत होते हैं। क्षमता का मतलब है :

- उचित मांगों को स्वीकार करने, पूर्ण करने और अनुचित मांगों को नकारने की क्षमता;
- राजनीतिक शासन प्रणाली की कार्य निष्पादन की क्षमता व इसका महत्त्व, पैमाना स्तर एवं क्षेत्र (वैश्विक स्तर तक);
- लोकनीति को लागू करने में राजनीतिक प्रणाली की प्रभावशीलता और निपुणता या कार्यकुशलता की क्षमता
- प्रशासन में तार्किकता और लोक नीति के प्रति लौकिक अभिविन्यास की क्षमता

3.संरचनात्मक विभिन्नीकरण या विभेदीकरणः

यह राजनीतिक विकास का तीसरा अनिवार्य लक्षण है। यह राजनीतिक संरचनाओं एवं संस्थाओं में पाया जाने वाला संरचनात्मक विभेदीकरण और कार्यात्मक विशेषीकरण है जो कि किसी राजनीतिक प्रणाली को राजनीतिक विकास की ओर आगे बढ़ाता है। ये सब पृथक्-पृथक् कार्यों को सम्पन्न करने हेतु (कार्य विशेषीकरण) अलग-अलग संरचनाएं (विभेदीकरण) होती हैं। विभेदीकरण का मतलब है :

- सभी कार्यालयों/संगठनों एवं अभिकरणों के अन्तर्गत विशिष्ट कार्य एवं सीमित कार्य सम्पन्न करने की प्रकृति का विकास अर्थात् शक्ति विभाजन एवं शक्ति पृथक्करण की व्यवस्था;
- संरचनाओं का विसरण या फैलाव एवं कार्य विशेषीकरण की व्यवस्था
- राजनीतिक प्रणाली के कार्यक्षेत्र में श्रम विभाजन की समरूपता तथा व्यवस्था का विविध राजनीतिक भूमिकाओं में कार्य विशेशीकरण;
- विभेदीकरण व विशेषीकरण राजनीतिक प्रणाली के अलग-अलग भागों/अंगों के बीच विखण्डन और अलगाव उत्पन्न नहीं करता है अपितु यह जटिल संरचनाओं एवं प्रक्रियाओं के पूंज का एकीकरण/एकीकृत स्वरूप है यह विशेषीकरण पर आधारित समग्रता की अद्वितीय समझ है अर्थात् यह एकीकरण की अन्तिम भावना पर आधारित विशेषज्ञीकरण है जिसका ध्येय विभिन्न अंगों को तोड़ना या विखण्डित करना अथवा उन्हें अलग-अलग करना नहीं है।

राजनीतिक विकास की तीन समस्याएँः

1. समानता की समस्या राजनीतिक संस्कृति, वैधता के बारे में जनभावनाओं एवं व्यवस्था के प्रति वचनबद्धता से जुड़ी हुई है।
2. क्षमता की समस्या शासन प्रणाली की प्राधिकृत संरचना की निष्पादन की समर्थता से सम्बन्धित है।
3. विभेदीकरण की समस्या गैर प्राधिकृत संरचना के निष्पादन और बड़े स्तर के समाज की सामान्य राजनीतिक प्रक्रिया से जुड़ी हुई है।

आमण्ड व पॉवेल का प्रतिमानः

आमण्ड व पॉवेल ने राजनीतिक विकास को लोकतंत्र निर्माण या संस्थाओं या मूल्यों के निर्माण से सम्बन्धित माना है। वे संस्थायीकरण या संस्थीकृत में विश्वास रखते हैं। उन्होंने अपनी पुस्तक 'कम्पेरेटिव पॉलिटिक्सः ए डवलपमेण्ट एप्रोच,1966 के 11 वें अध्याय में विकास के सिद्धान्त के रूप में इसका उल्लेख किया है। आमण्ड के अनुसार राजनीतिक संरचना के अन्तर्गत भूमिका विभिन्नीकरण एवं उपव्यवस्था की स्वायत्तता के प्रभाव को तथा राजनीतिक विकास की धारणा के अन्तर्गत इसके मापन के एक पैमाने के रूप में राजनीतिक संस्कृति व समाजीकरण के रूप में लौकिकीकरण को राजनीतिक विकास का दूसरा पैमाना मान सकते हैं। विभिन्नीकरण व लौकिकीकरण को राजनीतिक विकास के वर्गीकरण के दो तत्त्व माना गया है। इसी के समकक्ष या समान राजनीति के रूपांतरण की प्रक्रिया में विभेदीकरण, संरचनात्मक स्वायत्तता और लौकिकीकरण तीन महत्त्वपूर्ण विविध स्वरूप वाले पथ हैं जो प्रकार्यों ;थ्नदबजपवदेद्ध का सम्पादन करते हैं। जब हम राजनीतिक प्रणाली की क्षमताओं की बात करते हैं तो तर्क दे सकते हैं कि व्यवस्था निष्पादन के विशेष स्तर एवं प्रतिमान होते हैं जो कि संरचनात्मक विभेदीकरण के स्तर, स्वायत्तता व तर्कोन्मुखीकरण से जुड़े होते हैं। पाई के समान ही पॉवेल ने भी राजनीतिक विकास के तीन लक्षण बताये गए हैं :

1.भूमिका विभेदीकरणः

आमण्ड व पॉवेल की राजनीतिक विकास की प्रथम विशेषता पाई की तीसरी विशेषता के समकक्ष ही है। पाई ने संरचनात्मक विभेदीकरण एवं आमण्ड ने भूमिका विभिन्नीकरण कहा है। आमण्ड के अनुसार संरचना की अपेक्षा भूमिका विभिन्नीकरण अधिक महत्वपूर्ण होता है क्योंकि भूमिका विभिन्नीकरण राजनीतिक प्रणाली के व्यावहारिक पक्ष का प्रतिनिधित्व करता है जिसमें संरचना विभिन्नीकरण एवं कार्य विशेषीकरण के दोनों तत्व अन्तर्निहित होते हैं अर्थात् जहाँ संस्थागत कार्यों को सम्पन्न करने वाली विशिष्ट संरचनाएँ होती है और वास्तव में व्यवस्थापिका केवल व्यवस्थापिका की ही भूमिका का निर्वहन करती है, कार्यपालिका या न्यायपालिका की भूमिका का नहीं। परन्तु इसके लिए शक्ति पृथक्करण का होना अपरिहार्य नहीं है (कार्यात्मक विशेषीकरण व सीमितता) कार्य विभाजन ही पर्याप्त है। संरचनात्मक विभिन्नीकरण में ऐसा नहीं हो पाता है क्योंकि साम्यवादी या विकासशील

समाजों में सिद्धान्त से व्यवहार की तरफ बढ़ने पर मालूम होता है कि एक ही संरचना अनेक संस्थागत कार्यों का सम्पादन करती है अथवा अनेक संरचनाएं, एक संस्थागत कार्य को सम्पन्न करती है। अतः पावेल ऐसे संरचनात्मक विभिन्नीकरण की बात कह रहे हैं जो यथार्थ में भूमिकाओं का विभिन्नीकरण भी हो। संरचनाएँ विशेषीकरण के आधार पर ही कार्य विशेषीकरण तीनों सावयवी एकता वाले पक्ष हैं। अतः भूमिका विभिन्नीकरण का मतलब है :

- विशिष्ट कार्यों के सम्पादन हेतु विशिष्ट संरचनाओं का विकास;
- कार्यात्मक विशेषीकरण का विकास;
- सीमित कार्य एवं शक्तियाँ;
- सिद्धान्त एवं व्यवहार में अन्तर;

2.उप व्यवस्था की स्वायत्तता:

उप प्रणाली की स्वायत्तता से राजनीतिक व्यवस्था की कार्यक्षमताओं में विस्तार होता है। यह पाई की दूसरी विशेषता क्षमता के समकक्ष है। जब राजनीतिक प्रणाली के अंगों/भागों अर्थात् उप व्यवस्थाओं को स्वायत्तता मिल जाती है तो आगत-निर्गत प्रक्रिया अनेक स्तरों या शक्ति के केन्द्रों पर सम्पादित होने लगती है। इससे राजनीतिक व्यवस्था में शक्ति विभाजन या विकेन्द्रीकरण, विशेषीकरण, संरचना विभेदीकरण एवं भूमिका विभिन्नीकरण की प्रक्रिया को गति मिलती है। इससे राजनीतिक प्रणाली की कार्यक्षमता, कुशलता या निपुणता व प्रभावशीलता में अभिवृद्धि होने लगती है जो निःसन्देह राजनीतिक विकास का लक्षण है। आगत के रूप में राजनीतिक व्यवस्था पर पड़ने वाले दबाव कम हो जाते है। राजनीतिक व्यवस्था अनुरक्षण, अनुकूलन व संरक्षण में सफल हो जाती है। अतः उप व्यवस्था की स्वायत्तता का मतलब है :

- राजनीतिक शक्तियों का विकेन्द्रीकरण या विभाजन;
- आगत-निर्गत प्रक्रिया या रूपान्तरण के अनेक स्तरों का विकास;
- राजनीतिक प्रणाली की कार्यक्षमताओं का विकास;

कार्य क्षमताओं का स्वरूप अथवा मुख्य प्रकार:

1. दोहन क्षमता- राष्ट्रीय व अन्तर्राष्ट्रीय पर्यावरण में प्राकृतिक व मानवीय संसाधनों को उपयोग में लाने की क्षमता।
2. विनियमन क्षमता- लोगों एवं समूहों के व्यवहार का नियमन, कानून एवं नियमों की स्थापना।
3. वितरण क्षमता- राज्य के लाभांश, सम्पदा को सद्पात्रों में वितरण की क्षमता।

4. प्रतीकात्मक क्षमता- समाज व अन्तः पर्यावरण में प्रभावी प्रतीकात्मक निर्गत।
5. प्रत्युत्तर क्षमता- समाज से उत्पन्न इनपुट के प्रति उपयुक्त प्रतिक्रिया की क्षमता, सही व गलत, उचित व अनुचित।
6. घरेलू आगत क्षमता- आमण्ड के अनुसार सर्वाधिकारवादी प्रणालियों में विनियम व दोहन का उच्च स्तर (दमन के द्वारा) भावनाओं का होता है। साम्यवादी प्रणाली में वितरण की प्रबल क्षमता होती है। लोकतांत्रिक प्रणाली में प्रत्युतर क्षमता प्रबल होती है।

3.लौकिकीकरणः

यह पाई की समानता की धारणा के समकक्ष है। आमण्ड व पावेल ने संस्कृति के तर्कोन्मुखीकरण या धर्मनिरपेक्ष अथवा लौकिकीकरण को राजनीतिक विकास की तीसरी विशेषता बताया है। लौकिकीकरण का सम्बन्ध सामान्य संस्कृति से ही होता है। अतः लौकिकीकरण का मतलब है :

- परम्परागत सामाजिक मान्यताओं, रीति-रिवाजों, शोषणकारी परम्पराओं (धर्म, रीति-रिवाज, रूढिवादिता) से ऊपर उठकर पंथनिरपेक्ष पहचान को प्राप्त करना अर्थात् धार्मिक सहिष्णुता;
- राजनीतिक प्रणाली एवं निर्णयन प्रक्रिया में जनता की सक्रिय व सतत् सहभागिता, निष्ठा का विकास, समता की भावना, स्वाभाविक वैधता;
- नागरिक चेतना (तार्किकता) का विकास (विश्लेषणात्मक, तर्कसंगत एवं वैज्ञानिक राजनीतिक नजरिया);
- यह राजनीतिक विकास व राजनीतिक संस्कृति के सम्बन्धों व स्वरूप को दर्शाता है अर्थात् संकीर्ण से अधीन व अधीन से सहभागी राजनीतिक संस्कृति का निर्माण।

इस प्रकार से आमण्ड के द्वारा बतायी गई उपयुक्र्त तीनों विशेषताओं को अनुपूरक व सम्बन्धित माना जाता है।

राजनीतिक विकास की समस्याएँ :

आमण्ड व पावेल ने राजनीतिक विकास की समस्याओं को चार भागों में विभाजित किया है।

1.राज्य निर्माण की समस्याः

राज्य के सामने आने वाली समस्याओं का समाधान, शान्ति एवं व्यवस्था की स्थापना, कानून का शासन, सुरक्षात्मक एवं कल्याणकारी योजनाओं को क्रियान्वयन की समस्या। यह समग्रता एवं नियंत्रण की समस्या है।

2.राष्ट्र निर्माण की समस्याः

यह राष्ट्रीय एकता की स्थापना से सम्बन्धित समस्या है। धर्म, जाति, वर्ग, नस्ल, रंग इत्यादि संकीर्ण हितों से ऊपर उठकर राष्ट्र को अपनी निष्ठा का केन्द्र बनाना सबसे बड़ी समस्या है। भारतीय विचारक रजनी कोठारी ने अपनी पुस्तक 'स्टेट एण्ड नेशन बिल्डिंगः

एक थर्ड वर्ड प्रेस्पेक्टिव,1976 में इन दोनों को एक-दूसरे का पूरक माना है। यूरोपियन इतिहास में राष्ट्र पहले राजनीतिक विकास बाद में हुआ परन्तु इन्होंने तीसरी दुनिया के राष्ट्रों में भ्रान्ति फैला दी, कि आधुनिकीकरण पर ध्यान देना जरूरी है राजनीतिक विकास तो स्वयं हो जायेगा। यह सही कदम नहीं रहा अतः कोठारी का कहना है कि विकासशील देशों को पहले राष्ट्र-राज्य का निर्माण करना चाहिए। यह समस्या समूह पहचान व राष्ट्र निर्माण की है।

3.सहभागिता की समस्याः

निर्णय निर्माण प्रक्रिया में जनता की भागीदारी को कैसे लोकप्रिय एवं सक्रिय बनाया जाए। विकास की प्रक्रिया का सबसे प्रमुख पहलू ही यह है कि उसमें जनता की अधिकाधिक भागीदारी सुनिश्चित हो। जर्मन, इटली, फ्रांस, पर्सिया के सन्दर्भ में इसे देखा जा सकता है।

4.वितरण की समस्याः

वह वितरण की समस्या होती है। जिसे राष्ट्रीय कल्याण के सन्दर्भ में देखा जाता है। आमण्ड के अनुसार वितरण की प्रक्रिया का न्यायपूर्ण होना बहुत महत्वपूर्ण होता है। राजनीतिक विकास की धारणा में समावेशी विकास व सुस्थिर विकास निहित है। एक विश्व संस्कृति का स्वरूप इनका निदान खोज सकता है।

हेलियों जाग्वराइब का प्रतिमानः

राजनीतिक विकास के बारे में चिन्तन करने वाले आधुनिक विचारकों में जाग्वाराइब का नाम अग्रणी है। उन्होंने अपनी पुस्तक 'पॉलिटिकल डवलपमेण्टः ए जनरल थ्योरी एण्ड लैटिन अमेरिकन केस स्टडभ्,1973 के अन्तर्गत राजनीतिक विकास को एक व्यापक अवधारणा के रूप में समझाया है। राजनीति विकास को चार आयामों के रूप में स्पष्ट किया जा सकता है-

1.राजनीतिक विकास परिवर्त्य के रूप में:

राजनीतिक प्रणाली में संरचनात्मक परिवर्तन लाने वाली प्रणाली ही राजनीतिक विकास है। यह संरचनात्मक स्तर पर सामाजिक व्यवस्था की उपव्यवस्था है। राजनीतिक विकास के लक्षणों को तीन प्रकार के चरों के आधार पर निर्धारित किया जा सकता है। पहला है, प्रचालानात्मक चर अर्थात् बुद्धिसंगत अभिमुखीकरण;संरचनात्मक अभिमुखीकरण; क्षमता या सामर्थ्य; दूसरा सहभागिता परिवर्त्य : राजनीतिक संचालन; राजनीतिक एकीकरण; राजनीतिक प्रतिनिधित्व; तीसरा दिशात्मक परिवर्त्य : राजनीतिक उच्चतर विन्यासन; विकास अभिमुखीकरण।

2.राजनीतिक विकास राजनीतिक दिशा में परिवर्त्य के रूप में:

राजनीतिक दिशा परिवर्तन या चलने का ज्ञान बताती है। संरचनात्मक परिवर्तन जो व्यवस्था के भीतर या बाहर होते हैं। ऐसे परिवर्तन विश्लेषणात्मक एवं संश्लेषणात्मक होते हैं। अतः राजनीतिक विकास के लक्षण संरचनात्मक परिवर्तनों की प्रकृति पर निर्भर करते हैं।

3.राजनीतिक विकास एक प्रक्रिया के रूप में:

एक प्रक्रिया के रूप में राजनीतिक विकास का मतलब है- राजनीतिक आधुनिकीकरण $ संस्थायीकरण। अतः प्रचलनात्मक व सहभागी परिवर्त्यों का विकास ही राजनीतिक विकास कहलाता है।

4.राजनीतिक विकास विविध पहलुओं के रूप में:

जाग्वाराईव के अनुसार राजनीतिक विकास कोई एक पक्ष का विकास नहीं है वरन् यह अनेक पक्षों को व्यक्त करता है। राजनीतिक विकास परिवर्त्य, दिशा व प्रक्रिया का सामुहिक स्वरूप होता है।

सैमुअल फिलिप्स हण्टिग्टन का प्रतिमानः

अमेरिकी राजनीतिक चिन्तक हण्टिग्टन ने पश्चिमी चिन्तन में आधुनिकीकरण सिद्धान्त का आलोचनात्मक विश्लेषण किया है। अप्रैल, 1965 में वर्ड पॉलिटिक्स में 'पॉलिटिकल डवलपमेण्ट एण्ड पॉलिटिकल डिके' शीर्षक से आलेख प्रकाशित हुआ। हण्टिग्टन ने इसमें राजनीतिक क्षय की धारणा का विस्तृत उल्लेख किया है अतः उसे राजनीतिक विकास की तुलना में राजनीतिक क्षय के सिद्धान्त का प्रथम प्रतिपादक कहा जाता है। सामान्य अर्थ में देखें तो उसने राजनीतिक संस्थाओं के विकास के संस्थायीकरण को ही राजनीतिक विकास माना है। वह प्रक्रिया जिसके द्वारा संस्थायीकरण आरम्भ होता है उसे आधुनिकीकरण के नाम से जाना जाता है परन्तु हण्टिग्टन की मान्यता है कि राजनीतिक विकास एवं राजनीतिक आधुनिकीकरण में कोई प्रत्यक्ष सम्बन्ध नहीं होता है अर्थात् आधुनिकीकरण की प्रक्रिया से राजनीतिक विकास हो, यह अनिवार्य नहीं है जैसे कि चीन व उत्तर कोरिया। इसी तरह राजनीतिक विकास होने पर आधुनिकीकरण हो जाए, यह भी जरूरी नहीं हैं जैसे कि भारत व नेपाल।

सामान्य राजनीतिक सहमति, समुदाय, स्वाभाविक वैधता, संगठन, प्रक्रिया, प्रभावशीलता, मूल्य एवं स्थिरता इत्यादि तत्त्व सर्वसत्तावादी एवं लोकतांत्रिक राज्यों में अन्तर दर्शाते हैं परन्तु अमेरिका, संयुक्त ब्रिटेन व सोवियत संघ तीनों में अलग-अलग शासन के स्वरूप होने पर भी ऐसे लक्षण दिखायी देते हैं तथापि इन लक्षणों का तीसरी दुनिया के देशों में व्यापक अभाव पाया गया है। द्वितीय महायुद्ध के पश्चात् नवोदित लोकतांत्रिक देशों में व्यापक स्तर पर राजनीतिक अस्थिरता और राजनीतिक अव्यवस्था उत्पन्न हो गयी है। इससे मुक्ति के लिए इन्होंने पश्चिमी उदारवादी प्रतिमान का अनुगमन किया (आधुनिकीकरण की नकल) परन्तु इस जल्दबाजी में तीव्र गति के आधुनिकीकरण ने राजनीतिक विकास को नहीं अपितु राजनीतिक क्षय को उत्पन्न किया। हण्टिग्टन ने इसे चार आयामों के आधार पर समझाया है :

1.राजनीतिक विकास आधुनिकीकरण के रूप में:

आधुनिकीकरण की दो विशेषताओं को मुख्यतः स्वीकार किया गया है। एक यह कि राजनीतिक विकास, उस आधुनिकीकरण की व्यापक प्रक्रिया का एक भाग है जो सम्पूर्ण

समाज से सम्बन्धित होती है। दूसरा राजनीतिक विकास, राजनीतिक आधुनिकीकरण से सम्बन्धित है जो कि एक विस्तृत एवं जटिल प्रक्रिया है। इसे पाई ने 10 परिभाषाओं के रूप में बहुमुखी विशेषता वाली धारणा बताया है। सामान्यतः इसे चार समूहों के रूप में व्यक्त कर सकते हैं- विवेकशीलता ;राष्ट्रीय एकीकरण; लोकतांत्रिकरण; सामाजिक संचारण
कार्ल डॉयश् के अनुसार आधुनिकीकरण अर्थात् सामाजिक संचारण, सामाजिक परिवर्तन की जटिल प्रक्रिया है जो राजनीति में आधारभूत परिवर्तन के लिए महत्त्वपूर्ण होती है। शिक्षा में वृद्धि, नगरीकरण, जन संचार का प्रस्तुतीकरण, औद्योगीकरण, प्रतिव्यक्ति आय बढ़ने से सरकार के पास अनेक प्रकार की मांग आगतों के रूप में पहुँचती है जिससे शासन प्रणाली की क्षमताओं में विस्तार होता है, अभिजनों का उदय, संगठनों व प्रक्रियाओं, जनसहभागिता, स्थानीयत्ता से राष्ट्रीय स्तर की ओर उन्मुख होती है। इसे सामाजिक संचारण व राजनीतिक विकास के रूप में देखा जा सकता है। अतः आधुनिकीकरण का मतलब जन संचारण जन संचारण का मतलब जन सहभागिता में वृद्धि, जन सहभागिता में वृद्धि का मतलब है परम्परागत समाज का आधुनिक समाज में रूपान्तरण अर्थात् सहभागी संस्कृति (आमण्ड-वर्बा के अनुसार) अतः जनसहभागिता ही राजनीतिक विकास है।

2.राजनीतिक विकास संस्थायीकरण के रूप में:

संस्थायीकरण के रूप में राजनीतिक विकास एक तरफ सामाजिक संचारण एवं सहभागिता के बीच अति महत्वपूर्ण सम्बन्ध होते है तो दूसरी ओर राजनीतिक संगठनों की वृद्धि, राजनीतिक विकास को अनेक उद्देश्यों से परिभाषित करने में उपयोगी है जैसे कि राजनीतिक संगठनों और प्रक्रियाओं का संस्थायीकरण। यह आधुनिकीकरण की सामाजिक प्रक्रिया और राजनीतिक संरचना की मजबूती, स्थिरता, परम्परागत, सक्रांतिकालीन या आधुनिकता के बीच अन्तःक्रिया पर ध्यान केन्द्रित करता है। राजनीतिक संगठनों एवं प्रक्रियाओं की मजबूती व स्थिरता उनके समर्थन के क्षेत्र व उनके संस्थायीकरण के स्तर पर निर्भर होती है। क्षेत्र अर्थात् समाज में क्रियाओं का स्तर, कितने लोग राजनीतिक संगठनों व प्रक्रियाओं में सहभागी होते हैं। (सीमित या व्यापक क्षेत्र) अतः संस्थायीकरण वह प्रक्रिया है जो संगठनों व प्रक्रियाओं में मूल्य एवं स्थिरता को स्थापित करती है। किसी राजनीतिक प्रणाली में संस्थायीकरण का स्तर (उच्च व निम्न) चार कारकों पर निर्भर करता है- अनुकूलता-कठोरता जटिलता-सामान्यीकरण, स्वायत्तता-अधीनता, संसक्त-विखण्डन

3.संचारण बनाम संस्थायीकरण:

संचारण बनाम संस्थायीकरण एशिया, अफ्रीका व लैटिन अमेरिका में तीव्र गति से बढ़ रहा है। बदलाव की यह तीव्र प्रक्रिया इन क्षेत्रों में राजनीतिक संस्थाओं के क्षय के लिए प्रत्यक्ष रूप से जिम्मेदार होती है। अमेरिकी औद्योगिक मनोविज्ञानी कारेन हयूजर ने यह साबित किया है कि जन पूंज समाज को उदित करने वाले तीव्र औद्योगीकरण व नगरीकरण ने अलगाव को जन्म दिया है। इन क्षेत्रों में (नगरीकरण) जन आंदोलनों को आमंत्रण मिला है। अतः तीव्र

आर्थिक वृद्धि राजनीतिक अस्थिरता को जन्म देती है। यह जन संचारण के कारण नहीं वरन् लोगों की बढ़ती आकांक्षाएँ पूर्ण न हो पाने के कारण ऐसा होता है जो की कुण्ठाओं के बढ़ने से उत्पन्न होती है। बर्मा, श्रीलंका, गणराज्य कोरिया उच्च शिक्षित राज्य है परन्तु वे राजनीतिक स्थिरता के प्रतिमान नहीं हैं। लैटिन अमेरिकी क्षेत्र में क्यूबा, 5वाँ शिक्षित राज्य है परन्तु पहला साम्यवादी, केरल-शिक्षित परन्तु साम्यवादी सरकार चुनने वाला भारत का प्रथम राज्य है। इसी तरह आधुनिकीकरण में जब (आर्थिक, सामाजिक, राजनीतिक) तीनों के बीच संतुलन स्थापित नहीं हो पाता है तो वह असंतुलन राजनीतिक पतन का प्रतीक होता है।

राजनीतिक स्थिरता एवं राजनीतिक व्यवस्था दोनों राजनीतिक विकास के लक्षण हैं परन्तु राजनीतिक अस्थिरता व अव्यवस्था पतन के लक्षण होते हैं। तीव्र आर्थिक व सामाजिक परिवर्तन विद्यमान मूल्यों एवं व्यवहार के प्रतिमान पर प्रश्न खड़ा करता है। अतः संस्थागत पतन, आधुनिकीकृत देशों में सामान्य परिदृश्य बन गया है। सैन्य शासन, लोकतंत्र का पतन, अस्थिरता, अव्यवस्था, स्वायत्तता एवं संसक्ति का अभाव इत्यादि इन क्षेत्रों के लक्षण हैं। अतः सामाजिक संचारण, राजनीतिक सहभागिता, राजनीतिक संगठन और संस्थायीकरण के बीच अर्थात् सामाजिक, राजनीतिक व आर्थिक तीनों व्यवस्थाओं में संतुलन ही राजनीतिक विकास का अन्तिम उपाय है। इनके बीच दूरी या गैप ही राजनीतिक पतन होता है। विकासशील देशों की राजनीतिक प्रणालियाँ निर्धनता के कारण अस्थिर नहीं होती वरन आधुनिकीकरण के नकल या होड़ में अपने संतुलन को बनाये नहीं रख पाती है अतः असंतुलन व अस्थिरता अर्थात् पतन या क्षय का आगमन होता है।

4.संस्थागत विकास की रणनीतियाँ:

विकासशील समाजों में सामाजिक संचारण का उच्च स्तर राजनीतिक पतन का प्रमुख कारण है। अतः प्रभावी राजनीतिक संस्थान स्थिरता के लिए अपरिहार्य हैं और अन्ततः लोकतांत्रिक शासन के लिए और यदि पहले से ही सुस्थिर आर्थिक विकास की नीतियाँ तैयार की गई हो तो यह सफल होगा। अतः संस्थागत निर्माण के लिए सामान्यतया कई तरह की रणनीतियाँ हो सकती हैं जैसे कि लोगों की मनोवैज्ञानिक एवं सांस्कृतिक विशेषताओं का पता लगाना; भिन्न समाजों में संस्थाओं के निर्माण की क्षमताएं अलग होती हैं; संस्थाओं का निर्माण; धीमी गति से समाजीकरण; दलों को प्राथमिकता देना इत्यादि।

इस प्रकार हण्टिग्टन ने तीसरी दुनिया के देशों को पश्चिमी प्रतिमान का अनुगमन नहीं करने की सलाह दी है। उदारवादी प्रतिमान विकसित समाजों से भिन्न विकासशील समाजों पर लागू नहीं किया जा सकता है। संस्थाओं, संगठनों का निर्माण, राष्ट्र निर्माण की प्रक्रिया का पहला कदम होता है।

रिग्स का प्रतिमानः

चीनी मूल के अमेरिकी राजनीतिक चिन्तक रिग्स ने राजनीतिक विकास को वेबर की तरह सामान्यतया प्रशासनिक एवं विधिक विकास के स्वरूप में देखा है। पाई, पॉवेल एवं

हण्टिंग्टन के विचारों का अध्ययन कर उसने 'विकास फंद' सिद्धान्त का प्रतिपादन किया है। रिग्स के अनुसार राजनीतिक आधुनिकीकरण और संस्थायीकरण ही राजनीतिक विकास है। उसने हण्टिंग्टन की क्षरण की धारणा का विश्लेषण किया और पाई के विकास संलक्षण के आधार पर समानता व क्षमता में संतुलन को विकास के रूप में व्यक्त किया है।

- रिग्स के अनुसार राजनीतिक विकास का आशय केवल विकसित देशों की संस्थाओं के स्वरूप को स्वीकृत करना या पाश्चात्य संस्कृति की नकल करना नहीं है।
- सांस्कृतिक एवं तकनीकी परिवर्तन भिन्न होते हैं। सभी राजनीतिक संस्थाएँ तकनीकी परिवर्तन का परिणाम हैं, जैसे कि राजनीतिक दल।
- राजनीतिक विज्ञान में संरचनावादियों ने संरचनाओं पर और प्रकार्यात्मकवादियों ने प्रकार्यों पर अधिक ध्यान दिया है।
- रिग्स स्वयं संरचनावादी है अतः उसने अपने विकास सिद्धान्त का आधार संरचनात्मक विभिन्नताओं को माना है। उसने पाई के विकास संलक्षण के आधार पर अपने सिद्धान्त को विकसित किया है। अर्थात् राजनीतिक व्यवस्थाओं में जितना अधिक संरचनात्मक विभिन्नीकरण एवं कार्यात्मक विशेषीकरण होगा, उसमें उतनी ही जटिल समस्याओं का सामना या समाधान करने और लक्ष्य प्राप्ति की क्षमता होगी।
- पर्याप्त संरचनात्मक विभिन्नीकरण के बिना समता व क्षमता कोई मायने नहीं रखती है क्योंकि विभिन्नीकृत समाज में ही औपचारिक संस्थाओं के विकास के उच्च स्तर की क्षमता वाली राजनीतिक प्रक्रियाएँ विकसित होती हैं जो बहुत हद तक सहभागिता की समानता को स्थापित करने में सहायता करती हैं।
- समानता या वामपंथी और क्षमता या दक्षिणपंथी सबसे महत्त्वपूर्ण है जिनके बीच संतुलन अपरिहार्य है। इनमें असंतुलन से राजनीतिक विकास, विकास फन्द में फंस जाती है जो कि राजनीतिक प्रणाली को पतन की ओर ले जाता है। यह फन्द परम्परागत या आधुनिक की अपेक्षा संक्रान्तिकालीन समाजों में अधिक पाया जाता है।
- हण्टिंग्टन से भिन्न मत रखते हुए रिग्स ने कहा कि अत्यधिक संस्थायीकरण भी 'विकास फन्द' बन सकता है जैसे कि चीन में (सर्वसत्तावाद एवं लोकतांत्रिक केन्द्रीयकरण) और भारत (विकेन्द्रीकरण एवं विशेषीकरण पर बल) दोनों ही प्रणालियां विकास फन्द में है।

इस तरह से रिग्स समता, क्षमता, विभिन्नीकरण का एक नया सिद्धान्त प्रस्तुत करता है तथापि यह अव्यावहारिक है या परीक्षण पर खरा नहीं उतरता है।

राजनीतिक विकास का मार्क्सवादी-लेनिनवादी सिद्धान्तः

तुलनात्मक राजनीति के अध्ययन के अनेक महत्त्वपूर्ण उपागमों में से एक उपागम है मार्क्सवादी-लेनिनवादी उपागम। इस सिद्धान्त के समर्थकों ने राजनीतिक दुनिया को

पूंजीवादी या उदावादी सिद्धान्तकारों की अपेक्षा एक नवीन दृष्टिकोण से समझाने का प्रयास किया है। जहाँ तक राजनीतिक विकास के साम्यवादी प्रतिमान की बात है तो वह भी निःसन्देह उदारवादी, प्रजातांत्रिक या पश्चिमी मॉडल या आंग्ल अमेरिकी प्रतिमान के विकल्प के रूप में प्रस्तुत किया गया है तथापि यह तीसरी दूनिया का राजनीकि विकास कैसे होगा? इसके लिए कोई भी विकास प्रतिमान उपलब्ध नहीं कराता है। यह वास्तव में उदारवादी या विकसित देशों शोधार्थियों के द्वारा प्रतिपादित दृष्टिकोण की आलोचना या शोषण के रणनीति का विवरण ही देता है। यह पश्चिमी सिद्धान्त से पूर्णतः भिन्न दृष्टिकोण रखता है। इस परम्परा के विचारों की पृष्ठभूमि मार्क्स, लेनिन, स्टालिन के विचारों में दिखायी देती है। जिसे आगे चलकर मार्क्सवादी व नवमार्क्सवादी चिंतकों के द्वारा निर्भरता सिद्धान्त या अल्पविकास के सिद्धान्त के रूप में व्यक्त किया गया है। इनमें फ्रैंक, समीर अमीन, पॉल बैरन, डाओस जैसे विचारकों का विशेष योगदान रहा है।

मार्क्स का चिंतनः

- मार्क्सवाद राजनीतिक विकास की आर्थिक व्याख्या है। यद्यपि राजनीतिक विकास 1960 के दशक की धारणा है परन्तु राजनीतिक अर्थशास्त्र प्राचीन अवधारणा है। राजनीतिक अर्थशास्त्र शब्द यूनानी शब्दों पॉलिटिकोस व आइकोनोमिया से निर्मित है। पॉलिटिकोश का अर्थ है-राज्य, समाज व ओइकोस यानि घर व नोमोस यानि कानून है अर्थात् किस तरह से घर का आर्थिक प्रबन्ध किया जाए? अतः यह एक विज्ञान है जो उन सामाजिक सम्बन्धों का अध्ययन करती है जो उत्पादन, वितरण, विनियम और उपभोग इत्यादि भौतिक उपादानों के बीच विकसित होते हैं।
- मार्क्स का विश्वास था कि निजी सम्पत्ति और यर्थाथ लोकतन्त्र एक साथ विद्यमान नहीं हो सकते। उन्हें 'वैज्ञानिक साम्यवाद' के संस्थापक के रूप में जाना जाता है। उसने वैज्ञानिक साम्यवाद द्वारा स्पष्ट किया है कि भौतिक शक्तियाँ, सामाजिक विकास की प्रक्रिया की वाहक होती हैं। 'अतिरिक्त मूल्य का सिद्धान्त' और 'द्वंद्ववात्मक भौतिकवाद' मार्क्स की अवधारणा के मूल आधार रहे है। उसने यह तथ्य प्रस्तुत किया है कि आर्थिक प्रणाली के 'आधार' पर ही राजनीतिक संरचना अर्थात् अधिरचना का सर्जन होता है। मार्क्स की मान्यता है कि उत्पादन का तरीका ही समाज में राजनीतिक प्रणाली की स्थापना को निर्धारित करता है।
- राजनीतिक अर्थशास्त्र दृष्टिकोण इस बात पर बल देता है कि सभी प्रकार की राजनीतिक संस्थाओं और गतिविधियों को उस समय विद्यमान आर्थिक प्रणाली के द्वारा आकार दिया जाता है। यहाँ तक कि राजनीतिक संस्थाओं और व्यवहार का प्रतिमान भी उत्पादन का तरीका निर्धारित करता है। उसके अनुसार सामाजिक, राजनीतिक, धार्मिक व सांस्कृतिक प्रणालियों के विकास में भौतिक उत्पादन महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है।

अतः राजनीतिक विकास पश्चिमी औद्योगिकृत राष्ट्रों का प्रतीक है परन्तु इसमें सार्वभौमिक प्रयोज्यता का अभाव है। तीसरी दुनिया का समाज व संस्कृति इससे भिन्न है अतः उदारवादी उपागम के अनुसार इन गरीब देशों का विकास नहीं हो सकता है।

लेनिन का दृष्टिकोणः

रूसी क्रान्ति के नायक लेनिन ने जार (निकोलस द्वितीय) के विरुद्ध नवीन व्यवस्था साम्यवाद की स्थापना की। लेनिन के अनुसार 'पूंजीवाद साम्राज्यवाद की उच्चतम अवस्था होती है।' अतः पश्चिमी प्रतिमान मूलतः आर्थिक प्रतिमान हैं। जहाँ गरीबों के शोषण को वैद्य स्वरूप देने का प्रयास किया जा रहा है। लेनिन ने निर्भरता सिद्धान्त को साम्राज्यवाद के सिद्धान्त के रूप में व्यक्त किया। उसके अनुसार यह विश्व का राजनीतिक व आर्थिक विभाजन ही नहीं है अपितु गरीब देशों को पश्चिमी देशों पर निर्भर बनाता है। यह औपचारिक रूप से राजनीतिक निर्भरता, वित्तीय व कूटनीतिक निर्भरता का जाल है।

विकास का पराश्रितता प्रतिमानः

राजनीतिक विकास की अवधारणा में पराश्रितता या निर्भरता सिद्धान्त को शामिल किये बिना, विकास सिद्धान्तों का अध्ययन अपूर्ण ही होगा। यह उदारवादी राजनीतिक विकास की धारणा का प्रति विकल्प प्रस्तुत करता है। अधिकांश शोधार्थी तीसरी दुनिया से सम्बन्धित है। तीसरी दुनिया के विचारकों ने एक अलग नजरिया प्रस्तुत किया है।

आन्द्रे फ्रैंक के अनुसारः

जर्मन मूल के अमेरिकन चिंतक आन्द्रे जी. फ्रैंक जिन्होंने राजनीतिक विकास की धारणा का गहनतम विश्लेषण किया है। विकास के आधार पर विकसित एवं विकासशील या पिछड़े राज्यों का विभाजन किया गया है। अतः उसने तीसरी दुनिया के देशों में विकास की प्रक्रिया का अध्ययन करते हुए 'राजनीतिक अल्पविकास' की अवधारणा का उल्लेख किया है।

- इनकी मान्यता (मार्क्सवादी व नवमार्क्सवादियों के अनुरूप) है कि पूंजीवादी या पश्चिमी विकसित राज्यों की गतिविधियों के कारण ही तीसरी दुनिया के राष्ट्र पिछड़े हुए या अल्पविकसित कहलाते है। उसने अल्पविकास की इस धारणा को 'केन्द्र परिधि सिद्धान्त' के माध्यम से वर्णित किया है। विश्व में आर्थिक प्रभुत्व के कारण अमीर देश गरीब देशों के राजनीतिक विकास के बहाने कैसे शोषण करते हैं? संसाधनों के असमान वितरण एवं शोषण के कारण अधिकांश देश अल्पविकसित हैं और इस प्रक्रिया से 'अल्पविकास का विकास' नहीं होगा क्योंकि उनके बीच केन्द्र व परिधि विद्यमान होते है। केन्द्र का विकास, परिधि के अल्पविकास की अनिवार्य शर्त है परन्तु विकास, केवल केन्द्र का होता है और परिधि का तो केवल अल्पविकास होता है। पश्चिम केवल विकासशील देशों के शोषण के विस्तार पर ही विकसित हो सकेगा। विकासशील देशों को आजकल परिधि के देश कहा जाता है।

- अल्पविकास के सिद्धान्त का प्रतिपादन सर्वप्रथम लैटिन अमेरिकी लेखकों के द्वारा किया गया। लैटिन अमेरिकी समाज के आर्थिक एवं राजनीतिक पिछडेपन को समझने का प्रयास उस समय किया गया जब वे 20वीं सदी के तीसरे दशक में पुर्तगाल व स्पेनिश साम्राज्य से स्वतंत्र हो रहे थे। 150 वर्षों के स्वतंत्र जीवन के बाद भी ये राष्ट्रीय राज्य अल्पविकसित ही रहे है। ए.जी. फ्रैंक के अनुसार लैटिन अमेरिकी देशों में अल्पविकास वैसे ही बना रहा जैसे कि उपनिवेशवाद से स्वतंत्र एशिया, अफ्रीकी देशों में आर्थिक परतन्त्रता विद्यमान रही।
- फैंक ने अपनी पुस्तक 'केपिटालिज्म एण्ड अण्डरडवलपमेण्ट इन लैटिन अमेरिका,1967 में ब्राजील व चिली के अध्ययन में इस सिद्धान्त का विषय वस्तु परीक्षण किया। उसने अल्पविकास के पीछे चार कारण बताए है-
- अल्पविकास की प्रकृति वास्तविक नहीं है क्योंकि वर्तमान विकसित राष्ट्र कभी भी विकास की प्रक्रिया में अल्पविकसित नहीं रहे हैं। वरन् वे इतिहास में अविकसित ही दिखायी देते हैं। जिस अल्पविकास की बात की गई है वह विश्व पर पूंजीवादी प्रभुत्व का परिणाम है।
- पूंजीवादी और पूर्व पूंजीवादी या सामन्ती अवस्वस्थाओं में किया जाने वाला विभेद असत्य है क्योंकि पूंजीवादी राज्य समान अवस्थाओं से गुजरे हैं। पूर्व या सामन्ती कोई अवस्था नहीं होती है।
- केन्द्र व परिधि का सम्बन्ध न केवल बाहरी स्तर पर अपितु तीसरी दुनिया के राष्ट्रों के आन्तरिक जीवन में भी पाया जाता है।
- युद्ध एवं मन्दी जैसी दशाएं उनकों पूंजीवाद की ओर अग्रसर करती है परन्तु सत्य यह है कि पूंजीवादी देश अपने विकास के लिए ही अल्पविकास का नेतृत्व करते हैं।
- दास सेण्टोस अनुसार निर्भरता की परिघटना तब घटित होती है जब पूंजीवादी आर्थिक प्रणाली का विस्तार होता है। प्रभुत्वशाली राष्ट्रों के द्वारा तीसरी दुनिया के राष्ट्रों का शोषण ही अल्पविकास का प्रमुख कारण है। यह निर्भरता यूरोपियन प्रभूत्व, वित्तीय, आद्यौगिक, व्यापारिक रूवरूप में दिखायी देती है। इसने विकासशील देशों का अध्ययन कर नव निर्भरता का विचार प्रतिपादित किया है।

पॉल बेरन व पॉल स्विजी के अनुसारः

- बेरन एवं स्वीजी ने पराश्रितता सिद्धान्त को 'एकात्मक पूंजीवाद' के माध्यम से स्पष्ट किया है अर्थात् पार राष्ट्रीय निगमों के द्वारा पूंजी निवेश के रूप मेंएकाधिकार स्थापित कर लेना। दोनों ही चिंतको के विचार मार्क्सवादी अवधारणा से प्रभावित है। इनकी मान्यता है कि निगम पूंजी के स्थान पर पूंजी निवेश स्थापित हो गया है। दोनों लैटिन अमेरिकी शोधार्थियों ने इस सन्दर्भ में अध्ययन किया है। इन्होंने 20 वीं शताब्दी में

केन्द्र में स्थित एकाधिकार पूंजीवाद का उसकी परिधियों पर पड़ने वाले बाहरी प्रभावों का विश्लेषण किया है।

- पॉल बेरन कहते है कि पूंजीवाद अपने अन्तर्निहित स्वभाव के कारण तीसरी दूनिया का शोषण करता है। वे कहते कि यह विकसित देशों के हित में है कि वे विकासशील देशों को अपने पर निर्भर बनाए रखे ताकि वे बाद में उनके लिए कच्चे माल के स्त्रोत बन सकें। ये देश परिधि पर स्थित होते है जो केवल कृषि उत्पादों का उत्पादन कर अविकसित ही रहते है। फ्रैंक से लेकर बैरन तक का विश्लेषण तीसरी दुनिया के समाजों का मार्क्सवादी दृष्टिकोण से अल्पविकास के चिरकालीन अध्ययन का परिदृश्य है।
- उनका अवधारणात्मक ढांचा पूंजीवादी प्रभुत्व के साथ जुड़ा हुआ है। अतः वे मार्क्सवादी दृष्टिकोण से अर्थव्यवस्था का विश्लेषण करते हुए दिखायी देते हैं। वे अन्तर्राष्ट्रीय स्तर की अर्थव्यवस्था में पूजीवादी शोषण को तो स्पष्ट करते हैं परन्तु तीसरी दुनिया के समाजों के लिए आर्थिक एवं राजनीतिक विकास का कोई भी संभाव्य या स्वीकार्य मॉडल प्रस्तुत नहीं करते हैं।
- इस सिद्धान्त ने उदारवादी प्रतिमान के उस तीसरे पक्ष पर कोई प्रकाश नहीं डाला है जिसकी अनेक पिछडे देश वकालात करते हैं। अनेक राष्ट्रों के द्वारा पश्चिमी उपागम को अपनाया गया है और यहाँ पर शिकायतें रखने के ढंग भी उपलब्ध हैं।
- निःसंदेह मार्क्सवादी उपागम राजनीति विज्ञान के विद्यार्थियों एवं शोधार्थियों में अपनी बौद्धिक सम्पदा के निवेश को प्रोत्साहित करता है। जिससे की गैर पश्चिमी समाजों को राजनीतिक विकास का प्रतिमान उपलब्ध हो सके।

समीर अमीनः

मिस्त्र मूल के फ्रैंच शोधार्थी समीर अमीन को नव मार्क्सवादी विचारक माना गया है। अमीन की मान्यता है कि अल्वविकसित देशों का सामाजिक आर्थिक विकास बाह्य शक्तियों द्वारा नियंत्रित है। नवीन अन्तर्राष्ट्रीय आर्थिक व्यवस्था या निओं की मांग नेम के अल्जीर्यस सम्मेलन,1974 में पहली बार उठायी गई। असमानता एवं अन्याय पर स्थापित अन्तर्राष्ट्रीय आर्थिक प्रणाली के कारण तीसरी दुनिया के देशों का शोषण हो रहा है। अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार एवं विनिमय की सम्पूर्ण व्यवस्था पर शक्तिशाली राष्ट्रों का ही प्रभुत्व रहा है जो कि अल्पविकास का प्रमुख कारण है।

इस उपागम की सबसे बड़ी कमी यह रही है कि उदारवादी उपागम को अल्पविकास का जिम्मेदार ठहराने पर भी पिछडे देशों या तीसरी दुनिया के राष्ट्रों के लिए विकास का कोई वैकल्पिक प्रतिमान प्रस्तुत नहीं कर पाया है।

14

राजनीतिक संस्कृति व राजनीतिक समाजीकरण

राजनीतिक संस्कृति

तुलनात्मक राजनीति के सांस्कृतिक सिद्धांतों में सबसे प्रमुख उपागम है-राजनीतिक संस्कृति उपागम। राजनीतिक संस्कृति को सामान्यतया किसी राजनीतिक प्रणाली के प्रति उस देश के नागरिकों के आधारभूत मूल्यों, विश्वासों, विचारों, मानकों, अभिवृतियों एवं अभिविन्यासों के समुह के रूप में परिभाषित किया जाता है। यह सर्वज्ञात है कि तुलनात्मक राजनीति में राज्यों की राजनीतिक प्रणालियों का विश्लेषण किया जाता है। इस क्रमिक प्रक्रिया में व्यवहारवादी क्रांति के प्रभाव से समाज विज्ञानियों ने सामाजिक, राजनीतिक एवं आर्थिक प्रणाली के बारे में अधिक ज्ञान प्राप्त करने हेतु अंतःअनुशासनात्मक उपागम के माध्यम से पार राष्ट्रीय अध्ययन की षुरुआत हुई। इसके बाद संरचनाओं व संस्थाओं के अध्ययन की अपेक्षा मानव के राजनीतिक व्यवहार की समस्याओं का तथा व्यक्तिगत एवं सामाजिक समूह का अनुभवात्मक अध्ययन प्रारंभ हुआ। राजनीतिक प्रणाली जिस पर्यावरण या सामाजिक परिवेश में स्थित होती है, उस समाज की संरचना व संस्कृति लोगों के राजनीतिक व्यवहार का प्रारूप निर्धारित करती है।

सामान्य संस्कृति लोगों की जीवन शैली, भोजन के अभ्यस्त, कपड़े, मकान, उनके व्यवहार, सामाजिक सम्मान, पद, प्रतिष्ठा, धर्म, प्रजाति, भाषा, रंग-रूप व लैंगिक दृष्टिकोण इत्यादि स्वरूपों में अभिलक्षित होती है। हम जानते है कि सड़क पर गाड़ी चलाने का तरीका भी एक देश से दूसरे देश में भिन्नता रखता है। इसी तरह से सामाजिक प्रणाली और राजनीतिक प्रणाली के बीच पारस्परिक व्यवहार जिसे राष्ट्रीय राजनीतिक संस्कृति के नाम से जाना जाता है, उसमें भी अंतर पाया जाता है। ऐसा क्यों है? इस मानवीय दूनिया में प्रत्येक व्यक्ति और राज्य एक भिन्न और अद्वितीय संस्कृति का वाहक होता है। यह किसी समूह में व्यक्ति के द्वारा सीखा या अधिगम किया गया व्यवहार है। राष्ट्र एक सांस्कृतिक इकाई है, यह मानवीय निकाय है, जहाँ लोग साझा सांस्कृतिक विरासत के माध्यम से एक-

दूसरे से बन्धे रहते है। यूनानी, रशियन, जर्मन व अंग्रेज गहरी ऐतिहासिक परम्पराओं व संस्कृति से दीर्घकाल से जुड़े हुए हैं। अतः संस्कृति किसी देश को एक साथ बने रहने की प्रेरणा व स्थिरता प्रदान करने वाला मूल आधार तत्व है। इसकी अपनी कोई भौगोलिक सीमाएं नहीं होती है। जैसे कि 1990 के यूगोस्लोवाकिया संकट में रशियन डिप्लोमेटस के द्वारा सर्ब लोगों का समर्थन करना तथा 2006 में बेलारूस के विस्तार का समर्थन इसी के उदाहरण रहे है। अतः सामान्य संस्कृति किसी समाज में लौकिक जीवन शैली ही नहीं है वरन् मानवीय स्वभाव के कारण वह लोगों के बीच संचालित होती है और एक पीढ़ी से दूसरी या आगामी पीढ़ी की ओर हस्तानान्तरित होती है या गमन करती है और हस्तांतरण कि इस प्रक्रिया को समाजीकरण की प्रक्रिया कहा जाता है। यह अधिगम संस्कृति एक समाज से दूसरे समाज की ओर बढ़ने पर भिन्न-भिन्न स्वरूप में दिखाई देती है।

राजनीतिक संस्कृति एवं सामान्य संस्कृति में अन्तः सम्बन्ध :

राजनीतिक संस्कृति सिद्धान्त का मूल लक्ष्य किसी सामाजिक प्रणाली और उसकी राजनीतिक उप प्रणाली के मध्य सम्पादित होने वाले राजनीतिक व्यवहार का और उसके पीछे के उतरदायी कारकों का तुलनात्मक अध्ययन है। संस्कृति किस तरह से राजनीतिक संस्कृति को प्रभावित करती है? कुछ राज्य लोकतंत्र को क्यों पसंद करते है और कुछ राज्य इसे पसंद क्यों नहीं करते है? लोगों के राजनीतिक व्यवहार में अन्तर क्यों होता है? नागरिकों की राजनीतिक सहभागिता में अन्तर क्यों होता है? संस्कृति, राजनीतिक जीवन पर अपना प्रभाव कैसे रखती है? ऐसे ही अनेक प्रश्नों के जवाब खोजने के लिए राजनीतिक संस्कृति सिद्धान्त का सहारा लिया गया है।

- यह समाज की सामान्य संस्कृति का ही अभिन्न हिस्सा या भाग होती है अर्थात् वह उसी में से विकसित होती है तथापि उससे स्वायत्तता भी रखती है।
- सामान्य संस्कृति की तरह ही राजनीतिक संस्कृति भी राजनीतिक समाजीकरण की प्रक्रिया के द्वारा किसी देश में एक पीढ़ी से अग्रिम पीढ़ी की ओर प्रवाहित होती है।
- सामान्य संस्कृति एक प्राचीन धारणा है जबकि राजनीतिक संस्कृति व्यवहारवादी क्रांति के बाद की नवीन अवधारणा है।
- राजनीतिक संस्कृति में समाजिक परिवेश या पर्यावरण के उन पक्षों को शामिल किया जाता है जो राज्य व्यवस्था को प्रभावित करते हैं। राजनीतिक संस्कृति विद्यमान राजनीतिक प्रणाली के बारे में लोगों के सोचने या व्यवहार या दैनिक प्रतिमान का स्वरूप है अर्थात् यह लोगों के मूल्यों, मानकों, विश्वासों, मान्यताओं अभीवृर्तियों का समूह है जबकि सामान्य संस्कृति लोगों के आध्यात्मिक जीवन, रीति-रिवाजों, प्रतिकों, उत्सवों तथा उनकी वेशभूषा या कपड़ों, लोक संगीत, लोक साहित्य, लोक कलाओं इत्यादि को व्यक्त करती है।

- किसी समाज के मूल्य राजनीतिक विषय बन जाते है जैसे कि भारत में अनेक धार्मिक स्थानों पर महिलाओं के प्रवेश पर प्रतिबन्ध लगाना, लिव इन रिलेशनशिप, अबोर्शन अधिकार, इच्छा मृत्यु का अधिकार, क्लोनिंग, स्टेम सेल अनुसंधान इत्यादि।

राजनीतिक संस्कृति क्या है और क्या नहीं है?

प्रत्येक राष्ट्र एक भिन्न संस्कृति का वाहक होता है और यहाँ तक कि राजनीतिक जीवन के बारे में अलग मान्यताएं रखता है। किसी देश में विद्यमान राजनीतिक संस्थाएं वहाँ के नागरिकों के मानकों, अभिवृत्तिओं, विश्वासों, आकांक्षाओं की आंशिक प्रतिक्रिया या प्रतिमान होती है। अतः राजनीति के प्रति समझ, राजनीतिक व्यवहार, राजनीतिक उत्तरदायित्व और राजनीतिक प्रणाली में उनकी भूमिकाएँ उस देश की राजनीतिक संस्कृति का स्वरूप निर्धारित करती है। इसे समझने के लिए ही राजनीतिक संस्कृति की अवधारणा का उदय हुआ है। राजनीतिक संस्कृति क्या है और क्या नहीं है? इसे निम्न बिन्दुओं के आधार पर स्पष्ट किया जा सकता है :

1. राजनीति और संस्कृति के पारस्परिक संबंधों के आधार पर राजनीतिक समाज का तुलनात्मक अध्ययन एवं विश्लेषण इसका मुख्य उद्देश्य है।
2. यह सामान्य संस्कृति के ज्ञान के सहारे राजनीति का अध्ययन और विश्लेषण है, राजनीति के माध्यम से संस्कृति का नहीं।
3. इसे राजनीति का संस्कृतिकरण या सांस्कृतिकरण कहते हैं, संस्कृति का राजनीतिकरण नहीं।
4. राजनीतिक संस्कृति, सामान्य संस्कृति का ही एक पक्ष है जिसका संबंध राजनीति से होता है अर्थात समुदाय की संस्कृति के ज्ञान से उस समाज की राजनीति को समझना आसान होता है।
5. राजनीतिक संस्कृति लोगों का मनोविज्ञान है।
6. राजनीतिक संस्कृति जनमत का पर्याय नहीं होती है अपितु यदि जनमत लगातार लंबे समय तक बना रहता है तो वह राजनीतिक संस्कृति की ओर बदल जाता है।
7. प्रत्येक व्यक्ति के राजनीतिक व्यवहार का आधार उस देश की राजनीतिक संस्कृति में निहित होता है। इसीलिए पारसंस, मैक्स वेबर, मैनहाइम, ल्यूसन डब्ल्यू पाई, सिडनी वर्बा तथा आमण्ड जैसे राजनीतिक चिंतको ने राजनीति व्यवहार का विश्लेषण करने के लिए राजनीतिक संस्कृति को आवश्यक माना है।
8. राजनीतिक संस्कृति के साथ-साथ राजनीतिक उप संस्कृति की धारणा भी विद्यमान होती है। जैसे कि भारत में तमिल संस्कृति इसी राजनीतिक संस्कृति का उदाहरण है। उप राजनीतिक संस्कृति की धारणा सामान्यतया उन देशों में दिखायी देती है जो कि सांस्कृतिक बहुलता रखते है। भारत भी ऐसे ही देशों में से एक है।

राजनीतिक संस्कृति सिद्धांत का उदय और ऐतिहासिक विकास :

- राजनीति संस्कृति के अध्ययन ने राजनीति विज्ञान एवं अन्य समाज विज्ञानों के विषयों को बहुत बडे स्तर पर विषय सामग्री उपलब्ध कराई है। राजनीतिक संस्कृति आधुनिक राजनीति विज्ञान अथवा व्यवहारवादी क्रांति का परिणाम है जो 1950-1960 के दशक में उदित हुआ है। व्यवहारवाद में, अध्ययन की ओर अधिक समझ विकसित करने के लिए सामाजिक, आर्थिक एवं राजनीतिक क्षेत्र के समग्र अध्ययन को शामिल किया गया। यह अन्तः अनुशासनात्मक अध्ययन की अग्रिम कड़ी है जिसमें समाज की जटिलताओं को समझने के लिए उस सामाजिक परिवेश को समझने का प्रयास किया गया जिसमें व्यक्ति रहता है। जिस तरह से विद्यमान समाजों की जटिलताओं को समझने में अर्थात् वर्ग व समुदाय समाजशास्त्र से, शक्ति और वैधता राजनीति विज्ञान से और मनोविज्ञान या व्यक्तित्व प्रतिमान मनोविज्ञान से ग्रहण किए गए है, ठीक इसी तरह से मानव के राजनीतिक व्यवहार के सिद्धान्त को समग्र रूप से समझने के लिए राजनीतिक संस्कृति उपागम का सहारा लिया गया है।
- किसी भी देश की राजनीतिक प्रणाली का आकार या स्वरूप उस देश में विद्यमान परिवेश ;विशेषतया सामाजिक व मनोवैज्ञानिक पर्यावरणद्ध से बनता है और यह परिवेश ही लोगों के व्यवहार के प्रतिमानों व आदर्शों का निर्धारण करता हैं और इनका प्रभाव एक लम्बे समय अन्तराल के पश्चात् देश या राज्य या क्षेत्र के राजनीतिक जीवन में दिखायी देता है। जब हम यह कहते है कि राजनीतिक संस्कृति समाज के मूल्यों, विचारों एवं विश्वासों पर केंद्रित होती है तो वास्तव में हम यह कह रहे होते है कि राष्ट्र का इतिहास, रिलिजन, अभिविन्यास और सामान्य सामाजिक-सांस्कृतिक पृष्ठभूमि इसे समझने के लिए महत्वपूर्ण है। रिलिजन और लोकतंत्र में अथवा आर्थिक प्रगति में क्या संबंध है? इसे राजनीतिक संस्कृति सिद्धांत के माध्यम से बखूबी समझा जा सकता है। हम किसी राष्ट्र के संगीत, साहित्य, विज्ञापन एवं टेलीविजन के अध्ययन से उसकी राजनीतिक संस्कृति में प्रवेश कर सकते है। अतः राजनीतिक संस्कृति की अवधारणा राजनीतिक विशेष सन्दर्भ व्यक्तिगत व्यवहार की तुलना करने, विश्लेषण करने और समझने में बहुत ही महत्वपूर्ण है। समसामयिक युग में किसी राज्य के राजनीतिक संघर्ष को समझने के लिए राजनीतिक संस्कृति एक प्रमुख आधार बन गया है जिसका आभास प्रो. हण्टिग्टन के शब्दों से भी होता है कि संस्कृति 21 वीं सदी में राजनीतिक संघर्ष को समझने के लिए राज्यों की अपेक्षा संस्कृति प्रधान स्त्रोत बन गई है।
- ए. डी. टॉकविले का लोकतंत्र के बारे में अध्ययन को अर्थात् अमेरिका की राजनीतिक संस्कृति के अध्ययन का एक प्रयास माना जा सकता है तथापि जर्मन दार्शनिक व समाजशास्त्री मैक्स वेबर पहले चिंतक है जिन्होंने 19वीं सदी के अंतिम समय में रिलिजन एवं आर्थिक विकास के बीच विद्यमान संबंधों का अध्ययन करने के लिए एक

बड़ी परियोजना या प्रोजेक्ट पर कार्य करना आरंभ किया। वेबर के द्वारा राजनीतिक व्यवस्था और वैधता के बारे में किये गए अध्ययन से अथवा राजनीतिक संस्कृति की अवधारणा के अध्ययन का आरंभ माना जा सकता है।

- द्वितीय महायुद्ध जिसमें मित्र राष्ट्र लोकतंत्र और धुरी राष्ट्र अधिनायक तंत्र का समर्थन कर रहे थे। सामाजिक वैज्ञानिकों के चिंतन का विषय रहा है कि कुछ राष्ट्र भिन्न प्रणालियों को क्यों पसंद करते हैं? जबकि वह लोकतांत्रिक नहीं होती हैं। द्वितीय महायुद्ध के दौरान 1939 से 1945 की समयावधि में सांस्कृतिक मानवशास्त्री फ्रांज बाओस, मार्गरेट मीड और रूथ बेनेडिक्ट ने 'संस्कृति और व्यक्तित्व' सम्बन्धी उपागम' को विकसित किया। उनके अनुसार विभिन्न समाजों के सदस्य भिन्न व्यक्तित्व प्रतिमान का प्रतिनिधित्व करते हैं जो कि अलग प्रकार के राजनीतिक कार्यक्रमों व संस्थाओं के समर्थन के रूप में स्पष्ट किए जा सकते हैं। बनेडिक्ट के द्वारा जापानी राजनीतिक संस्कृति के बारे में लेखन कार्य किया जिसे अमेरिका के द्वारा उपयोग मे लिया गया। जर्मनी के निर्वासित दार्शनिक थियोडोर अडोर्नों और उसके सहयोगियों ने युद्ध के दौरान बड़े पैमाने पर अध्ययन किया और उनका कार्य अथॉरिटेरियन पर्सनैलिटी के शीर्षक के रूप में व्यक्त हुआ। जर्मनी के लोगों ने सामाजिक पूर्वाग्रह के कारण सत्ताधारी हिटलर व उसकी तानाशाही का समर्थन किया। अतः राजनीतिक संस्कृति लोगों का मनोविज्ञान है।
- बीसवीं सदी के मध्य में समाजशास्त्री टेलकॉट पारसंस ने अपनी रचना 'दी सोशल सिस्टम' में व्यक्त किया है कि राजनीतिक प्रणाली के सदस्य सामान्यतया सामाजिक प्रणाली अर्थात् सामान्य संस्कृति के सदस्य ही होते हैं। अतः वे परिस्थिति एवं व्यवहार का निश्चित अर्थ लगाते हैं। पारसंस ने प्रतीकों की व्यवस्थित प्रणाली को ही सामान्य संस्कृति कहा है। सामाजिक प्रणाली में निहित अनेक उप-प्रणालियों में से एक होती है- राजनीतिक प्रणाली। अमेरिकी राजनीतिक विचारक गैब्रियल आमंड ने पारसंस की इस उपप्रणाली की संकल्पना को आधार बनाकर ही संस्कृति की संकल्पना में से एक उप-संस्कृति की खोज की है जिसका राजनीतिक प्रणाली से प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से संबंध होता है। 1956 में जनरल ऑफ पॉलिटिक्स के अंतर्गत 'कंपैरेटिव पॉलीटिकल सिस्टम' 1956 के नाम से एक आलेख प्रकाशित हुआ जिसमें आमंड ने इस धारणा को स्थापित किया। अतः आमंड को राजनीतिक संस्कृति सिद्धांत का जनक या पिता माना जाता है। राजनीतिक उपप्रणाली +उपसंस्कृति अर्थात् राजनीतिक संस्कृति।

राजनीतिक संस्कृति का अर्थ और परिभाषाः

- *आलमंड और पावेल के अनुसार : राजनीतिक संस्कृति राजनीतिक प्रणाली के सदस्यों की राजनीति के प्रति व्यक्तिगत अभिवृर्तियों और अभिमुखीकरणों या अभिविन्यासों*

का प्रतिमान है।

- *पाई ने अपनी मौलिक रचना के अंतर्गत राजनीतिक संस्कृति को परिभाषित करते हुए बताया है कि ''यह अभिवृतियों, विश्वासों और मनोभावों का ऐसा पुँज है जो राजनीतिक प्रक्रिया को अर्थ एवं स्वरूप या व्यवस्था प्रदान करता है।''*
- *आर.सी. मैक्रिडीस के अनुसार, ''राजनीतिक संस्कृति साझा सामान्य उद्देश्य और सामान्य स्वीकृत नियमों का समूह है।''*
- *एस पी वर्मा के अनुसार, ''इसमें राजनीति की शैली, पद्धति, स्वरूप, मूल्य एवं चरित्र सब शामिल रहते हैं।''*
- *एंड्रयू हेयवुड के अनुसार, ''यह राजनीतिक विषयों, दल, सरकार, संविधान इत्यादि के संबंध में लोगों की मनोवैज्ञानिक उन्मुखता है जो कि उनके राजनीतिक दृष्टिकोण, मान्यताओं प्रतिकों व मूल्यों में व्यक्त होती है।''*
- *सिडनी वर्बा के अनुसार, ''राजनीतिक विषयों के प्रति अभिविन्यासों का प्रतिमान ही राजनीतिक संस्कृति है।''*

राजनीतिक संस्कृति सिद्धांत की विशेषताएँ :

1. **राजनीतिक संस्कृति एक अमूर्त व नैतिक अवधारणा है।**
2. **यह राजनीतिक प्रणाली के समान ही गतिशील व परिवर्तनशील रहती है जैसे कि सामाजिक समानता, पर्यावरणवाद, सांस्कृतिक बहुलवाद, आत्म-अभिजन इत्यादि।**
3. **यह व्यवस्था के संदर्भ में समाज के दृष्टिकोण को अभिव्यक्त करती है।**
4. **यह अनेक तत्वों ऐतिहासिक, भौगोलिक, सांस्कृतिक, आर्थिक इत्यादि का समन्वित स्वरूप होती है।**
5. **राजनीतिक संस्कृति व्यष्टि दृष्टिकोण अर्थात् राजनीतिक व्यवहार की मनोवैज्ञानिक व्याख्या और समष्टि उपागम अर्थात् राजनीतिक समाजशास्त्र के अध्ययन के बीच के अंतर को समाप्त करती है।**
6. **विभिन्न देशों की राजनीति संस्कृति में भिन्नता, मात्रात्मक और गुणात्मक स्वरूप में होती है परंतु फिर भी अनुभाविक आस्थाएं, विश्वास, मूल्य, अभीरुचियां व अनुक्रियाएं सर्वत्र संपन्न होती हैं।**
7. **राजनीतिक संस्कृति के साथ उप-संस्कृति भी पाई जाती है जैसे भारत या अन्य देशों में जो कि सांस्कृतिक विविधता रखते हैं।**
8. **यह प्राकृतिक स्वरूप की अपेक्षा राजनीतिक समाजीकरण की प्रक्रिया से सीखी जाती है।**

राजनीतिक संस्कृति के मुख्य प्रकारः
आमण्ड और सिडनी वर्बा के अनुसारः

पाई, आमंड और सिडनी वर्बा ने राजनीतिक संस्कृति की धारणाओं पर व्यापक अनुसंधान का कार्य किया है। आमण्ड एवं वर्बा के अनुसार, 'राजनीतिक विषयों, दल, संसद, संविधान ,राष्ट्रपति इतिहास के प्रति व्यक्तिगत अभिविन्यासों का प्रतिमान ही राजनीतिक संस्कृति है।' ऐसे अभिविन्यासों के अथवा आयामों के तीन मुख्य प्रकार होते हैं अर्थात् ज्ञानात्मक अभिविन्यास, अनुभवात्मक अभिविन्यास और मूल्यांकनात्मक आयाम।

1.ज्ञानात्मक अभिविन्यास :

ज्ञानात्मक अभिमुखीकरण दर्शाता है कि किसी देश की राजनीति में सहभागिता हो और इसके लिए नागरिकों में उस राजनीतिक प्रणाली के बारे में तथा उसकी मुख्य संस्थाओं, ऐतिहासिक घटनाक्रम, निर्वाचन प्रणाली, राजनीतिक आंकड़ों और राष्ट्रीय पृष्ठभूमि के बारे में ज्ञान और जागरूकता होनी चाहिए। प्रणाली के बारे में सही या गलत जानकारी दोनों ही प्रकार का ज्ञान राजनीतिक व्यवहार को प्रभावित करता है। व्यक्तिगत हितों के माध्यम से राजनीतिक व्यवस्था में भाग लेने का अवसर राज्य प्रणाली के बारे में राजनीतिक संस्कृति की दिशा या स्वरूप को निर्धारित करता है।

2.भावात्मक अभिविन्यास :

अनुभवात्मक अभिविन्यास राजनीतिक विषयों के बारे में मन में उत्पन्न भावनाओं और अनुभूतियों को व्यक्त करता है। राजनीतिक सहभागिता के लिए नागरिकों को यह विश्वास होना चाहिए कि राजनीतिक प्रणाली एक अतिमहत्वपूर्ण प्रक्रिया है जिसके लिए उनके पास समय होना चाहिए। वे भावनाएं जिनके कारण वह राजनीतिक गतिविधियों को पसंद या नापसंद करता है अथवा सहभागी बनता है या नहीं बनता है। इसी से राजनीति में लोगों की सक्रियता या उदासीनता का पता लगता है। इसका उपयोगितापूर्ण उदाहरण यह है कि ऑस्ट्रिया, नीदरलैंड और नार्वे में प्रत्येक तीन में से दो नागरिक राजनीति में सक्रिय रूचि रखते हैं जबकि अर्जेंटीना, चिल्ली व स्पेन में प्रत्येक तीन में से एक नागरिक सहभागिता में रुचि रखता है।

3.मूल्यांकनात्मक अभिमुखीकरण :

राजनीति में नागरिकों की भागीदारी यह निर्धारित करती है कि उनके मूल्यांकनात्मक अभिविन्यास कैसे होंगे? राजनीति निर्णय प्रक्रिया में उसका योगदान, उचित-अनुचित, शुभ-अशुभ का मूल्यांकन करना। नागरिक सामान्यतया तीन स्वरूपों में मूल्यांकन करते हैं अर्थात् क्या इसका समर्थन करना चाहिए? अर्थात राजनीतिक समर्थन। क्या सामान्य जन पूर्ण तरह प्रभावित होगा? विषयात्मकता या प्रभावोत्पादकता अर्थात् सामान्य नागरिकों का यह महसूस करना कि उनके विचार और कार्य राजनीतिक प्रणाली में निर्णायक होते हैं। क्या प्रणाली या व्यवस्था भी ऐसा ही करती है? अर्थात बाह्य या सामान्य जन को यह महसूस होना कि उनकी इच्छाओं या आकांक्षाओं के प्रति प्रतिनिधि या नेता और संस्थाएं प्रतिक्रिया रखती हैं। नार्वे में 10 में से 9 लोग अपनी सरकार से संतुष्ट रहते हैं तथा जापान में 10 में से एक व्यक्ति संतुष्ट रहता है।

- सिडनी वर्बा और आमण्ड ने अपनी पुस्तक दि सिविक कल्चरः पॉलिटिकल एटीटयूडस एण्ड डेमोक्रेसी इन फाईव नेशंस,1963 के अंतर्गत लोकतांत्रिक मूल्यों एवं राजनीतिक संस्कृति के बारे में अनुभवात्मक एवं मौलिक अध्ययन किया। अपनी पुस्तक में पाँच राष्ट्रों अमेरिका, ब्रिटेन, पश्चिमी जर्मनी, इटली और मैक्सिको में व्यक्तिगत राजनीतिक व्यवहार और राजनीतिक अभीवृर्तियों को जनमत सर्वेक्षण द्वारा विश्लेषित किया है। इस अध्ययन के दौरान उन्होंने 5 देशों में लगभग 5 हजार से अधिक लोगों का सेम्पल सर्वे किया। इसके लिए 131 प्रश्नों वाली एक प्रश्न सूचीया प्रश्नावलीं बनायी जिसके माध्यम से नागरिकों की प्रतिक्रिया को देखा गया। इस अध्ययन में उन्होंने राजनीतिक संस्कृति की व्यावहारिक पहचान की है। इस अध्ययन के बाद उन्होंने राजनीतिक संस्कृति को सामान्यतः तीन शुद्ध स्वरूपों ;संकीर्ण, अधीन व सहभागी राजनीतिक संस्कृतिद्ध में वर्गीकृत किया है जो कि भिन्न अनुपात में इन देशों में सामुहिक रूप में विद्यमान थी। इस पुस्तक में यह भी बताया गया है कि किसी भी प्रकार की संस्कृति का केवल शुद्ध स्वरूप किसी एक देश में नहीं पाया जाता है। अतः इन तीनों के अलावा राजनीतिक संस्कृति का चौथा स्वरूप भी पाया जाता है जो कि इन तीनों का एक मिश्रित स्वरूप होता है और वह लोकतांत्रिक संस्कृति के अधिक नजदीक होता है।

वर्बा व आमण्ड के अनुसार राजनीतिक संस्कृति के तीन प्रकार :

राजनीतिक संस्कृति के इन प्रकारों को निम्न आधार पर वर्गीकरण के स्वरूप में अभिव्यक्त किया जा सकता हैः

1. **संकीर्ण राजनीतिक संस्कृति :** संकीर्ण राजनीतिक संस्कृति में सरकार में भागीदारी उद्यान व चेतना का स्तर निम्न होता है अधिकांशत या तीसरी दुनिया के राष्ट्रीय ग्रामीण समुदाय इसका प्रतिनिधित्व करते हैं जहाँ गरीबी, शिक्षा का पिछड़ापन अथवा न्यूनतम आर्थिक विकास या कमजोर संप्रेषण स्तर होता है परंतु संकीर्णतावाद के साथ भी मेक्सिको नागरिक संस्कृति के होते हुए भी संकीर्ण संस्कृति के मॉडल के पास है।
2. **अधीन राजनीतिक संस्कृतिः** में नागरिक जागरूक होते हैं और क्या करना चाहिए? यह भी जानते हैं परंतु अधिक भागीदारी नहीं होती है। अतः नागरिकों के अधिकार और कर्तव्य की तुलना में सरकार की शक्ति का अधिक प्रभाव होता है। यह लोकतांत्रिक सहभागिता को अधिक नहीं बढ़ाती है।
3. **सहभागी राजनीतिक संस्कृतिः** लोकतांत्रिक आदर्शों की तरफ आगे बढ़ती है। सरकार के लिए लोगों पर शासन हेतु राजनीतिक प्रक्रिया में नागरिकों की भागीदारी प्राथमिक आवश्यकता है। इन पाँच देशों में सर्वेक्षण से उन्होंने राजनीतिक संस्कृति के तीन आयामों या तीन शुद्ध स्वरूपों के साथ-साथ चौथे आयाम की भी पहचान की है जिसे वर्बा ने मिश्रित स्वरूप बताया है और जो लोकतांत्रिक संस्कृति के अधिक नजदीक होता

है।

नागरिक संस्कृतिः

लोकतंत्र के लिए राजनीतिक संस्कृति का सर्वश्रेष्ठ व उपयोगी स्वरूप नागरिक संस्कृति है जो कि तीनों का मिश्रण है। अतः इसे लोकतांत्रिक, उदार अथवा विश्व संस्कृति भी कहा जाता है। वर्बा के अनुसार संकीर्ण, अधीन और सहभागी संस्कृति का संतुलन ही नागरिक संस्कृति है। लोकतंत्र के लिए यह सबसे सहायक होती है। 1950 के बाद के वर्षों में ब्रिटेन नागरिक संस्कृति का निकटतम उदाहरण माना जा सकता है। अमेरिका अधीन संस्कृति से आगे तथा जर्मनी, इटली नागरिक संस्कृति के पुनर्निर्माण कि लिए संघर्ष कर रहे थे अथवा इसकी कठिनाइयों का सामना कर रहे थे। नागरिक संस्कृति जिसे शालीन या शर्मीली अथवा लोकतांत्रिक संस्कृति के नाम से भी पहचाना जाता है जो कि उदार लोकतंत्र की स्थापना व सुरक्षा हेतु अपरिहार्य होती है। नागरिक संस्कृति सक्रिय नागरिक सहभागिता, ज्ञान, उच्च स्तरीय राजनीतिक संप्रेषण व राजनीतिक या सार्वजनिक मामलों पर परिचर्चा इत्यादि को दर्शाती है।

आमण्ड ने राजनीतिक संस्कृति की अवधारणा पर विश्व के भौगोलिक क्षेत्रों को चार भागों में विभाजित किया है अर्थात्

1. **आंग्ल अमेरिकी संस्कृति**
2. **यूरोप महाद्वीपीय संस्कृति**
3. **गैर पश्चिमी या पूर्वी संस्कृति**
4. **सर्वाधिकारवादी संस्कृति**

अमेरिकी विचारक एस. ई. फाइनर ने इन्हीं चारों प्रकारों को आधार मानकर राजनीति संस्कृति का वर्गीकरण किया है। उसने तीसरी दुनिया के देशों में राजनीतिक अस्थिरता का कारण राजनीतिक अस्थिरता और सहभागिता के अभाव को माना है। उसके अनुसार आधुनिक दुनिया को चार भागों में विभाजित किया गया है अर्थात्

1. **नागरिक संस्कृति**
2. **विकसित संस्कृति**
3. **पिछडी संस्कृति**
4. **अति पिछडी संस्कृति**

राजनीतिक संस्कृति व उप राजनीतिक संस्कृति और अभिजन संस्कृति की अवधारणा :

- किसी भी देश में समान राजनीतिक संस्कृति का स्वरूप नहीं पाया जाता है अपितु वहाँ उप समूहों और क्षेत्रों के बीच विभिन्नताएं होती हैं। वास्तव में किसी एक ही देश के भीतर भौतिकतावादी राजनीतिक संस्कृति के साथ-साथ उत्तर भौतिकतावादी राजनीतिक संस्कृति की उपस्थिति उप-संस्कृतियों के अस्तित्व का सबूत होता है। उप संस्कृति के सदस्य सामान्य या बड़ी संस्कृति के साझीदार होते हैं तथापि उनकी अपनी भी विशेषताएँ होती हैं जैसे कि कनाडा की राजनीतिक संस्कृति, फिनलैंड व दक्षिण अफ्रीका से कुछ मामलों में भिन्न स्वरूप का प्रतिनिधित्व करती है परंतु ठीक इसी समय अंग्रेजी में फ्रैंच बोलने वाले कनाडाई या कनाडा के लोग अपनी राजनीतिक संस्कृति की पहचान भी रखते हैं। राजनीतिक उप संस्कृतियों के प्रकार मुख्यतः समाज के महत्वपूर्ण घटकों के साथ जुड़े होते हैं जैसे कि समाज में वर्ग, लिंग, पीढ़ी, धर्म, क्षेत्र या जाति की क्या भूमिका होती है? ये दोनों धारणाएँ आपस में सहमति या विरोधाभासी राजनीतिक संस्कृति के स्वरूप को अभिलक्षित करती है।
- सिडनी वर्बा व आमण्ड ने राजनीतिक संस्कृति का विवेचन एक समरूप इकाई के रूप में किया है। इसका कारण यह हो सकता है कि उन्होंने राजनीतिक संस्कृति की अवधारणा का विश्लेषण राष्ट्रीय पहचान, राष्ट्रीय संस्कृति या राष्ट्रीय चरित्र के आधार पर किया जिसके कारण वे उप राजनीतिक संस्कृति की धारणा को अपने विश्लेषण में शामिल नहीं कर सकें। वे एक देश की सीमाओं के भीतर जाति, लिंग व रंग के आधार पर विद्‌यमान सामाजिक विखण्डनों को समझने की भूल कर गए। इसीलिए राजनीतिक संस्कृति लोकनीति, सरकार व अन्य सार्वजनिक विषयों पर सहमति ;राष्ट्रीय संस्कृति में या विरोधाभासी ;उप राजनीतिक संस्कृति में हो सकती है।
- इस सन्दर्भ में राबर्ट पुतनाम के द्‌वारा इटली की राजनीतिक संस्कृति का अध्ययन किया गया है। पुतनाम ने अपने अनुसंधान में राष्ट्र व संस्कृति की विविधता पर ध्यान दिया है। उसने यह दर्शाया है कि कैसे एक देश भिन्न राजनीतिक संस्कृति का वाहक होता है और यह क्षेत्रीय सरकार की निष्पादकता को कैसे प्रभावित करती है? एक सफल क्षेत्र सकारात्मक राजनीतिक संस्कृति को धारण करता है जहाँ परम्पराएँ और विश्वास मौजूद होते है जिन्हें सामाजिक पूँजी भी कहा जाता है। सामाजिक पूँजी की धारणा 1970 के दशक में उदित हुई है जिसे अभिशासन व सफल समुदाय की पूर्वशर्त माना जा सकता है। पुतनाम ने इसी आधार पर विश्लेषित किया कि क्यों उतरी इटली बेहतर रहा, बजाय दक्षिणी इटली ;सामन्ती शासन, विदेशी हस्तक्षेप व अधिनायकवादी राज्य के कारण खराब प्रदर्शन के।
- ऐसा समाज जहाँ राजनीतिक संस्कृति की सामान्य रूप से चर्चा की जाती है। वह आमजन या जनपुँज राजनीतिक संस्कृति है। वर्बा और पॉवेल ने जो तीन प्रकार का वर्गीकरण किया है उसे क्रम से क्षेत्रीय या संकीर्ण, अधीन या अभिजन और सहभागी या जनपुँज राजनीतिक संस्कृति के नाम से भी पहचाना जाता है।

- सामान्य संस्कृति से भिन्न एक और उप संस्कृति की अवधारणा होती है जिसे अभिजन या राज्य संस्कृति कहा जाता है। अभिजन संस्कृति कुछ लोगों के उस समूह से जुड़ी होती है जो राजनीतिक प्रणाली में उच्च स्तर पर विद्‌यमान होते हैं और राजनीतिक निर्णय की शक्ति रखते हैं। यदि वह पर्याप्त शक्तिशाली हो तो उसे शासकीय अभिजन के नाम से पहचान जाता है। किसी भी समाज की महत्वपूर्ण उप संस्कृतियों में से एक है राजनीतिक अभिजन की संस्कृति जिसे अभिजन राजनीतिक संस्कृति कहा जाता है। अभिजात वर्ग की संस्कृति या आम तौर पर जनपूँज संस्कृतियों से आंशिक रूप से भिन्न होती हैं क्योंकि यह जन सामान्य का उच्च वर्ग समूह, उच्च शिक्षित और सक्षम मध्यम वर्ग से संबंधित होता है। वे आंशिक रूप से दीर्घकाल तक एक दूसरे के साथ नजदीकी से या समीपस्थ अंतः क्रियाएं करते हैं इसलिए वे स्वयं का वैश्विक दृष्टिकोण विकसित करने में प्रवृत्त होते हैं।
- इसी वजह से राजनीतिक अभिजात वर्ग को 'विचारधारा' कहा जाता है क्योंकि उसके पास सामान्य नागरिकों की तुलना में राजनीतिक विश्व के बारे में अधिक परिष्कृत एवं बेहतर सूचना दृष्टिकोण होता है। अभिजात वर्ग की संस्कृति विस्तृत समाज के मूल्यों की अपेक्षा अधिक प्रतिनिधित्व वाला समूह है पूरी दुनिया में अभिजात वर्ग के विचार अलग होते हैं और भी राष्ट्रीय राजनीतिक संस्कृति के साथ समन्वय करते हैं जैसे कि लोकतंत्र में नेतृत्वकर्ता, सामान्यतया सामाजिक और नैतिक विषयों पर अधिक उदार दृष्टिकोण रखते हैं। स्टोफर द्‌वारा 1954 में फ्रीडम आफॅ स्पीच के बारे में अमेरिकी लोगों का दृष्टिकोण विषय पर किया गया सर्वेक्षण इसी बात की पुष्टी करता है। 1972-1973 के वाटर गेट कांड में रिपब्लिकन पार्टी के अभिजन वर्ग ने राष्ट्रपति निक्सन का समर्थन किया जो अभिजन संस्कृति को दर्शाता है। राजनीतिक स्थिरता में जन सामान्य संस्कृति की भूमिका का व्यापक योगदान होता है परंतु कुलीन संस्कृति पर ध्यान कम दिया गया है।
- जब दल या समूह अन्य के हितों या मूल्यों के साथ समझौते की इच्छा रखता है तो राजनीतिक स्थिरता में अभिवृद्‌धि होती है। इस पर लिजफर्ट ने मौलिक विश्लेषण किया है। 1950 और 1960 के दशकों या अवधि में ऑस्ट्रिया व नीदरलैंड के विभाजित समाजों में समूह नेतृत्व कर्ताओं की भूमिका का अध्ययन कर निष्कर्ष प्रस्तुत किया गया। भारत भी सांस्कृतिक विविधताओं वाला देश है। अतः भारत में भी राजनीतिक संस्कृति की तरह अन्य उप राजनीतिक संस्कृतियाँ भी पाई जाती हैं। तमिल संस्कृति ने सदैव ही राष्ट्रीय संस्कृति के समक्ष उपसंस्कृति के स्वरूप को प्रस्तुत किया है। तमिलनाडु के लोगों को लगता है कि उनकी एक पृथ्थक् संस्कृति है। ऐसी अनेक उप संस्कृतियाँ हो सकती हैं। अमेरिका में नीग्रो लोगों की ऐसी ही उप संस्कृति है। एक देश में अनेक उपसंस्कृतियाँ हो सकती है तथापि यह आवश्यक नहीं है कि वे विभाजनकारी को प्रोत्साहित करें। पाई के शब्दों में "किसी भी समाज में एक जैसी राजनीतिक संस्कृति

नहीं पाई जाती है।" इसी तरह यह भी जरूरी नहीं है कि प्रत्येक समाज में उप संस्कृति विद्यमान हो। रॉबर्ट पुतनाम ; 1970 के दशक में इटली पर शोध किया, जैसे विचारकों ने राष्ट्रीय व उपसंस्कृति की धारणा को ही राजनीतिक संस्कृति का संघर्ष कहा है। पुतनाम के अनुसार संघर्ष का निदान सामाजिक पूंजी के ऊपर निर्भर करता है।

राजनीतिक संस्कृति का तर्कोंउन्मुखीकरण :

राजनीतिक संस्कृति की धारणा प्रकृति से गतिशील है जो कि समय अंतराल के साथ परिवर्तित होती रहती है। जिस प्रक्रिया के माध्यम से लोगों में राजनीति के बारे में जागरूकता या चेतना फैलती है उसे ही राजनीतिक संस्कृति का लौकिकीकरण या तर्कोउन्मुखीकरण कहा जाता है। इस राजनीतिक चेतना के परिणाम स्वरूप लोग तर्क एवं तार्किकता के साथ राजनीति एवं राजनीतिक प्रणाली का मूल्यांकन करने में सक्षम हो पाते हैं। यह संकीर्ण मूल्यों से लोगों को दूर करने का व्यवहारिक स्वरूप है। आमण्ड और पॉवेल ने इसे तर्कोउन्मुखीकरण की ऐसी प्रक्रिया बताया है जिसके माध्यम से लोग राजनीतिक गतिविधियों या क्रियाकलापों में तार्किक विश्लेषणकर्ता एवं अनुभवात्मक बन जाते हैं। यह पारंपरिक अभिविन्यासों अभीवृर्तियों को त्याग कर सूचना प्राप्ति एवं सूचना मूल्यांकन में अधिक वैज्ञानिक दृष्टिकोण की अभिवृद्धि है।

तर्कोउन्मुखीकरण, विकसित राजनीतिक संस्कृति और विकसित औद्योगिक राज्यों ब्रिटेन, कनाडा, स्विजरलैंड, फ्रांस इत्यादि की अपरिहार्य विशेषता है।

राजनीतिक संस्कृति के निर्माणकारी तत्व और घटक :

किसी भी देश की राजनीति संस्कृति अनेक आधारों पर निर्मित होती है। इन तत्वों से ही इसकी प्रकृति समरूपता, भिन्नता या प्रारूप तय होता है। इसका सर्जन करने वाले कुछ निम्नलिखित हैं : -

1.ऐतिहासिक घटक :

अपने इतिहास से कोई भी देश या राजनीतिक संस्कृति मुक्त नहीं हो सकती है। एलेन बाल ने ब्रिटेन और फ्रांस के उदाहरण से इसे समझाया है। ब्रिटेन में राजनीतिक संस्कृति की निरंतरता, पुराने मूल्यों को नए दृष्टिकोण में विलय होने देने की सहज प्रक्रिया, हिंसात्मक आंतरिक कलह व विदेशी शक्तियों के प्रभुत्व से मुक्त रहने के कारण ही संभव बनी रही है परंतु फ्रांस ऐतिहासिक विकास की दृष्टि में इससे भिन्न रहा है। जहाँ 1789 की फ्रांसीसी क्रांति ने विद्यमान राजनीतिक सूचनाओं को एक ही झटके में उखाड़ फेंक दिया। 19वीं, 20वीं सदी के सभी प्रतिद्वंदी आंदोलनों व राजनीतिक संघर्षों, उस दौर की क्रांतिकारी उथल-पुथल से निर्मित विश्वासों, अभीवृर्तियों एवं मूल्यों से निर्मित हुए फ्रांस के इतिहास के कारण आज भी राजनीतिक संस्कृति में अनेक संस्कृतियों निहित है। बार-बार संविधान बदलने, राजतंत्र से लोकतंत्र तक पहुंचने की दुर्गम यात्रा ने उसे विश्व की राजनीतिक प्रयोगशाला बना दिया है। भारतीय स्वाधीनता लंबे संघर्ष का परिणाम है परंतु श्रीलंका को अचानक 4 फरवरी,

1948 को आजादी मिल गई। अतः दोनों देशों में भिन्न राजनीतिक संस्कृतियों का विकास हुआ है। सोवियत संघ और चीन अब भी अपने ऐतिहासिक स्वरूप को चाहकर भी छिपा नहीं पाते हैं।

2.भौगोलिक आधारः

ब्रिटेन, अमेरिका व भारत की भौगोलिक अवस्थिति ने भिन्न प्रकार की राजनीतिक संस्कृतियों का सर्जन किया है। अमेरिका में एक तरफ कमजोर शत्रु है दोनों तरफ मछलियां रहती हैं। इसी तरह से ब्रिटेन की द्विपीय अवस्थिति ने उसे विदेशी आक्रमणों से सुरक्षित बनाए रखा जबकि भारत और पाकिस्तान की भौगोलिक दशाओं ने ऐसी राजनीतिक संस्कृति को विकसित किया कि वे बहुत नजदीक होकर भी बहुत दूर चले गए।

3.सामाजिक आर्थिक संरचना का स्वरूप :

किसी भी देश में विद्यमान सामाजिक संरचना अर्थात् शिक्षा, पेयजल, आवास, स्वच्छता का स्तर इत्यादि और आर्थिक संरचना अर्थात् संचार, परिवहन, सड़क, विद्युत, उद्योग का स्तर इत्यादि राजनीतिक संस्कृति को प्रभावित करने वाले प्रधान कारकों में से सबसे निर्णायक है। आर्थिक कारक एक भिन्न प्रकार की संस्कृति जैसे कि विकसित राज्यों की नागरिक संस्कृति या सेवा की संस्कृति का निर्माण करते हैं परंतु इससे भी ज्यादा सामाजिक संरचना महत्व रखती है जहाँ भाषा, धर्म, जातीयता, समाज का संकीर्ण या शिक्षित स्तर उप संस्कृतियों का सृजन करता है। भारत, राजतंत्रकालीन भारत, ब्रिटिश भारत एवं स्वतंत्र भारत तीनों का समाज भिन्न स्वरूपों की राजनीतिक संस्कृति को समाहित करता है।

4.सामान्य संस्कृति का स्वरूप :

राजनीतिक संस्कृति सामान्य संस्कृति का ही एक अभिन्न हिस्सा होती है यद्यपि दोनों की अपनी अपनी स्वायत्तता होती है तथापि राजनीतिक संस्कृति का मौलिक व स्थाई आधार सामान्य संस्कृति ही होती है। विकासशील देशों की सबसे बड़ी समस्या यही है कि राजनीतिक संस्कृति की नवीन अवधारणा उन पर विकसित देशों द्वारा थोप दी गई है। अतः इस उसके बारे में अध्ययन करना बहुत ही जटिल हो जाता है।

राजनीतिक संस्कृति की नवीन प्रवृतियाँः

राजनीतिक संस्कृति एक गतिशील एवं परिवर्तनशील अवधारणा है जिसमें समय के साथ बदलाव आ जाता है। व्यक्तिगत अनुभव अथवा राजनीतिक समाजीकरण के अभिकर्ता, व्यक्ति के विश्वासों अभीवृर्तियों को निश्चित स्वरूप प्रदान करने एवं समाज में परिवर्तन में भी प्रभावी भूमिका का निर्वहन करते हैं। जैसे कि इतिहास, भूगोल व सामाजिक, आर्थिक संरचना राजनीतिक संस्कृति के निर्माण में भूमिका निभाते हैं वैसे ही नवीन प्रवृत्तियों के रूप में आधुनिकता, पंथनिरपेक्षता, उत्तर भौतिकवाद, संरचनावाद, लोकतांत्रिक और बाजारीकरण को विकसित औद्योगिक समाजों में आसानी से देखा जा सकता है। उत्तरी अमेरिका, पश्चिमी यूरोप, जापान ने बाद में औद्योगिक समाज की विशेषताओं को

विकसित किया है क्योंकि वह सामाजिक आर्थिक क्षेत्र में आधुनिकरण का परिणाम है। यहाँ के लोग सामाजिक समानता, पर्यावरण संरक्षण, सांस्कृतिक बहुलवाद, आत्मअभिव्यक्ति के मूल्यों पर बल दे रहे हैं जिसने पर्यावरण आंदोलन, महिलाओं की गतिविधियों, नारीवाद तथा अन्य जनहितकारी संघों, नागरिक संगठनों को जन्म दिया है।

1.लोकतांत्रिकरणः

पूरी दुनिया भर में लोकतांत्रिक मूल्यों की खोज करें तो पता चलता है कि पश्चिमी देश जहाँ लोकतंत्र विकसित हो चुका है वहाँ के नागरिक, राजनेता संस्थाओं और लोकतांत्रिक प्रतिमानों के प्रति संदेह करने लगे हैं। जैसे 1964 में तीन चौथाई अमेरिकन सरकार पर विश्वास रखते थे जबकि अब केवल एक तिहाई लोग ही विश्वास करते हैं। इसका मतलब यह नहीं है कि लोकतंत्र कमजोर हो रहा है अपितु वह मजबूत हो रहा हैं। वे अपने लोकतंत्र से अपने आदर्शों को पूर्ण करने की उम्मीद रखते हैं और ऐसा नहीं होता है तो वे शासक वर्ग की आलोचना करते हैं। इससे लोकतंत्र ओर अधिक मजबूत होता है।

2.बाजारीकरण :

वैश्वीकरण की लहर के परिणाम स्वरूप विश्व स्तर पर सांस्कृतिक प्रवृत्तियाँ बाजार की ओर परिवर्तित हो रही है जो कि विकसित समाजों के नागरिकों की मुक्त बाजार एवं निजी लाभ के प्रोत्साहनों की स्वीकृति है। सरकार द्वारा नियंत्रित एवं संचालित अर्थव्यवस्था का नागरिक प्रतिरोध करते हैं। अतः 1980 के दशक में अमेरिका एवं अनेक पश्चिमी यूरोपीय देशों में एक आंदोलन शुरू हुआ जिसने उदारीकरण को जन्म दिया। इस समय मंदी एवं गंभीर आर्थिक समस्याओं का जाल फैला हुआ था। इस समय ब्रिटेन में मार्गेट थैचर व अमेरिका में रोनाल्ड रीगन ने सरकारी क्षेत्र को सीमित करने का समर्थन किया।

3.उत्तर आधुनिकता या भौतिकतावादः

जीवन मूल्यों की और उन्हें लौटने का चरण शुरू हुआ अब कल्याणकारी राज्य आगे बढ़ने लगा और नए स्वरूप में भूख गरीबी रोजगार के लिए प्रतिबद्ध हुआ सामाजिक सुरक्षा एवं शांति को संयुक्त रूप में स्थापित करने का बीड़ा उठाया गया लोकतांत्रिक जीवन शैली पर्यावरण प्रकृति के साथ जीवन पर बल दिया गया धर्म रिलीजन जैसे पारंपरिक राजनीतिक मुद्दों पर बल दिया गया नारीवाद समूह वर्ल्ड पीस इत्यादि नवीन सामाजिक विषय उभर कर सामने आए इस प्रकार राजनीतिक मूल्य व्यक्ति के दिमाग में होते हैं और वे उनके विचारों मूल्य उनकी धारणा के साथ-साथ संगठनों व संस्थाओं में अपना आकार प्राप्त कर लेते हैं

भारत की राजनीतिक संस्कृति :

भारत में विद्यमान राजनीतिक संस्कृति के संदर्भ में अध्ययन और विश्लेषण करने में पश्चिमी राजनीतिक चिंतकों का सबसे महत्वपूर्ण योगदान रहा है। भारत की सामान्य संस्कृति एक विविधता में एकता वाली संस्कृति रही है। यहाँ शताब्दियों तक हिंदू शासन, मुस्लिम शासन और ईसाई शासन तथा स्वतंत्र भारत अनेक रंगों वाली तस्वीर दिखाई देती

है।

मॉरिस जॉन्स के अनुसार :

ब्रिटिश विचारक मोरिस जोंस ने पहली बार भारतीय लोगों की राजनीतिक जीवन में विद्यमान राजनीतिक व्यवहार को तीन भाषाओं, शैलियों या लोकोक्तियों के रूप में खोजने का प्रयास किया है। जोंस ने अपनी पुस्तक भारत में शासन व राजनीति,1964 के अंतर्गत भारत की राजनीतिक प्रणाली का विश्लेषण किया है। उसने इस राजनीतिक संस्कृति को तीन भागों में विभाजित किया है। आधुनिक, परंपरागत और साधुवादी राजनीतिक संस्कृति।

1.आधुनिक शैलीः

यह राष्ट्र राज्य की अवधारणा से जुड़ी भाषा शैली है जो उदारवादी मानवीय दृष्टिकोण, प्रतिनिधि लोकतंत्र, विज्ञान और तकनीक से संबंधित है। भारत में आधुनिक शैली संविधान, न्यायालय, राजनीतिक दल और दबाव समूह, प्रतिनिधि संस्थाएं, संसदीय बहस, योजना आयोग, नीति आयोग, समाचार पत्र, नौकरशाही प्रशासन इत्यादि में दिखाई देती है। यद्यपि इसमें भी अनेक बार परंपरागत शैली का सहारा लिया जाता है जैसे कि धर्म, जाति या क्षेत्र के आधार पर मतदान का आह्वान करना।

2.परंपरागत शैलीः

प्राचीन भारतीय समाज के आधुनिक प्रतिनिधित्व को दर्शाती है। जहाँ पर धर्म, जाति, वर्ण, नस्ल, क्षेत्र संबंधी विविधता विद्यमान होती है जो मूलतः विशेष आयोजनों, उत्सव या त्यौहारों, सामाजिक संबंधों में दिखाई पड़ती है। राजा राममोहन राय, दयानंद सरस्वती, महात्मा गाँधी, डॉ. बी. आर अंबेडकर इसी राजनीतिक संस्कृति की शैली का प्रतिनिधित्व कर रहे थे इसमें सकारात्मक व नकारात्मक दोनों स्वरूप दिखाई देते हैं। यदि आधुनिक शैली का शहरीकरण या शहरी भाषा कहे तो इसे गाँव की शैली कहा जा सकता है।

3.साधुवादी या संतवादी या सन्यासी शैलीः

की भाषा राजनीतिक जीवन में उसकी समालोचना अपरिग्रह त्याग की भावना भौतिक सुखों से ऊपर उठने जनहित को सर्वोत्तम दे के रूप में स्वीकृति देने की आदतों में दिखाई पड़ती है यह विदाउट पावर का हिस्सा है रामकृष्ण परमहंस, स्वामी विवेकानंद, महात्मा गांधी, विनोबा , जयप्रकाश नारायण इत्यादि ने इसी भाषा का सहारा लिया है अथवा उनके जीवन में यह शैली परिलक्षित होती है।

मायरन विनर के अनुसार :

भारतीय राजनीति संस्कृति के संदर्भ में दूसरा महत्वपूर्ण अनुसंधान अमेरिकी राजनीति विज्ञानी मायरन वीनर ने किया है। उसके अनुसार स्वतंत्रता के पश्चात् भारतीय समाज में विभिन्न प्रकार की राजनीतिक संस्कृतियों का उदय हुआ है। मायनर वीनर ने पाई तथा वर्बा द्वारा संपादित पुस्तक 'पॉलीटिकल कल्चर एंड पॉलीटिकल डवलपमेंट' 1965 में 'इंडियाज टु पॉलिटीकल कल्चर' नाम से अध्याय लिखा है। इस अध्याय में विवेचन किया गया है कि

भारत की राजनीतिक संस्कृति के दो प्रकार होते हैं:- पहला- जन पुँज राजनीतिक संस्कृति और दूसरा- अभिजन राजनीतिक संस्कृति।

1.जनपुँज या जन या लोकप्रिय राजनीतिक संस्कृति :

इसे डिस्ट्रिक्ट पॉलीटिकल कल्चर भी कहा जाता है। इसके प्रमुख मापक स्थानीय राजनीति, ग्रामीण व शहरी दोनों स्तर पर स्थानीय, संगठन व स्थानीय प्रशासन है। यह एक विस्तारित राजनीतिक संस्कृति है जो राज्य विधानसभाओं, राज्य सरकारों और राज्य प्रशासन तक पहुँच गई है यद्यपि इसके पैमाने या मापक परंपरागत तत्वों से संबंधित होते हैं परंतु यह पूर्णतया परंपरागत नहीं है अपितु इसमें अनेक आधुनिक तत्व भी शामिल रहते हैं। जैसे कि लोकतांत्रिकरण, राजनीतिक स्थिरता व आधुनिकता इसके अनुकूल और उपयुक्त लक्षण हैं।

2.अभिजन राजनीतिक संस्कृति :

अभिजन संस्कृति जो दिल्ली की राजनीतिक संस्कृति कहलाती है। यह भारत के नीति निर्माताओं राष्ट्रीय राजनीति के नेतृत्व कर्ताओं, भारतीय सेना तक विस्तृत है और अधिकांशतया अंग्रेजी बोलने वाले बुद्धिजीवी वर्ग के द्वारा प्रस्तुत की जाती है। यह एक कदम पीछे राज्यों की राजधानियों में भी दिखी जा सकती है परंतु ग्रामीण व शहरी स्थानीय शासन में पूर्णता लुप्त रहती है। यह एक रक्षात्मक फैंसी पॉलीटिकल कल्चर राजनीतिक संस्कृति है। यह आधुनिक राजनीतिक संस्कृति है तथापि इसे पूर्ण रुप से आधुनिक नहीं कहा जा सकता है क्योंकि इसमें परंपरागत घटक भी पाए जाते हैं।

लोक संस्कृति को उभरती हुई जन राजनीतिक संस्कृति कहा जा सकता है और अभिजन को कुलीन राजनीतिक संस्कृति कह सकते है जो कि आधुनिक है परंतु प्रथम को परंपरागत व दूसरी को आधुनिक कहना सही नहीं होगा क्योंकि दोनों में ही परंपरागत और आधुनिकता के तत्व सम्मिलित होते हैं। भारत जैसे विविधताओं से परपिर्ण देश में जहाँ व्यापक और जटिल समाज हो अभिजन संस्कृति का जन संस्कृति पर अधिक प्रभाव होता है। इसी संदर्भ में रिचर्ड पार्क के अनुसार भारत में अनेक स्वरूप वाली संस्कृति निवास करती हैं। इसमें जनप्रतिनिधियों व अनुयायियों के बीच आपस में चिकित्सक व क्लाइंट जैसे संबंध स्थापित हो जाते हैं जिसे सेवार्थिवाद के नाम से जाना जाता है।

उपसंहार या निष्कर्ष :

राजनीति सामान्यतया व्यक्ति के मस्तिष्क में रहती है और यह व्यक्तिगत विचारों, मूल्यों व पूर्व धारणाओं के साथ-साथ संगठन, कार्यप्रणाली व राजनीतिक प्रणाली से की जाने वाली अपेक्षाओं के अनुरूप अपना आकार ग्रहण करती है। राजनीतिक संस्कृति समकालीन समाज की दूनिया का अध्ययन करने के लिए बहुत ही प्रासंगिकता रखने वाली धारणा है। शीतयुद्ध के पश्चात् के विश्व में न केवल राष्ट्रों के बीच अपितु इनके भीतर भी जातीय, भाषायी या अन्य तरह की भिन्नताएँ दिखायी देने लगी है। इस तरह के बदलावों तथा

राजनीतिक यथार्थ को समझने में सांस्कृतिक घटकों की अपनी एक उपादेयता होती है और अंततः यह भी कहा जा सकता है कि राजनीतिक संस्कृति, आधुनिकीकरण की प्रक्रिया को समझने वाला एक महत्वपूर्ण चर भी है।

राजनीतिक समाजीकरण

राजनीतिक समाजीकरण की धारणा राजनीतिक संस्कृति की तरह एक नवीन अवधारणा है और यह राजनीतिक संस्कृति से जुड़ी हुई राजनीतिक संकल्पना है। राजनीतिक समाजीकरण, राजनीतिक संस्कृति के हस्तांतरण की एक प्रक्रिया है। राजनीतिक समाजीकरण की प्रक्रिया सामान्य समाजीकरण का एक अभिन्न हिस्सा होती है। यर्थाथ में यह राज्य एवं समाज में पारस्परिक अंतर क्रियाओं के स्वरूप के एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी की ओर संप्रेषण की प्रणाली है। यह सामाजकरण की प्रक्रिया का वह भाग है जिसका संबंध राजनीतिक संस्कृति से होता है। अतः यह राजनीतिक संस्कृति को संरक्षित, संवर्धित करने और आगे की पीढ़ियों तक पहुँचाने की प्रक्रिया है। राजनीतिक संस्कृति बनी रहती है या बदल जाती है जैसे कि उनके मूल्य एवं व्यवहार बदलते हैं। अतः राजनीतिक समाजीकरण वह माध्यम है जिससे होकर ही राजनीतिक मूल्य या राजनीतिक संस्कृति आगामी पीढ़ियों की ओर गमन करती है। अधिकांश बच्चे आधारभूत राजनीतिक मूल्यों एवं व्यवहार के प्रतिमानों को अपने बड़ों से सीखते हैं। प्रत्येक समाज के अपने मूल्य, मानक, विश्वास, मान्यताएं इत्यादि एक पृथ्थक् पहचान रखते है और उनके अद्वितीय लक्षण होते हैं। व्यक्ति उस समाज में शामिल होता है जो कभी-कभी बदलाव के अनुरूप चलता है या वह स्वयं को बदल लेता है। एक व्यक्ति के जीवन में सामाजीकरण सत्त रूप से आजीवन चलने वाली प्रक्रिया होती है। परिवर्तन प्रकृति का नियम है जो प्रत्येक समाज और राजनीतिक प्रणाली में अपरिहार्य रूप से घटित होता है। प्रत्येक राजनीतिक प्रणाली के समक्ष यह चुनौती होती है कि वैयक्तिक परिवर्तनों से स्थिरता एवं निरंतरता को कैसे बनाए रखा जाए।

राजनीतिक समाजीकरण अर्थ एवं परिभाषाः

- राजनीतिक प्रणाली की संरचना सभी समाजों में पाई जाती है तथापि वह विभिन्न देशों में अलग अलग तरीके से संचालित होती है। इस विविधता का स्पष्टीकरण यह है कि व्यक्तियों में भिन्न-भिन्न अभीवृतियों और अभिविन्यासों का विकास होता है। शाब्दिक स्वरूप में राजनीतिक समाजीकरण का अभिप्राय उस प्रक्रिया से है जिसके द्वारा कोई व्यक्ति राजनीतिक दृष्टिकोण को अर्जित करता है। विभिन्न देशों के लोग अलग-अलग राजनीतिक अभिविन्यासों को प्राप्त करते हैं क्योंकि राजनीतिक प्रणाली के साथ उनके अनुभव भिन्न भिन्न होते हैं।

- राजनीतिक प्रणाली के बारे में प्रत्येक व्यक्ति कुछ निश्चित मान्यताएं या विश्वास रखता है। अतः अब यह प्रश्न उदित होता है कि राजनीतिक व्यवस्था को प्रभावी ढंग से संचालित करने के लिए इन विविध मान्यताओं को कैसे समायोजित किया जाए? यहीं से राजनीतिक समाजीकरण की भूमिका सामने आती है। समसामयिक राजनीतिक विश्लेषण के आधारभूत उदाहरणों में से एक है- राजनीतिक समाजीकरण। यह राजनीतिक प्रणाली और इसके विषयों के प्रति व्यक्तिगत अभिविन्यासों से संबंधित है। यह दृश्य-अदृश्य, स्थानीय, राष्ट्रीय, अंतरराष्ट्रीय, औपचारिक या अनौपचारिक स्वरूप में विद्यमान अवधारणा है।
- विकासशील देशों में यह अवधारणा ओर भी अधिक महत्वपूर्ण हो जाती है क्योंकि यहाँ धर्म, जाति, लिंग, वर्ग, क्षेत्र, भाषा, संस्कृति और आर्थिक विविधता पाई जाती है। ये सांस्कृतिक विभिन्नताएं एवं विविधताएं एक प्रभावशाली राष्ट्रीय पहचान के मार्ग में बाधाएं होती हैं। समाज में शासन की निर्णायक भूमिका, नीतियों के वैधता प्राप्त लक्ष्यों और सहभागिता में विस्तार के लिए किसी भी प्रकार के समझौते से इन विभिनताओं का समाधान करना अपरिहार्य होता है। एक प्रभावी राजनीतिक प्रणाली के रूप में यह लक्ष्य राजनीतिक समाजीकरण को मनोवैज्ञानिक स्वरूप में अभिव्यक्त करता है। राजनीतिक संस्कृति की स्थिरता इसी के कारण बनी हुई रहती है। अतः राजनीतिक समाजीकरण एक अधिगम प्रक्रिया है जो विद्यमान राजनीतिक प्रणाली के मानकों एवं व्यवहार को एक से दूसरी पीढ़ी तक पहुँचाती है। राजनीतिक समाजीकरण वह प्रक्रिया है जो समाज में विद्यमान सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक परिदृश्य में नागरिक अभिविन्यासों को राज्य स्तर से अंतरराष्ट्रीय स्तर तक हस्तांतरित करती है। आमंड के अनुसार राजनीतिक सामाजिकरण न केवल समाज में राजनीतिक संस्कृति एव उप-संस्कृतियों के प्रारूप या प्रतिमान की अंतर्दृष्टि प्रदान करती है अपितु समाजीकरण की प्रक्रिया हमारे लिए यह भी पता लगाती है कि किस बिंदु पर विशेष गुण एवं सुस्थिर तत्व पाए जाते है या उन्हें कैसे संशोधित किया जा सकता है।
- ल्यूसन पाई के शब्दों में ''राजनीतिक संस्कृति एक प्रक्रिया के रूप में उन मान्यताओं और विश्वासों का समूह है जो कि राजनीतिक प्रक्रिया को अर्थ एवं व्यवस्था प्रदान करते हैं।'' एक राजनीतिक प्रणाली में राजनीतिक संस्कृति का निर्माण करने में राजनीतिक समाजीकरण की व्यापक और विस्तृत भूमिका होती है।
- असरफ अली के शब्दों में, ''यह संस्कृति के अन्तः पीढ़ीयों और अन्तः महाद्विपीय हस्तांतरण का माध्यम है।''

उपर्युक्त परिभाषाओं के आधार पर कहा जा सकता है कि राजनीतिक समाजीकरण नागरिकों की नई पीढ़ी को राजनीतिक संस्कृति का हस्तानांतरण है। यह व्यष्टि स्तर पर नागरिको से और समष्टि स्तर पर राजनीतिक दलों, समूहो, विश्वासों, व्यवहार इत्यादि से

अभिलक्षित होता है।

राजनीतिक समाजीकरण के प्रकार :

राजनीतिक समाजीकरण समाज में निरंतर चलने वाली अधिगम प्रक्रिया है जो व्यक्तिगत स्तर एवं राष्ट्रीय स्तर, अंतरराष्ट्रीय स्तर पर औपचारिक और अनौपचारिक दृश्य-अदृश्य स्वरूप में चलती रहती है। सामान्यतया इसके दो प्रकार होते हैं- प्रकट राजनीतिक समाजीकरण और अदृश्य राजनीतिक समाजीकरण।

प्रकट या प्रत्यक्ष राजनीतिक समाजीकरण :

इसे प्रकट या व्यक्त या दृश्य या व्यवस्थावादी या संस्थागत राजनीतिक समाजीकरण के नाम से जाना जाता है। इसे समष्टि और राजनीतिक प्रणाली के स्तर का रातनीतिक समाजीकरण भी कहा जाता है। यह उस समय दिखाई देता है जब राजनीतिक व्यवस्था या विषयों के प्रति सूचनाओं, मूल्यों या अनुभव का संप्रेषण होता है। राजनीतिक या राजनीतिक समाज के द्वारा अपने मूल्यों, रीति-रिवाजों और प्रथाओं, नागरिकों, निवासियों और सदस्यों ने कार्य चिंतन के प्रतिमान को संस्थाओं जैसे कि परिवार, शिक्षण संस्थान, मित्र मंडली, जनसंचार, राजनीतिक संस्थाओं, सामुदायिक और धार्मिक संगठनों अथवा सेना के माध्यम से स्थापित किया जाता है। यह उस प्रश्न को खोजता है कि कहाँ और कैसे राजनीतिक अभिविन्यासों एवं अभिवृतियों को लोगों में विकसित किया जाता है जिससे कि लोकतांत्रिक व संवैधानिक संस्थानों का व्यवहार एक लोकतांत्रिक संस्थाओं के रूप में रूपांतरित हो जाता है। जैसे कि पश्चिमी लोकतंत्र व उसके प्रकार के बारे में विद्यालय में अध्यापन कराना उन्हें लोकतंत्र के प्रतिमान सिखाता है। रूस में बच्चों को यह पढ़ाना कि समाज में सकारात्मक परिवर्तन का एकमात्र उपाय साम्यवादी दल है। विद्यालय पाठ्यक्रम में मार्क्सवादी, लेनिनवादी उदाहरण शामिल करना प्रकट राजनीतिक समाजीकरण का उदाहरण है। आज के जमाने में इंटरनेट प्रकट प्रभावी समाजीकरण का बड़ा उदाहरण है। इसी तरह व्यक्तिगत अनुभव के रूप में इजरायल, फिलिस्तीन, भारत-पाकिस्तान, विश्व व्यापार संगठन पर हमला, प्रणाली के भीतर व्यक्तिगत भूमिका निभाने वाले व्यक्ति का अनुभव इत्यादि ये सब प्रकट राजनीतिक समाजीकरण के ही उदाहरण है।

गुप्त या अदृश्य राजनीतिक समाजीकरण :

इसे गुप्त, दृश्य, व्यक्तिगत या मनोवैज्ञानिक, व्यष्टि या व्यक्तिगत स्तर का राजनीतिकरण समाजीकरण कहा जाता है। यह उन प्रक्रियाओं औा प्रतिमाओं के प्रति राजनीतिक परिदृश्य के विशिष्ट व्यक्तिगत संबंधों का स्वरूप है जिसमें वे रहते है और जिस राजनीतिक विकास एवं अधिगम के लिए कार्य करते हैं। राजनीतिक समाजीकरण का परिणाम होता है कि राजनीतिक व्यवस्था कैसे कार्य करती है? और इसके बारे में व्यक्तिगत ज्ञान की प्राप्ति है। यह गैर राजनीतिक दृष्टिकोण का संचरण है जो राजनीतिक प्रणाली के प्रति लोगों के अभिविन्यास को प्रभावित करता है। यह एक अचेतन प्रक्रिया है। यह स्वतः स्फूर्त व्यवस्था है जो अनजान को हो सकती है फिर भी यह प्रकट समाज की तरह

ही प्रभावी भी हो सकती है। आमंड व पॉवेल के शब्दों में, ''यह सामान्य संस्कृति की अनेक अति महत्वपूर्ण और आधारभूत विशेषताओं को शामिल करता है जो राजनीतिक परिदृश्य पर बहुत अधिक प्रभाव डालती हैं। राजनीतिक प्रणाली पर इसके प्रभाव को धीरे-धीरे देखा जा सकता है। यह व्यक्तिगत अनुभव की प्रक्रिया है जो प्रकट नहीं होती परंतु कभी ना कभी इसका असर होता है। जैसे कि किसी संगठन का सदस्य बनना, विचारधारा समूह में शामिल होना, परिवार में किसी दल के प्रति झुकाव, बड़ों का मतदान व्यवहार, राजनीति में सक्रिय अथव निष्क्रिय भूमिका इत्यादि।''

राजनीतिक समाजीकरण की प्रक्रिया विभिन्न मार्गों से होकर संचरण करती है। प्रत्यक्ष समाजीकरण जहाँ राजनीति के प्रति सूचना, संप्रेषण एवं मूल्यों का अनुभव होता है। जैसे कि विद्यालयों का सामान्य पाठ्यक्रम, सार्वजनिक शिक्षण कार्यक्रम, राजनीतिक दलों या समूह द्वारा प्रचार प्रसार इत्यादि अप्रत्यक्ष समाजीकरण के रूप में राजनीतिक दृष्टिकोण अनुभव से प्राप्त होता है। जैसे कि बच्चे सामान्य महत्वपूर्ण राजनीतिक मूल्य माता-पिता, शिक्षकों से, दोस्तों से एवं आसपास के सामाजिक और आर्थिक वातावरण के परीक्षण से सीखते हैं। समाजीकरण आजीवन चलने वाली प्रक्रिया होती है। परिवार का आरंभिक प्रभाव, व्यक्तिगत आदर्शों, मूल्यों को दीर्घकालीन या जीवन भर बने रहने के रूप में पड़ता है परंतु नवीन सामाजिक समूह में शामिल होने, देश के एक भाग से अन्य भागों में घूमने, सामाजिक जीवन में उतार-चढ़ाव आने, किसान बनने या खेती करने, काम प्राप्त करने या रोजगार खोने, आर्थिक मंदी और युद्ध इत्यादि के दौरान प्राप्त जीवन का अनुभव राजनीतिक दृष्टिकोण में अनेक आधारभूत परिवर्तन ला देता है। हमें यह भी ज्ञात होना चाहिए कि राजनीतिक सामाजिकरण का प्रतिमान या स्वरूप भिन्न-भिन्न होता है। सरकार द्वारा एक राष्ट्रीय राजनीति संस्कृति का सृजन करने हेतु सामान्य सार्वजनिक शिक्षा प्रणाली का प्रबंधन समरूप प्रतिमान का उदाहरण है। अंतर्राष्ट्रीय संघर्ष, नन्हें बच्चे के प्रति प्रसन्नता की भावना या उसके सामने सभी प्रकार की चिंताओं को भूल जाना, सुख-दुख, जन्म-मृत्यु पर प्रतिक्रिया संपूर्ण विश्व में समरूप ही होगी तथापि इसे अभिव्यक्त करने के तरीके भिन्न-भिन्न हो सकते हैं।

राजनीतिक समाजीकरण के स्तर :

नागरिक अपने जीवन में अनेक स्तर पर आंतरिक और बाह्य दोनों प्रकार के विविध तत्वों से प्रवाहित होता है। सामान्यतया इस प्रभाव को तीन स्तरों में विभाजित किया जा सकता है-

आरंभिक काल :

बच्चे अपने जीवन के आरंभिक वर्षों में सहभागी की अपेक्षा पर्यवेक्षणद्वारा बहुत अधिक सीखते हैं। वे आसपास के वातावरण को आत्मसात करते हैं जिसका प्रभाव उनके पूरे जीवन में बना रहता है। इस तरह इस स्तर पर बच्चे अपने परिवार के तत्कालीन सदस्यों से अधिकतम सीखते हैं। यदि कोई परिवार राजनीति के क्षेत्र में अधिक सक्रिय रहता है तो उस

परिवार के बच्चों का भी राजनीति के प्रति स्वाभाविक आकर्षण होता है। राजनीति में उनकी रुचि उनके परिवार की जड़ों से उत्पन्न होती है। राजनीतिक परिचर्चा परिवार का स्वाभाविक हिस्सा होती है। दूसरी ओर यदि परिवार में नकारात्मक राजनीतिक नजरिया हो तो बड़े होने वाले बच्चे में इसके प्रति स्वभातिक असंतोष या दुर्भावना हो सकती है अर्थात् राजनीति अच्छी है या बुरी।

किशोरावस्था या युवावस्था :

यह बदलाव की अवस्था है जिसमें बच्चों के विचारों के साथ साथ उनकी धारणाओं में भी परिवर्तन आता है। इस अवस्था में स्वाभाविक रूप से शारीरिक और मानसिक परिवर्तन आ जाते है। वे अपने अधिकारों, अपने जीवन और अपने भविष्य के बारे में अधिक जागरूक हो जाते हैं। उन्हें इस बात का एहसास होने लगता है कि राजनीतिक प्रणाली उनके सद् जीवन का माध्यम है। इसीलिए जो बच्चे पहले राजनीतिक प्रणाली के प्रति उदासीन रहते हैं। वे भी अब इसमें रुचि रखने लगते हैं। वे राजनीतिक प्रणाली में भाग लेना शुरू कर देंगे अथवा कम से कम राजनीतिक प्रणाली के द्वारा लिए जाने वाले विभिन्न निर्णयों के बारे में विचार या चिंतन करने लगते हैं। वे अब केवल निर्वाचन प्रक्रिया में रुचि ही नहीं लेते अपितु निर्णय प्रक्रिया में भी रुचि लेने लगते हैं। यह अवस्था भविष्य में व्यक्ति की सहभागिता के स्वरूप को निर्धारित करती है।

परिपक्वता की अवस्थाः

इस अवस्था में व्यक्ति दृढ़ विश्वास व मान्यताओं के साथ एक श्रेष्ठ नागरिक बनने का प्रयास करता है। राजनीतिक समाजीकरण की प्रक्रिया अनवरत चलती रहती है और व्यक्ति इस अवस्था में कुछ स्तर तक बदल सकता है परंतु उसके पूर्वाग्रह एवं निर्णय स्पष्ट होते हैं। जैसे जैसे व्यक्ति जीवन में आगे बढ़ता है और राजनीतिक प्रणाली के साथ अनुभव प्राप्त करता है, वैसे-वैसे अपनी सहभागिता के बारे में फैसला करने लगता है। रोजगार के अवसर आकांक्षाओं को पूर्ण करने की संभावनाएं और अंततः उनके लक्ष्य की पूर्ति या प्राप्ति व्यक्तिगत अभिविन्यासों का निर्धारण करती है। यह प्रक्रिया ही राजनीतिक समाजीकरण है और यह व्यस्क नागरिकों के विचारों को राजनीतिक प्रणाली की ओर गतिमान करती है।

राजनीतिक समाजीकरण के अभिकर्ता :

हम राजनीतिक दृष्टिकोण को कैसे सीखते हैं? व्यक्तिगत रूप से या संगठनात्मक रूप से या संस्थागत रूप से हमारे जीवन पर प्रभाव डालने वाले अनेक अभिकर्ता होते हैं। जैसा कि हमें मालूम है कि राजनीतिक समाजीकरण एक मनोवैज्ञानिक अवधारणा है। यह सब व्यक्तियों तक और उनकें दिमाग तक पहुँचने वाला प्रभाव है। कुछ निश्चित औपचारिक संरचनाएं जो इस कार्य को निष्पादित करती हैं। औपचारिक सूचनाओं के अलावा भी अनौपचारिक सूचनाएं होती हैं जो लोगों को प्रभावित करती हैं। इस तहर के प्रभाव बाल्यकाल में परिवार से शुरू होते हैं और आजीवन लगातार चलते रहते हैं। प्रत्येक अभिकर्ता भिन्न-भिन्न परंतु व्यक्तिगत स्तर पर निर्णायक प्रभाव डालता है।

परिवारः
परिवार मानव जीवन की प्रथम पाठशाला होती है। बालक पर पहला निर्णायक या अमिट प्रभाव परिवार का पड़ता है। परिवार उस पर प्रत्यक्ष व अप्रत्यक्ष रूप से न केवल सामाजिक मूल्यों अपितु राजनीतिक प्रणाली से संबंधित मूल्यों के बारे में भी प्रभाव डालता है। यह प्रत्येक व्यक्ति के व्यक्तित्व के निर्माण में और उसे निश्चित समरूप आकार देने में आधारभूत भूमिका का निर्वहन करता है। जन्म लेने वाला बालक कोरा कागज होता है जिस पर रेखा खींचने व प्रारूप बनाने का काम परिवार में हीं होता है। राजनीतिक समाजीकरण की प्रक्रिया में परिवार की निर्णायक भूमिका होती है। परिवार पहली औपचारिक संस्था है जिसका प्रभाव आजीवन चलता रहता है। आज्ञाकारीता, बड़ों का सम्मान, नियमों के पालन के प्रति बच्चे के अभिविन्यास, भविष्य में एक नागरिक के रूप में उसकी भूमिका का निर्धारण करते हैं। यदि बच्चों को पारिवारिक निर्णय में भाग लेने को प्रोत्साहित किया जाता है तो निर्णय प्रक्रिया को वह गंभीरता से लेते हैं। यदि निर्णय केवल बड़े लोग या माता-पिता करते हैं तो कम आयु में बालक गैर जिम्मेदार दिखाई देता है। दोनों दशाओं में बालक राजनीतिक समाजीकरण का हिस्सा बन जाता है। लोकतंत्र में बच्चे न्याय, समानता, स्वतंत्रता के बारे में सीखते हैं परंतु तानाशाही में समकक्षों की तुलना में अलग दृष्टिकोण रखते हैं। विकासशील समाजों में लड़कों की तुलना में लड़कियों को कम सहभागी बनाया जाता है। परिवार प्रथम समाजिक अभिकर्ता होता है। परिवार से ही वह नैतिकता भाषा, वर्ग, धार्मिक एवं सांस्कृतिक मूल्यों को ग्रहण करता है।

विद्यालय एवं अन्य संस्थानः
संस्थाओं में विद्यालय राजनीतिक समाजीकरण का दूसरा महत्वपूर्ण अभिकर्ता होता है। परिवार से बाहर उसके अन्य कदम स्कूल तक पहुँचते हैं तो इस प्रक्रिया में तेजी से व्यापकता आ जाती है। यदि परिवार में गुप्त राजनीतिक समाजीकरण हो तो यहाँ वह राजनीतिक ज्ञान एवं जनमत के माध्यम से प्रकट राजनीतिक समाजीकरण में संचालित होने लगता है। राजनीतिक प्रणाली के बारे में दृष्टिकोण एवं अभिविन्यासों को स्वरूप, आकार देने में स्कूल, महाविद्यालय और विश्वविद्यालय की महत्वपूर्ण भूमिका होती है। यहाँ पर पाठयक्रम, सांस्कृतिक कार्यक्रम, वाद-विवाद, परिचर्चा, खेल इत्यादि के माध्यम से अच्छे नागरिकों के सर्जन में सहायता की जाती है। सुबह की सभा ,राष्ट्रीय गान, राष्ट्रीय गीत, देश के सम्मान के प्रति वचन, प्रतिज्ञा, शपथ, राष्ट्रीय ध्वज का सम्मान, पंक्ति में खड़ा रहना इत्यादि उसे जिम्मेदार नागरिक बनने में मदद करते हैं। अध्यापन, परीक्षाओं, प्रतियोगिताओं के द्वारा स्वस्थ प्रतियोगिता का वातावरण तैयार किया जाता है। यहां तक कि प्लेटो, अरस्तू ने भी अच्छे नागरिकों हेतु शिक्षा पर बल दिया है। शिक्षा केवल राजनीतिक प्रणाली का ज्ञान ही प्रदान नहीं करती अपितु युवा एवं जिज्ञासु मस्तिष्क में सकारात्मक भावनाओं को विकसित करने में सहायता करती है। शिक्षा, विभिन्न प्रकार के धर्म, क्षेत्र,

रंग, आवास की विभिन्नताओं के बीच समरसता बनाए रखने में सहायता करती है। उसके दृष्टिकोण को सहिष्णु बनाती है। मुस्लिम देशों में बालक बालिकाओं में अंतर रखा जाता हैं। अफगानिस्तान में तालिबान शिक्षा प्रणाली बहुत ही अद्वितीय है।

मित्र मंडली :

जैसे बच्चा बड़ा होता जाता है उसके दोस्त एवं वैचारिक उन्मुक्ताएं प्रभावी भूमिका का निर्वहन करने लग जाती हैं। समकक्ष आयु के बच्चों का समूह आकांक्षाओं व निराशा में एक जगह बंध जाता है। मित्र मंडली उन देशों में अधिक भूमिका निभाती है जहाँ पारिवारिक संबंध कमजोर होते हैं। ऐसे समूह संस्थाओं से शुरू होते हैं परंतु शैक्षणिक संस्थाओं के स्तर पर भी कार्यरत रहते हैं। ऐसे समूह दृष्टिकोण व मूल्यों को स्वरूप प्रदान करते हैं। इन्हें संदर्भित समूह भी कहा जाता है। जो भागीदारी को प्रोत्साहित या हतोत्साहित करते है। मित्र समूह सहभागिता का स्वरूप व स्तर तय करते है। इस तरह सहकर्मी भागीदारी, निर्णय लेने, बदलाव इत्यादि में निर्णय भूमिका का निर्वहन करता है। इनके बीच प्रश्न-उत्तर, वाद-विवाद, विचार-विमर्श होते रहते हैं। एक सदस्या निश्चित रूप से समूह के अन्य सदस्यों को प्रभावित करता है। रूस में माताओं का पार्क में नियमित मिलना, ब्राजील में गली गैंग, वॉल स्ट्रीट में हेल्थ क्लब सदस्य अंतरराष्ट्रीय युवा संस्कृति प्रतीक जीन्स व टी शर्ट इत्यादि इसी के उदाहरण है।

राजनीतिक समूह :

आर्थिक समूह, किसानों का समूह, मजदूरों का समूह, छात्रों का समूह, मेडिकल समूह, नागरिक समूह, पर्यावरण समूह, महिला समूह एक अलग प्रकार की राजनीति संस्कृति का सृजन करते हैं। जो राजनीतिक समाजीकरण के सक्रिय स्वरूप हैं जो कभी कभी राजनीतिक दल के रूप में भी बदल जाते हैं। नागरिक समूह एक गुणवत्तापूर्ण सामाजिकरण एजेंट होता है। वियतनाम में साम्यवादी धारणा हेतु सामाजिक समूह है जो सिविक सेंस तथा अमेरिका में डेमोक्रेसी बिल्डिंग ऑर्गेनाइजेशन के रूप में सिविक ग्रुप्स कार्य करते हैं। राजनीतिक दलों के द्वारा राजनीतिक समाजीकरण का निर्णायक कार्य किया जाता है। वर्ग, जाति, धर्म, क्षेत्र की विभिन्नता के आधार पर वोट मांगना, अपराध, जाति, धर्म को राजनीति में घसीटना, ब्रिटेन में लेबर और कंजरवेटिव पार्टी क्लास का आधार पर समर्थन मांगती हैं, भारत में कांग्रेस राष्ट्रीय कार्यक्रम हेतु अन्य दल प्रजाति व धार्मिक आधार पर समर्थन मांगते हैं।

जनसंचारः

मीडिया हमेशा विचार अभिव्यक्त का महत्वपूर्ण माध्यम रहा है। समाचार पत्र रेडियो टेलीविजन पूरे विश्व में राष्ट्र के प्रति राजनीतिक दृष्टिकोण में जनमत निर्माण का सक्रिय एवं प्रभावी आयाम है। यह ग्लोबल विलेज की अवधारणा है जो विविध राजनीतिक प्रणालियों में कि नागरिकों को एक दूसरे के साथ जोड़ने में सहायता करता है। इसी कारण वर्तमान पीढ़ी चर्चा, बहस, तुलना करने में अच्छी स्थिति में है। संपादकीय कॉलम, टीवी पर बहस, विशेषज्ञों की विचार क्रांति, समाजीकरण में मदद करते हैं। इसे लोकतंत्र के

चतुर्थ स्तंभ के रूप में देखा जा सकता है यदि यह नैतिकता, निष्पक्षता, विश्वसनीयता पर आधारित रहे। मीडिया सामान्य घटना को भावनात्मक स्वरूप, गलत या सही तस्वीर पेश कर सकता है यह उसे मेनूप्लेट कर सकता है , तथ्यों, घटना को विकृत स्वरूप दे सकता है। इसके द्वारा किया गया प्रस्तुतीकरण राष्ट्र का इतिहास बदल सकता है। सर्वाधिकारवादी राज्यों में मीडिया पर राज्य का पूर्ण नियंत्रण होता है। अतः शासक इसके द्वारा लोगों के दृष्टिकोण, विचारों को अपनी ओर उन्मुख कर लेता है। अनेक यूरोपीय देशों में सरकार अभी भी मीडिया को एक सेवा के रूप में स्वीकार करती है उनका टीवी न्यूज़ प्रबंधन करती है। सोशल मीडिया मिस्त्र जैसे देशों में सरकारी विरोध करता है तो सरकार इस पर प्रतिबंध लगा देती है। इंटरनेट पर नियंत्रण रखना सरकारों के लिए मुश्किल हो रहा है विकासशील देशों में सामान्य लोग तथा विकसित देशों में चयनित और विशेषज्ञ व्यक्ति मीडिया के भागीदार होते हैं।

सरकार से प्रत्यक्ष संबंधः

सरकार के साथ किया जाने वाला प्रत्यक्ष व्यवहार राजनीति दृष्टिकोण को निश्चित आकार प्रदान करता है। राजनीतिक प्रणाली के साथ अच्छा अनुभव सकारात्मक अभिविन्यास में सहायता करता है और नकारात्मक अनुभव प्रणाली के प्रति व्यक्तिगत दृष्टिकोण को संकुचित बनाता है। बेरोजगारी, सरकार द्वारा शोषण, सामान्य नागरिक सेवाओं शिकायत निवारण जैसे कि एजुकेशन ,हेल्थ, ड्राइवर लाइसेंस, गैस कनेक्शन, वोटर कार्ड इत्यादि प्राप्ति में आने वाली बाधाएं राजनीतिक प्रणाली की प्रति राजनीतिक सामाजीकरण का कार्य करती हैं। कुछ देश व्यक्तिगत रूप से माइग्रेट लोगों को प्राथमिकता देते हैं तो यह अंतरराष्ट्रीय प्रवजन प्रवास को बढ़ाता है। अतः पुलिस राजनेताओं, अधिकारी तंत्र, न्यायपालिका के नेतृत्व के साथ व्यक्तिगत अनुभव राजनीतिक अभिविन्यास का आकार प्रदान करते हैं। तकनीकी व विज्ञान के आधुनिक युग में यह सम्मान बहुत बढ़ गया है व्यक्तिगत अनुभव राजनीतिक समाजीकरण के प्रभावी अभिकर्ता होते हैं। विकासशील देशों के साथ विकसित देश भी इससे अछूते नहीं है धर्म जैसे जोड़ने वाला तत्व है जैसे ही विभाजनकारी भी है। मतदान, युवा, राजनीति दल की सदस्यता, उसका एजेंडा पारिवारिक व्यवहार में से देखा जा सकता है। सांप्रदायिकता इसका पूरातन स्वरूप है। पश्चिमी विकसित देशों जर्मनी, इटली में चर्च की भूमिका स्पष्ट दिखाई देती है। भारत में शिवसेना ,नवनिर्माण सेना, अकाली दल, भारतीय जनता पार्टी के समाजीकरण के मुख्य अर्जेंट है इसी के साथ विकासशील देशों में जाति प्रणाली प्रभावी एजेंट है। सामान्यतः इसका नेगेटिव यूज किया जाता है। युवा पीढ़ी के नकारात्मक प्रभाव हो सकते है।

उपसंहारः

इस प्रकार निष्कर्ष के रूप में कहा जा सकता है कि राजनीतिक समाजीकरण में किसी देश की राजनीति संस्कृति को एक संरचना या ढांचा प्रदान करने वाली सतत परिवर्तनशील परंपरा है। आधुनिक विश्व में इसका महत्व इसलिए भी बढ़ता जा रहा है कि अब विलेज एंड ट्रेडीशन

कम्युनिटी विखंडित हो रही है। नागरिक जो अधिगम करते हैं उसे ही जीवन में अपनाते हैं। किसी भी राज्य की व्यवस्था में विद्यमान आर्थिक, सामाजिक व धार्मिक क्षेत्र का प्रभाव स्पष्ट रूप से पड़ता है। इस प्रकार राजनीतिक समाजीकरण एक सकारात्मक अवधारणा है।